तारापथ : एक विवेचन

लेखक

बेङ्कटेश नारायण श्रीवास्तव
हिन्दी विभाग
प्रवक्ता,
सी० एम० पी० डिग्री कालेज, इलाहाबाद

प्रकाशक

वीना प्रकाशन

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण] [मूल्य २०.००

प्रकाशक—

वीना प्रकाशन

२, बाई का बाग, इलाहाबाद—३

प्रथम संस्करण, १२०० प्रतियाँ २५ दिसम्बर १९७१

मूल्य—बीस रुपये मात्र

मुद्रक—

श्री राधेश्वरनाथ भार्गव

स्टैन्डर्ड प्रेस, बाई का बाग

इलाहाबाद—३

अपनी ओर से

युग-कवि पन्त हिन्दी के उन रचनाकारों में सर्वथा अद्वितीय हैं जिन्होंने छायावाद के अभ्युदय-काल से लिखना प्रारम्भ किया और आज भी जो पूर्ववत उत्साह के साथ रचना-रत हैं। पन्त जी की कवि-दृष्टि अपनी निरन्तर विकासशील संवेदना और भाव-बोध के द्वारा युग-सापेक्ष्य चेतना को बड़े कौशल से रेखांकित करती रही है। काव्य—मूल्यांकन के क्षेत्र में कई छायावाद—युगीन कवियों की गतानुगतिकता को लेकर उनके वर्तमान समय से पिछड़े होने की मान्यता रूढ़ हो चुकी है किन्तु पन्त-काव्य के प्रेमियों का यह दावा है कि पन्त का समग्र काव्य-व्यक्तित्व उपर्युक्त मान्यता का एक प्रबल अपवाद है।

पन्त जी को मुख्यतः आस्था और सौन्दर्य का कवि घोषित किया गया है। वर्तमान जीवन के अति भोगवाद और अति-भौतिकता की प्रवृत्ति से उनका भावुक मन क्षुब्ध होता है किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह रूढ़िवादी और परिवर्तन-विरोधी हैं। 'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र" जैसी उनकी रचनाएँ परिवर्तन के प्रति पन्त जी की स्वस्थ दृष्टि का परिचय देती हैं। पन्त जी का विरोध जीवन की परिवर्तनशीलता से नहीं, जीवन की कृत्रिमता से है। वह जीवन को उसकी नैसर्गिकता में पल्लवित होते देखना चाहते हैं। वह उस सौन्दर्य के कवि नहीं हैं जो अस्वाभाविकता के सभ्यता-कलश से मंडित हो। वह सहज सौन्दर्य के उपासक हैं क्योंकि उनकी सौन्दर्य-चेतना प्रकृति के उन्मुक्त साहचर्य से विकसित हुई है। अप्रतिहत आस्था वाली इस सौन्दर्य-चेतना के स्फुलिंग मूलतः वीणा, पल्लव और ग्रंथि के रचना काल से ही पन्त काव्य में चमकने लगे थे और उनमें से कुछ शुभ्र तारागणों के समान आज भी 'तारापथ' को आलोकित करने के लिए मानो एकत्रित हो गए हैं।

साहित्य-गगन के इस 'तारापथ' को उसको अधिकाधिक समग्रता में अवलोकित करने की दृष्टि सहृदय पाठक और विशेषतया विद्यार्थी वर्ग को दे सकना ही, इस पुस्तक का उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्णता में ही मेरे क्षुद्र प्रयास की सार्थकता निहित है।

सुविधा के लिए मैंने इस पुस्तक को दो भागों में बाँटा है—एक आलोचनात्मक, दूसरा व्याख्यात्मक। आलोचनात्मक भाग में पन्त-काव्य के विविध-पक्ष और उनकी प्रासंगिकता पर दृष्टिपात किया गया है; व्याख्यात्मक अंश के अन्तर्गत तारापथ की इक्कीस कविताओं का भावार्थ दिया गया है। भावार्थ से सम्बंधित कठिन शब्दों के अर्थ भी यथास्थान दे दिये गये हैं।

आशा है, इस रूप में पुस्तक छात्रोपयोगी सिद्ध होगी।

पुस्तक की मौलिकता के सम्बंध में मेरा कोई दावा नहीं है। इस सम्बंध में कुछ भी लिखकर मैं अपने क्षुद्र अहं को ज्ञापित करूँ तो हास्यास्पद ही होगा। वस्तुतः पन्त-काव्य के विभिन्न विद्वान पारखियों की पुस्तकों से सहयोग लिये बिना इस पुस्तक की रचना ही असंभव थी। अतएव मैं उन सब विद्वान लेखकों के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ जिनकी पुस्तकों से किसी न किसी रूप में मैंने इस पुस्तक के प्रणयन में सहायता ली है।

अन्त में श्री नरेश भार्गव और श्री रमेश भार्गव को भी मैं धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने बड़े परिश्रम से इस पुस्तक को वीना प्रकाशन' बाई का बाग इलाहाबाद से प्रकाशित करने में योग दिया है।

प्रूफ संशोधन का कार्य मेरे प्रिय शिष्य श्री राम बाबू शर्मा (बी० ए० द्वितीय वर्ष, यूइंग क्रिश्चियन कालेज, इलाहाबाद) ने जिस मनोयोग से किया; उसके लिए उन्हें शुभ कामनाओं के अतिरिक्त और क्या अर्पित करूँ?

पुस्तक में संभावित त्रुटियों के लिए अपने अध्यापक-साथियों और विद्यार्थी-बन्धुओं के सुझाव का स्वागत करूँगा।

मालवीय नगर
इलाहाबाद

बेङ्कटेश नारायण श्रीवास्तव
११-१२-७१

विषयानुक्रमणिका

प्रथम भाग

द्वितीय भाग

अध्याय | १

छायावाद और महाकवि पंत

प्राचीन परम्पराओं, रूढ़ियों, शास्त्रीय मान्यताओं एवं समस्त परिपाटियों के विरुद्ध जिस भावधारा का जन्म १६१६-१७ के आस-पास हुआ, वह हिन्दी-साहित्य-जगत् में 'छायावाद' कहलाई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है—'यह स्वच्छन्द नूतन पद्धति अपना रास्ता निकाल ही रही थी कि श्री रवीन्द्रनाथ की रहस्यात्मक कविताओं की धूम हुई और कवि एक साथ 'रहस्य-वाद' और 'प्रतीकवाद' या 'चित्रभाषावाद' को ही एकांत ध्येय बनाकर चल पड़े। 'चित्रभाषा' या 'अभिव्यंजना-पद्धति पर ही जब लक्ष्य टिक गया तब उसके प्रदर्शन के लिए लौकिक या अलौकिक प्रेम का क्षेत्र ही काफी समझा गया। इस बंधे हुए क्षेत्र के भीतर चलनेवाले काव्य ने 'छायावाद' का नाम ग्रहण किया।' वास्तव में आचार्य शुक्ल ने छायावाद' को दो अर्थों में स्वीकार किया है—प्रथम रहस्यवाद के अर्थ में जहाँ उसका सम्बन्ध काव्य-वस्तु से होता है तथा द्वितीय प्रयोग काव्य-शैली या पद्धति-विशेष के व्यापक अर्थ में है। प्रथम में प्राचीन सन्तों की वाणी के आधार पर रहस्यवादी रचनाएँ होती थीं जो नानारूपकों के रूप में उपलब्ध आध्यात्मिक ज्ञान का आभास दिलाती थीं, "इसी रूपात्मक आभास को योरप में 'छाया' (Phantasmata) कहते थे। प्रायः यह माना जाता है कि योरप की साहित्यिक मान्यताओं का प्रभाव भारतीय साहित्य पर बंगाल के कवियों की रचनाओं के माध्यम से पड़ा। बंगाल में तत्कालीन प्रभावपूर्ण संस्थाओं में ब्रह्म समाज का नाम उल्लेखनीय है। ब्रह्म समाज से प्रभावित कवियों ने जो आध्यात्मिक गीत या भजन उस समय लिखे, उन्हें छायावादी गीत कहा गया। द्वितीय सन् १८८५ में फ्रांस में रहस्यवादी कवियों का एक दल खड़ा हुआ जो प्रतीकवादी (Symbolists) कहलाया। वे अपनी रचनाओं में प्रस्तुतों के स्थान पर अधिकतर अप्रस्तुत प्रतीकों को लेकर चलते थे। इसी से उनकी शैली की ओर लक्ष्य करके 'प्रतीकवाद' शब्द का व्यवहार होने लगा।' शुक्लजी के शब्दों में 'छायावाद का सामान्यतः अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करनेवाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन।' इससे स्पष्ट होता है कि यह एक शैली मात्र है।

द्विवेदी युगीन काव्य में इतिवृत्तात्मकता थी। इसीलिए पन्त, प्रसाद, निराला और महादेवी आदि कवियों ने माधुर्य एवं अभिव्यंजना की दृष्टि से इस नूतन शैली का प्रयोग किया। जयशंकर प्रसाद ने 'छायावाद' के सम्बन्ध में लिखा है--'जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे 'छायावाद' नाम से अभिहित किया गया।' उनके अनुसार 'छायावाद' भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय, प्रतीक विधान, तथा उपचार-वक्रता के साथ स्वानुभूति की विकृति छायावाद की विशेषताएँ हैं, अपने भीतर से मोती के पानी की तरह अन्तर स्पर्श करके भाव समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति की छाया कान्तिमयी होती है। 'डॉ० नगेन्द्र ने भी छायावाद के सम्बन्ध में अपने मत व्यक्त किए हैं—'छायावाद स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह है।'. आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी के अनुसार—'नयी छायावादी काव्यधारा का भी एक आध्यात्मिक पक्ष है; किन्तु उसकी मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है। उसे हम बीसवीं शताब्दी का मानवीय प्रगति की प्रतिक्रिया भी कह सकते हैं। उसकी एक नवीन और स्तवन्त्र काव्य-शैली बन चुकी है। आधुनिक परिवर्तनशील समाज-व्यवस्था और विचार-जगत में छायावाद भारतीय आध्यात्मिकता की नवीन परिस्थिति के अनुरूप स्थापना करता है। छायावादी काव्य प्राकृतिक सौन्दर्य और सामाजिक जीवन परिस्थितियों से ही मुख्यतः अनुप्राणित है। छायावाद मानव जीवन सौन्दर्य और प्रकृति को आत्मा का अभिन्न स्वरूप मानता है। ·· नवीन काव्य (छायावाद) में समस्त मानव अनुभूतियों की व्यापकता स्थान पा सकी है। (आधुनिक साहित्य पृ० ३१९-२०) इसका आशय छायावाद का विस्तार है। रहस्यवाद एवं स्वच्छन्दतावाद उसमें समाहित हो जाते हैं।

छायावाद के जन्म के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। शुक्ल जी ने संवत् १९७० के आस-पास स्वीकार किया। जिसमें प्रारम्भिक कवि मैथिलीशरण गुप्त एवं मुकुटधर पांडेय को बताया। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने सुमित्रानन्दन पंत को छायावाद का प्रथम कवि कहा। डॉ० प्रभाकर माचवे ने माखनलाल चतुर्वेदी को और इलाचन्द जोशी ने 'प्रसाद' को। इस प्रकार काफी मत वैभिन्य है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अब तक छायावाद के सम्बन्ध में विद्वानों के मत स्पष्ट नहीं हैं। प्रो० शिवकुमार शर्मा ने छायावाद के रूप का निर्धारण करते हुए लिखा है— (१) छायावाद में आध्यात्मिकता होती है। (२) यह एक प्रवृत्ति विशेष है। (३) छायावाद प्रकृति में मानवीकरण है। (४) छायावाद में एक दार्शनिक अनुभूति है। (५) यह एक भावात्मक दृष्टिकोण है। (६) यह एक स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है। (७) यह एक गीतिकाव्य है! जिसमें प्रेम और सौन्दर्य का अंकन होता है। (८) इसमें

स्वानुभूति का ध्वन्यात्मक लाक्षणिक तथा उपचार वक्रतामयी प्रतीकात्मक शैली अभिव्यक्तिकरण होता है। (९) इसमें युगानुरूप वेदना की निवृत्ति होती है। और यह एक सांस्कृतिक चेतना का परिणाम है। (१०) इसमें आधुनिक औद्योगिकता से प्रेरित व्यक्तिवाद है। जिसमें वैयक्तिक चिन्तन और अनुभूति का प्राधान्य है तथा इसमें मानवीय जीवन के नव मूल्यों का अंकन है। (११) यह एक थोथी नैतिकता, रूढ़िवाद और सामंती साम्राज्यवादी बन्धनों के प्रति विद्रोह है। (१२) इसका असली मूलाधार सर्वात्मवाद है।

वास्तव में छायावादी काव्य का समूचा अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट ही उक्त बातें चरितार्थ होती हैं जिसमें एक व्यापक एवं विशिष्ट दर्शन समाहित है। 'पल्लव' एवं गुंजन में छायावाद की सफल अभिव्यक्ति हुई है। जिसमें प्राकृतिक-सौन्दर्य अपनी छाया को समेटे हुए विद्यमान है। उदाहरणार्थ :—'पल्लव' एवं 'गुंजन' में अधोलिखित भावाभिव्यक्ति स्पष्ट है :—

कौन, कौन तुम परिहत वसना,
म्लान मना, भू पतिता सी,
वात हता विच्छिन्न लता सी
रति श्रांता ब्रज वनिता सी? (पल्लव, छाया)

नीरव संध्या में प्रशान्त
डूबा है सारा ग्राम प्रांत!
पत्तों के आनत अधरों पर सो गया निखिल बन का मर्मर,
ज्यों वीणा के तारों में स्वर!
खग कूजन भी हो रहा लीन, निर्जन गोपथ अब धूलि हीन,
धूसर भुजंग-सा जिह्म क्षीण!
झींगुर के स्वर का प्रखर तीर, केवल प्रशान्ति को रहा चीर
सन्ध्या-प्रशान्ति को कर गंभीर! (गुजन, एक तारा)

पंत काव्य में छायावादी सौन्दर्य भावनाओं एवं अभिव्यंजनात्मकता का सफल चित्रण हुआ है। भले ही आलोचक 'प्रसाद' को छायावाद का प्रवर्तक कहें किन्तु यह तो अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा कि 'छायावाद में कलात्मकता पंत के द्वारा ही मुखरित हुई है। छायावाद के महत्वपूर्ण उपकरणों में वैयक्तिकता, शृङ्गारिकता, प्रकृति-प्रेम वेदनावाद एवं कलात्मकता आदि आते हैं। ये समस्त उपकरण पंत काव्य में मिल जाते हैं। यह भी पूर्ण सत्य है कि द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता का स्थान भावात्मक ने ले लिया और वस्तुगतता का स्थान आत्मगतता ने। छायावादी कवि ने किसी का इतिहास नहीं लिखा बल्कि अपने अन्तर को ही रचनाओं में ध्वनित किया है। अन्य छायावादी कवियों की

तुलना में पंत में ये समस्त गुण मिल जाते हैं। पंत का 'ग्रन्थि' महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। 'पल्लव' में तो मानों उनकी भावना ने साकार रूप ही ले लिया है। कहीं-कहीं अहं भाव का विस्फोट भी देखा जा सकता है—

मधुरिमा के मधुमास !
मेरा मधुकर का सा जीवन
कठिन कर्म है, कोमल है मन;
विपुल मृदुल सुमनों से सुरभित,
विकसित है विस्तृत अग उपवन !
यही हैं मेरे तन मन, प्राण,
यही हैं ध्यान, यही अभिमान;
धूलि की ढेरी में अनजान
छिपे हैं मेरे मधुमय गान ! (पल्लव, उच्छ्वास)

छायावादी कवि सौन्दर्यप्रेमी होते हैं। अतः सदैव कवि अपने हृदय के रागात्मक सम्बन्ध को सुन्दर वस्तु के साथ जोड़ता है जिसमें कुतूहलता भी बनी रहती है।
उदाहरणार्थ :—

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि !
तूने कैसे पहचाना ?
कहाँ, कहाँ हे बाल विहँगिनि !
पाया तूने यह गाना ? (वीणा, प्रथम रश्मि)

छायावादी कवियों ने अन्तर एवं बाह्य के सुन्दर चित्र खींचे हैं। प्रकृति में उनका मन अधिक रमा हुआ दिखलाई पड़ता है। प्रकृति पर चेतना का आरोप तो पग-पग पर दिखाई पड़ता है। इसका कारण, पाश्चात्य अंग्रेजी कवियों का प्रभाव है। पंत, प्रसाद, निराला आदि कवियों ने प्रकृति को चेतन रूप में ही स्वीकार किया है। विश्वम्भर मानव ने स्पष्ट कहा है—"जहाँ तक पंत जी का सम्बन्ध है उन्होंने इससे भी सुक्ष्मता और गहराई से प्रकृति के प्राणों को पहचाना है। उन्होंने उसे सबसे अधिक व्यापक रूप में मानवीय क्रिया-कलापों से सम्पन्न किया है। उसके 'पल्लव' विश्व पर विस्मित चितवन डालते हैं; उनका गिरि-सुमन दृगों से अवलोकता है। उनका उपवन फूलों के प्याले में अपना यौवन भर-भर कर मधुकर को पिलाता है, उनके मेघों के बाल मेमनों से गिरि पर फुदकते हैं, उनकी लहरें किरणों के हिंडोल पर नाचती हैं, विटपी की व्याकुल प्रेयसि छाया बाँह खोलकर कवि को गले लगाने की क्षमता रखती है, उनकी दृष्टि में दशमी के शशि अपने तिर्यक मुख को लहरों के घूंघट से झुक-झुक कर रुक-रुक कर मुग्धा दिखलाता है उनका मलयानिल उर्वी के उर से तंद्रिल छायांचल सरका देता है।"

वास्तव में पन्त की कविताओं में चेतना का अरोप समाहित है। पन्त जी जब प्रकृति का चित्रण करने लग जाते है तब ऐसा प्रतीत होता कि मानों प्रकृति स्वयं उनके हृदय में विद्यमान है। इसका कारण यह है कि कवि ने नदी, आकाश, बादल, नक्षत्र आदि की प्रकृति को नजदीक से पहचाना है। उदाहरणार्थ—

यह अमूल्य मोती का साज
इन सुवर्णमय, सरस परों में
(शुचि स्वभाव से भरे सरों में)
मुझको पहना जगत देखले;—यह स्वर्गीय प्रकाश
मंद विद्युत सा हँसकर,
वज्र सा उर में धँसकर,
गरज, गगन के गान ! गरज गंभीर स्वरों में,
भर अपना सन्देश उरों में, औ अधरों में,
बरस धरा पर, बरस सरित, गिरि, सर, सागर में,
हर मेरा संताप, पाप जग का क्षण भर में ! (उच्छ्वास)

कवि ने कितनी सुक्ष्मता के साथ अपनी आन्तरिक वेदना को प्रकृति के माध्यम से प्रकट किया है। जहाँ तक कवि के नारी रूप के चित्रण का प्रश्न है वहाँ कवि अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा काफी सजग दिखलाई पड़ता है। 'उच्छ्वास' में कवि 'बालिका' की सरलता एवं भावुकता का जब वर्णन करता है तब उसी के अनुरूप स्वयं हो जाता है।

सरलपन ही था उसका मन
निरालापन था आभूषण,
कान से मिले अजान नयन
सहज था सजा सजीला तन ! सुरीले, ढीले अधरो बीच
अधूरा उसका लचका गान
विकच बचपन को, मन को खीच
उचित बन जाता था उपमान। (उच्छ्वास)

छायावादी कविताओं में शृङ्गारिकता को अतीव प्रधानता है। क्योंकि व्यक्तिवादी प्रवृत्ति का दूसरा रूप ही शृङ्गारिकता है। किन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि पूर्ववर्त्ती शृंङ्गार एवं छायावादी शृंगार में काफी अन्तर है। दोनों की शृङ्गारिक भावनाएँ अलग-अलग हैं। डॉ नगेन्द्र ने इस सम्बन्ध में कहा है—'छायावाद में शृङ्गार के प्रति उपयोग का भाव न मिलकर विस्मय का भाव मिलता है, इसलिए उसकी अभिव्यक्ति स्पष्ट और मांसल न होकर कल्पनामय और मनोमय है। छायावाद का

कवि प्रेम को शरीर की भूख न समझकर एक रहस्यमयी चेतना समझता है । नारी के अंगों के प्रति उसका आकर्षण नैतिक आतंक से सहम कर जैसे एक अस्पष्ट कौतूहल में परिणत हो गया है । इसी कौतूहल ने छायावाद के कवि के और नारी के व्यक्तित्व के बीच अनेक रेशमी झिलमिल पर्दे डाल दिए हैं । वास्तव में छायावाद के झिलमिल काव्य-चित्रों का मूल उद्गम यही झिलमिल पर्दे हैं । उसके मायावी रूप का वैभव इन्हीं से उत्कीर्ण होता है और इन्हीं पर आश्रित होने के कारण छायावाद की काव्य-सामग्री के अधिकांश प्रतीक-काम-प्रतीक हैं ।" यद्यपि डॉ० नगेन्द्र का उक्त कथन काफ़ी अंशों में सत्य है किन्तु फिर भी पंत काव्य के प्रति ऐसा अनुमान करना उचित नहीं है । पंत काव्य में शृंगार के स्थलीय चित्र मिलते हैं ।

"तुम मुग्धा थी अति भाव-प्रवण,
उकसे थे अंबियों से उरोज,
चंचल प्रगल्भ, हँसमुख उदार,
मैं सलज तुम्हें था रहा खोज ।"

छायावादी युग में नायिका के अंग-प्रत्यंग का शृङ्गार तो प्रकृति ने किया है । महाप्राण 'निराला की 'जूही की कली' इनके अन्तर्गत आती है । पंत के काव्य में भी यह रूप देखा जा सकता है । किन्तु कवि की 'बादल' कविता में अपार सत्ता का भी ज्ञान किया जा सकता है । जैसे—

नभ में अवनि, अवनि में अम्बर,
सलिल भस्म, मारुत के फ़ूल,
हम ही जल में थल - थल में जल
दिन के तम, पावक के तूल ! (बादल)

छायावादी कवियों के काव्य में दो प्रकार की वेदनाएँ मिलती हैं । (१) व्यक्तिगत (२) सामाजिक । पंत काव्य में तो दोनों ही रूप सरलता के साथ ढूँढ़े जा सकते हैं । 'ग्रंथि' में 'व्यक्ति वेदना' तथा 'गुन्जन' एवं 'परिवर्तन' में सामाजिक वेदना का रूप

अविरत दुख है उत्पीड़न,
अविरत सुख भी उत्पीड़न,
दुख-सुख की निशा-दिवा में,
सोता-जगता जग-जीवन ।
यह साँझ-उषा का आँगन,
आलिंगन विरह-मिलन का,
चिर हास-अश्रुमय आनन
रे इस मानव जीवन का ?
(गुन्जनः 'मैं नहीं चाहता चिर सुख')

इसके अतिरिक्त छायावादी कवियों की कविताओं में ध्वन्यात्मकता लाक्षणिकता एवं प्रतीकात्मकता की बहुलता है। किन्तु पंत काव्य में लाक्षणिकता की । जैसे—

'देख वसुधा का यौवन भार
गूँज उठता है तब मधुमास।'

वाच्यार्थ मधुमास का अर्थ गूजना हुआ किन्तु लाक्षणिक अर्थ—मधुमास में भौरों का गूँजना। इसी प्रकार से छायावादी कवियों में प्रतीक विधान की अधिकता है। पंत की कविता में प्रतीकात्मकता भी दिखाई पड़ती है। जैसे—

'किसने रे क्या-क्या चुने फूल
जग के छवि उपवन से अकूल
किस में कलि किसलय कुसुम शूल।'

इसमें कलि का प्रयोग आशा हेतु, किसलय प्रेमार्थ, कुसुम सुखार्थ एवं शूल दुःखार्थ प्रयुक्त हुआ है।

प्रतीकात्मक प्रयोग के अतिरिक्त पाश्चात्य अलंकार का प्रयोग भी स्पष्टतः देखा जा सकता है। विशेषण विपर्यय मानवीकरण और ध्वनि-चित्रण आदि प्रमुख अलंकार हैं। विशेषण विपर्यय का उदाहरण पंतकाव्य में दिखलाई पड़ता है—

'शान्त स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्जवल
अपलक अनंत नीरव भूतल
सैकत शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगीगंगा ग्रीष्म विरल
लेटी हैं श्रांत, क्लांत, निश्चल! (नौका-विहार)

मानवीकरण का उदाहरण तो अधिक मिलता है। जैसे—

'सिहर उठे पुलकित हो द्रुम दल
सुप्त समीरण हुआ अधीर।'

(प्रथम रश्मि का आनारंगिणि, वीणा)

वास्तव में जब हम पंत काव्य का अध्ययन करते हैं तब स्पष्ट हो जाता है कि कवि में छायावाद के प्रति विशेष प्रेम है। कदाचित् इसीलिए छायावाद के प्रति उनकी सचेतनता बराबर बनी रही। पंत जी छायावाद के जन्मदाताओं में से एक हैं। आज उनकी रचनाओं में आध्यात्मिक तत्व विशेष रूप से पाये जाते हैं किन्तु फिर भी छायावादी तत्वों का अभाव नहीं।

—※—

अध्याय | २

पंतकाव्य के विविध पक्ष

प्रकृति के उपासक पन्तजी का जन्म प्रकृति के सुरम्य कूर्मांचल प्रदेश में हुआ था। अतः प्रकृति के प्रति प्रेम रखना स्वाभाविक ही था। शनैः-शनैः देशकाल के प्रति भी जागरूक होते गये। जिसका परिणाम यह हुआ कि पन्तजी मानव-जीवन के कवि हो गए। मानव जीवन का कल्याण बिना अध्यात्म के नहीं हो सकता है – ऐसी धारणा कवि की थी जिसके कारण अध्यात्म की ओर भी बढ़ते गये किन्तु मूल प्रेरणा प्रकृति से ही मिली थी। यों तो पन्तजी १५-१६ वर्ष की अवस्था से ही कविताएँ लिखने लगे थे। अपनी मूल प्रेरणा के विषय में स्वयं कवि ने कहा है—'कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली जिसका श्रेय मेरी जन्म-भूमि कूर्मांचल को है कवि जीवन के पहले भी मुझे याद है मैं घंटों एकान्त में बैठा प्राकृतिक दृश्यों को एक टक देखा करता था और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर अव्यक्त सौन्दर्य जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था।' इस प्रकार स्पष्ट है कि पन्तजी प्रारम्भ से ही प्रकृति के प्रति प्रेम रखते थे। अतः उनकी काव्य रचनाओं में प्रकृति प्रेम अधिक मिलता है। किन्तु समय के प्रवाह के कारण पन्त की प्रतिभा दिन प्रतिदिन विकसित होती गयी और विचारों में प्रौढ़ता आती गई।

प्रसिद्ध कवि बच्चन ने इनकी रचनाओं की तालिका इस प्रकार से प्रस्तुत की है—'उच्छवास (१९२२), पल्लव (१९२६), वीणा (१९२७), ग्रंथि (१९२९), गुञ्जन (१९३२), ज्योत्स्ना (१९४९), युगान्त (१९३६), पाँच कहानियाँ (१९३६), युगवाणी (१९३९), ग्राम्या (१९४०), स्वर्णकिरण (१९४७), स्वर्णधूलि (१९४७), मधुज्वाल (१९४८), खादी के फूल (१९४८), युगपथ (१९४९), उत्तरा (१९४९), रजत शेखर (१९५१), शिल्पी (१९५२), गद्य पथ (१९५३), अतिमा (१९५५), सौवर्ण (१९५७) वाणी (१९५८), कला और बूढ़ा चाँद (१९५९), और साठ वर्षः एक रेखांकन (१९६०), इनके अतिरिक्त भी कुछ कृतियाँ प्रकाश में आ चुकी हैं जो इस प्रकार से हैं किरण वीणा (१९६६), पुरुषोत्तम राम (१९६६),पौ फटने से पहले (१९६७),कृता (१९७१) आदि इन कृतियों से पन्त के लगभग अब तक के जीवन का क्रमिक विकास मिल जाता है। इसके अतिरिक्तकवि के कुछ काव्य-संकलन भी प्रकाशित हो चुके हैं। जैसे आधुनिक कवि भाग दो,

कवि श्री 'पल्लविनी' रश्मिबन्ध, चिदम्बरा, लोकापतन और 'तारापथ'। 'छायावाद पुर्न-मूल्यांकन' में पन्त के छायावादी विचार हैं। जो छायावाद की दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। यहाँ हम पन्त की प्रमुख काव्य कृतियों पर ही प्रकाश डालेंगे।

वीणा :—कवि की प्रारम्भिक कृति है। अधिकांशतः रचनाएँ १९१८-१९ की हैं, यह कवि की अपरिपकवावस्था थी। अतः भाव,भाषा और शैली में गम्भीरता नहीं आ पायी। किन्तु कवि के सौन्दर्यवादी होने के कारण प्रकृति की सौन्दर्यवादी दृष्टि 'वीणा' में ही मुखरित हुई है। कवि पन्त ने 'मैं और मेरी कला' निबन्ध में लिखा है इन रचनाओं में प्रकृति ही अनेक रूप धरकर चपल मुखर नूपुर बजाती हुई अपने चरण बढ़ाती रही है। समस्त काव्यपट प्राकृतिक सुन्दरता के धूप छाँह से बना हुआ है। चिड़िया, भौंरे झिल्लियाँ, झरने, लहरें, आदि जैसी मेरी बाल-कल्पना के छायावन में मिलकर वाद्य-तरंग बजाते रहे हैं।'

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि ! तूने कैसे पहचाना।
कहाँ, कहाँ हे बाल विहंगिनि ! पाया तूने यह गाना ?
(तारापथ, एक)

उक्त पंक्तियों को देखने से ही स्पष्ट हो जाता है कि कवि के हृदय में प्रकृति समाहित है और मन्द-मन्द ध्वनि से अपने गीत प्रस्तुत कर रही है। इतना ही नही जब कवि कौतूहलता के साथ अपनी भावनाएँ व्यक्त करता है।

कूक उठी सहसा तरुवासिनि !
गा तू स्वागत का गाना,
किसने तुझको अन्तर्यामिनि !
बतलाया उसका आना ?

(तारापथ, एक)

सहसा सूर्यागमन के स्वागतार्थ कोयल का कूकना-मंगल-गान ही है। तृतीय पंक्ति में कवि ने कोयल को 'अन्तर्यामिनि' कहा है, क्योंकि 'प्रथम रश्मि' की सूचना उसे स्वतः प्राप्त हो गई है। कहीं-कहीं 'वीणा' की कविताओं में प्रकृति गान करती है -

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले ! तेरेबाल-जाल में कैसे उलझादूँ लोचन ?

तजकर तरल तरंगों को,
इन्द्र धनुष के रंगों को,
तेरे भ्रू भंगो से कस बिंधवा दूँ निज मृग-सा मन ?

आदि अनेक रचनाएँ प्रकृति की साक्षी हैं। इसके अतिरिक्त 'मिले तुम राकापति में आज' नामक कविता में 'रहस्यात्मक प्रभाव भी दिखलाई पड़ता है। यथा—

हुआ था जब सन्ध्या आलोक
हँस रहे थे तुम पश्चिम ओर,
विहगरव बनकर मैं चितचोर !
गा रहा था गुण, किन्तु कठोर !
रहे तुम नहीं वहाँ भी, शोक !
निठुर ! यह भी कैसा अभिमान ?

(तारापथ-दो)

बाल–सुलभ कौतूहलता, एवं प्रकृति चित्रण के साथ-साथ विश्व प्रेम आत्म-निवेदन तथा प्रतिबिम्बवाद की झलक स्पष्ट ही दिखलाई पड़ती है। प्रतिबिम्बवाद का उदाहरण—

माँ ! वह दिन कब आएगा जब
मैं तेरी छबि देखूँगी।
जिसका यह प्रतिबिम्ब पड़ा है
जग के निर्मल दर्पण में।

किन्तु कवि ने 'वीणा' के सम्बन्ध में कहा है—'वीणा की रचनाओं में मेरे अध्ययन अथवा ज्ञान की कमी को जैसे प्रकृति ने अपने रहस्य–संकेत तथा प्रेरणा-बोध से पूरा कर दिया है। उनके भीतर से एक प्राकृतिक जगत का टहटहापन, सहज उल्लास तथा अनिवर्चनीय पवित्रता फूटकर स्वतः काव्य का उपकरण आदि उपादान बन गई है। इतना ही नहीं कवि ने 'वीणा' को ताल लय रहित भी कहा है। किन्तु इतना सब होते हुए भी 'वीणा' कवि की सफल काव्य कृति है और उसमें 'प्रथम रश्मि' कविता कवि की प्रौढ़ता की परिचायक है जिसमें छायावादी भावनाओं की सौन्दर्यता पूर्ण रूप से झलकती है।

ग्रन्थि :—प्रस्तुत काव्यकृति में वियोग श्रृङ्गार की प्रधानता है। जिसमें सौन्दर्य एवं प्रेम की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की गई है। विभिन्न आलोचकों ने इसे खण्ड काव्य के रूप में स्वीकार किया है। किन्तु आत्मा गीतिकाव्य की ही है। कथा का

प्रयोग तो पृष्ठभूमि के ही रूप में हुआ है। जैसा कि डॉ० इन्द्रनाथ मदान का विचार है–इतनी सी कथा को कवि ने संस्कृत की अलंकृत शैली में नई अभिव्यंजना के साथ लिखा है। कवि-हृदय की आशा, निराशा और सौन्दर्य के विभिन्न चित्रों से यह कृति भरी है। स्थान-स्थान पर प्रेम-सम्बन्धी विविध मानवीय व्यापारों की सरस व्यंजना भी है, जो कवि की भाषा के माधुर्य से नया रूप लेकर आई है।' वास्तव में कवि का प्रकृतिवादी सौन्दर्य नारी-रूप में बिंध गया है—

इन्दु की छवि में तिमिर के गर्भ में,
अनिल की ध्वनि में सलिल के बीच में।
एक उत्सुकता विचरती थी सरल,
सुमन की स्मृति में लता के अधर में।

इस प्रकार कवि का दृष्टिकोण नारी के सौन्दर्य की परख में तन्मय दिखाई पड़ता है। किन्तु जब नायक का पाणि-ग्रहण दूसरी कन्या से हो जाता है तब बालिका की दुःखभरी भावना प्रकट हो जाती है। यथा—

हाय ! मेरे सामने ही प्रणय का,
ग्रन्थिबन्धन हो गया, वह नवकुसुम,
मधुप सा मेरा हृदय लेकर, किसी-
अन्य मानस का विभूषण हो गया।'

वस्तुतः ग्रंथि कवि की सफल कृति है। शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों के अतिरिक्त मानवीकरण, विशेषण विपर्यय आदि पाश्चात्य अलंकार बड़ी सफलता के साथ प्रयुक्त हुए हैं। भाषा की चित्रमयता भी देखी जा सकती है।

श्रीमती शची रानी गुर्टू ने ग्रन्थि की तुलना Epipsychidion की है और अन्त में कहा भी है—कहना न होगा कि ग्रंथि और Epipsychidion दोनों में ही प्रेम की मार्मिक अभिव्यंजना, कला का निखरा रूप हृदय की अन्तरतम अनुभूतियों का अभिनव चित्रण, निराशा, दुःख, आकुल वेदना और हृदय को उन्मत्त बना देने वाली भावना का जाग्रत स्वरूप है। कहीं प्रेम की शीतल धारा प्रवाहित हो रही है तो कहीं हृत्तल से विरहाग्नि की चिनगारियाँ छिटक-छिटक कर बाहर फूट पड़ती हैं, कहीं करुण उच्छ्वास हैं तो कहीं आँसू की बूँदे, कहीं उन्मुक्त प्रेम की कलकल ध्वनि है तो कहीं आन्तरिक वेदना का करुण-क्रंदन। दोनों ही प्रणयग्रन्थ उत्कृष्ट चित्रमय कल्पना से मुक्त और परिष्कृत श्रृंगार रसज्ञता से ओत-प्रोत हैं।

पल्लव :—'पल्लव' पन्तजी की प्रौढ़ रचना है। काव्य की दृष्टि से 'बादल', 'उच्छ्वास' आदि कविताएँ अधिक सफल हैं। पाश्चात्य कवियों का प्रभाव पूर्णरूपेण

प्रस्तुत ग्रन्थ में देखा जा सकता है। प्रथम इसका प्रकाशन १९३६ में हुआ था। इस पुस्तक में कई तिरंगे चित्र थे। बच्चनजी ने इसके विषय में कहा है—'इसके पूर्व हिन्दी कविता की कोई पुस्तक इतने ठाट-बाट के साथ नहीं प्रकाशित हुई थी। एक से अधिक अर्थों में 'पल्लव' युग प्रवर्तक रचना थी। पन्तजी ने स्वयं इस पुस्तक के सम्बन्ध में लिखा है कि मैं प्रसन्नतापूर्वक अपने इन पल्लवों को हिन्दी के कर पल्लवों में अर्पण करता हूँ। इन्हें मैं पत्रंपुष्पम् नहीं कह सकता, ये केवल पल्लव हैं—

न पत्तों का मर्मर संगीत
न पुष्पों का रस राग पराग।

वास्तव में पन्तजी के विचारों में प्रोढ़ता आदि क्रमानुसार प्रत्येक रचनाओं में आती गई है।

स्वयं महाकवि पन्त ने लिखा है—'पल्लव' में वीणा की बालिका अधिक माँसल और सुरुचिपूर्ण बनकर आई है। उसका हृदय प्रायः मुग्धावली का हृदय है जो जीवन के प्रति अधिक संवेदनशील बन गया है। वीणा की बालिका ने प्रकृति का अतीन्द्रिय हृदय पाया था, पल्लव की प्रणयिनी अधिक चपल है और उसका हृदय प्रकृति के दृश्य जगत में खुल गया है। वीणा में प्रकृति का जो रूप मलमल की फेनोज्ज्वल साड़ी के शुभ्र परिधान से मुक्त था पल्लव में वह अलंकृत होकर चित्रित हुआ है। पल्लव की रचनाओं में पौर्वात्य और पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है। यह अवश्य सत्य है कि पन्तजी की रचनाओं में एक ओर सौदर्न्य सम्बन्धी मान्यताएँ मिलती हैं जहाँ कवि अरुण सरोज की उपमा मुख से देता है तथा दूसरी ओर सुनहले केश और नीले नेत्र भी उसकी दृष्टि में आ जाते हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ के कला के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखा है पन्तजी की पहली प्रौढ़ रचना पल्लव है, जिसमें प्रतिभा के उत्साह या साहस का तथा पुरानी काव्य-पद्धति के विरुद्ध प्रतिक्रिया का बहुत बढ़ा-चढ़ा प्रदर्शन है। इसमें चित्रमयी भाषा लाक्षणिक वैचित्र्य अप्रस्तुत विधान इत्यादि की विशेषताएँ प्रचुर परिमाण में भरी सी पाई जाती हैं। आचार्य शुक्ल का उक्त कथन सत्य है क्योंकि कवि ने ब्रजभाषा की काव्य-परम्परा को नहीं स्वीकार किया और इसकी आलोचना करते हुए लिखा हम इस ब्रज की जीर्ण-शीर्ण छिद्रों से भरी पुरानी छींट की चोली को नहीं चाहते; इसकी संकीर्ण कारा में बन्दी हो हमारी आत्मा वायु की न्यूनता के कारण सिसक उठती है, हमारे शरीर का विकास रुक जाता है। हमें यह पुराने फैशन की मिस्सी पसन्द नहीं, जिससे हमारी हँसी की स्वाभाविक उज्ज्वलता रंग जाती फीकी और मलिन पड़ जाती है। यह बिल्कुल आउट ऑवडेट हो गई। इस कथन से यह

स्पष्ट है कि कवि का प्रेम प्राचीन रुढ़ियों के प्रति नहीं है। परिवर्तन करने के लिए इन बन्धनों को सरलता से तोड़ देता है।

कवि मरहम पट्टी बांधने के पक्ष में नहीं रहा है। इसीलिए कवि की रचनाओं में पूर्ण स्वच्छन्दता का अविरल प्रवाह दिखलाई पड़ता है। वास्तव में कवि की कला का पूर्ण स्फुरण 'पल्लव' में ही हुआ। पल्लव में छायावाद की अभिव्यंजना सीमित है। कवि को उन्मुक्त उड़ान ने वाणी दी है क्योंकि जीवन की सत्यता को खोजने का सफल प्रयास किया है।

कवि की कौतूहलता 'बालापन' कविता में छलक उठी है—

विहग बालिका का सा मृदु स्वर,
अर्ध खिले, नव कोमल अंग,
क्रीड़ा कौतूहलता मन की,
वह मेरी आनन्द उमंग;
अहो दयामय ! फिर लौटा दो
मेरी पद प्रिय चंचलता,
तरल तरंगों सी वह लीला,
निर्विकार भावना लता। (बालापन, तारापथ आठ)

वास्तव में इन पंक्तियों में पवित्रता का स्पर्श पाने के लिए हृदय छटपटाता सा दिखाई पड़ा है। उच्छ्वास में कवि का प्रकृति प्रेम और सौन्दर्य निरूपित है। कवि की आन्तरिक वेदना बालिका से प्रेम के रूप में दिखलाई पड़ती है। किन्तु समाज में उस प्रेम को न व्यक्त करके आसू ही बहा लेता है। जब कवि उसके रूप यौवनावस्था का स्मरण करता है तब उस समय चित्र बड़ा ही सुहावना लगता है—

धँसगए धरा में समय शाल
उठ रहा धुँआ, जल गया ताल
—यों जलद यान में विचर, विचर
था इन्द्र खेलता इन्द्रजाल !

(वह सरला उस गिरि को कहती थी बादल घर)

इस तरह मेरे चितेरे हृदय की
बाह्य प्रकृति बनी चमत्कृत चित्र थी
सरल शैशव की सुखद सुधि सी वही
बालिका मेरी मनोरम मित्र थी ?

(उच्छ्वास)

कवि की 'परिवर्तन' कविता को पढ़कर महाकवि निराला ने भी कहा था यह

किसी भी बड़े कवि की कविता से निस्संकोच मैत्री कर सकती है। यह सत्य है कि इसी कविता ने कटु आलोचकों को प्रशंसकों में परिवर्तित कर दिया।

'परिवर्तन' कविता के कुछ उदाहरण यहां द्रष्टव्य हैं—

जगत की सुन्दरता का चाँद
सजा लांछन को भी अवदात,
सुहाता बदल, बदल, दिनरात,
नवलता ही जग का आह्लाद
विश्वमय हे परिवर्तन ?
अतल से उमड़ अकूल, अपार,
मेघ से विपुलकार
दिशावधि में पल विविध प्रकार
अतल में मिलते तुम अविकार !

कवि सोचता है कि इस पार्थिव जगत में कोई वस्तु स्थायी नहीं है। सुख-दुःख मानव की अनुभूतियाँ है जो परिवर्तित होती रहती हैं। कवि इसी में अपनी प्रसन्नता समझता है तथा आध्यात्मिक रूप का भी दर्शन कराता है तथा यह स्वीकार करता है कि इस परिवर्तन का चक्र बराबर चलता रहता है। इसी संदर्भ में आचार्य शुक्ल ने भी लिखा है—जगत की परिवर्तनशीलता मनुष्य जाति को चिरकाल से क्षुब्ध करती आ रही है। परिवर्तन संसार का नियम है। यह बात स्वतः सिद्ध होने पर भी सहृदयों और कवियों का मर्म-स्पर्श करती रही है और करती रहेगी क्योंकि इसका सम्बन्ध जीवन के नित्य स्वरूप से है। जीवन के व्यापक क्षेत्र में प्रवेश के कारण कवि-कल्पना को कोमल, कठोर, मधुर, कटु, करुण, भयंकर कई प्रकार की भूमियों पर बहुत दूर तक एक संबद्ध धारा के रूप में चलना पड़ा है। जहाँ कठोर और भयंकर भव्य और विशाल तथा अधिक अर्थ समन्वित भावनाएँ हैं, वहाँ कवि ने रोला छन्द का सहारा लिया है। काव्य में चित्रमयी भाषा सर्वत्र अनिवार्य नहीं, सृष्टि से गूढ़-अगूढ़ मार्मिक तथ्यों के चयन द्वारा भी किसी भावना को मर्म-स्पर्शी स्वरूप प्राप्त हो जाता है, इसका अनुभव शायद पन्तजी को इस एक धारा में चलने वाली लम्बी कविता के भीतर हुआ है। इसी से कहीं-कहीं हम सीधे-सादे रूप में चुने हुए मार्मिक तथ्यों का समाहार पाते हैं, आदि। इसी प्रकार से प्रो० रामरजपाल द्विवेदी ने 'परिवर्तन' का विश्लेषण करते हुए लिखा है—इस महान् कविता में भिन्न-भिन्न वर्णों के चित्र हैं। कहीं शृङ्गार का अरुणराग है तो कहीं वीभत्स का नीला रंग है। एक ओर यदि स्वर्णभृगों के गंध-बिहार हैं तो दूसरी ओर 'वासुकि सहस्त्रफन की शतशत् फेनोच्छवासित स्फीत फूत्कार है। कवि की भाषा की इतनी प्रबल शक्ति अन्यत्र कम दिखाई देती है। जिस प्रकार

मानव जीवन के सिनेमागृह में मनोहर और भयंकर चित्र प्रतिक्षण बदलते रहते हैं ठीक इसी प्रकार परिवर्तन के चित्र पल में रम्य और पल में भयानक होते रहते हैं। वास्तव में 'पल्लव' काव्य-संग्रह पर जब हम सम्यक् दृष्टि डालते हैं तब यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत काव्य-संग्रह में प्रकृति, सुख-दुख की कविताएँ संग्रहीत हैं। जिसमें लाक्षणिकता ध्वन्यात्मकता एवं अप्रस्तुत योजना के सफल दर्शन होते हैं।

गुञ्जन :- यह कवि की दार्शनिक भावनाओं से ओत-प्रोत काव्य है। इसका प्रकाशन १९३२ में हुआ, इसमें सुख-दुःख को समझने के लिए और व्यक्त करने के लिए दर्शन का आधार लिया गया है। स्वयं कवि ने इनके सम्बन्ध में लिखा है—मैं पल्लव के गुञ्जन में अपने को सुन्दरम् से शिवम् की भूमि पर पदार्पण करते हुए पाता हूँ। 'गुञ्जन में मेरी बहिर्मुखी प्रकृति, सुख-दुःख में ममत्व स्थापित कर अन्तर्मुखी बनने का प्रयत्न करती है, साथ ही गुंजन........में मेरी कल्पना अधिक सूक्ष्म एवं भावात्मक हो गयी है। 'गुञ्जन' के भाषा संगीत में एक सुघरता, मधुरता और श्लक्ष्णता आ गयी है जो पल्लव में नहीं मिलती। गुञ्जन के संगीत में एकता है, पल्लव के स्वरों में बहुलता। पल्लव की भाषा दृश्य जगत् के रूप रंग की कल्पना से माँसल और पल्लवित है, गुञ्जन की भाषा भाव और कल्पना के सूक्ष्म सौन्दर्य से गुंजित। वास्तव में इस रचना में कवि ने सबके उर की डाली को देखने का प्रयास किया है। कवि जीवन का उद्देश्य प्रकट करता है चारों ओर खिले हुए जगत् की सुषमा आने से हृदय को सम्पन्न करना—

> क्या यह जीवन? सागर में जलभार मुखर भर देना!
>
> कुसुमित पुलिनों की क्रीड़ा व्रीड़ा से तनिक न लेना?

वर्तमान जगत् की अवस्था से जब कवि असन्तुष्ट हो जाता है तो कहीं सुख की अति दिखलाई पड़ती है तो कहीं दुःख की। वह 'समभाव के विचार प्रकट करता है—

> **जग पीड़ित अति दुःख से जग पीड़ित रे अति सुख से।**
> **मानव-जग में बँट जावे दुख-सुख से और सुख-दुख से।**

बुद्धि की प्रधानता होने के कारण हृदयपक्ष कहीं-कहीं दब गया है। 'नौका-विहार' में कवि प्रकृति की ओर पुनः खिचा हुआ दिखायी पड़ता है। इसी के माध्यम से रहस्यात्मक भावना भी स्वाभाविक रूप से परिलक्षित होती है। मधुर लोक की कल्पना में तो स्वाभाविकता है ही। यथा—

> दूर उन खेतों के उस पार, जहाँ तक गई नील झंकार
> छिपा छायावन में सुकुमार स्वर्ग की परियों का संसार।

'गुञ्जन' के पीछे तो पंतजी वर्तमान जीवन के कई पक्षों को लेकर चले हैं। क्योंकि कवि ने वर्तमान आशा-आह्लाद को देखा है। प्रो० वासुदेव ने 'गुञ्जन' के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किए हैं—

'गुञ्जन पंत की समस्त रचनाओं का वह संगम है, जहाँ कवि की समग्र भाव-लहरियाँ एकत्र होकर भँवर पैदा करती हैं, जिनके वात्याचक्र में प्रवेश पाना साधारण व्यक्तित्व के लिए आसान नहीं। गुंजन कवि-जीवन की साधना का वह उच्च शिखर है, जिस पर कवि की तीक्ष्ण कल्पना और गंभीर चिंतना सदैव लास्य-नृत्य करती रहती है, जिसकी चोटी पर साधारण बुद्धि की पहुँच नहीं हो सकती गुंजन पंत की सशक्त काव्य-चेतना का निदर्शन है। यहाँ उनके विश्वास, विचार तथा मान्यताएँ सब कुछ गंभीर और परिपक्व हो गये हैं। उनका पुराना दृष्टिकोण यहाँ सम्पूर्णतः बदल गया है। उसने जीवन और जगत के सारे रहस्यों को जान लिया है। इसीलिए वीणा ग्रंथि, पल्लव की रचनाओं से गुंजन बिल्कुल भिन्न हो गया है। गुंजन में पहली बार कवि ने भावना और चिंतन के बीच समन्वय उपस्थित करने की चेष्टा की है और इसमें वह सफल भी हुआ है'। कुछ आलोचकों ने कवि के विचारों को प्रौढ़तम रूप में पाकर 'छायावाद की गीता' की संज्ञा दे दी। वस्तुतः मानववादी दर्शन का सफल चित्रण हुआ हैं।

युगान्त :—'युगान्त' कवि की महत्वपूर्ण कृति है। यहीं से कवि का प्रगतिवादी युग भी प्रारम्भ होता है। कुछ विद्वानों ने इसे प्रगतिवादी युग की रचना स्वीकार किया है और कुछ ने नहीं। इसका प्रकाशन १९३६ में हुआ था। 'वीणा' से प्रारम्भ होनेवाली सौन्दर्यवादी विचार धारा का अन्तिम रूप यहीं दिखाई पड़ता है। युगान्त के विषय में पन्तजी ने लिखा है—'युगान्त में मैं निश्चय रूप से इस परिणाम पर पहुँच गया था कि मानव सभ्यता का पिछला युग अभी समाप्त होने को है और नवीन युग का प्रादुर्भाव अवश्यम्भावी हैं।" शान्ति प्रिय द्विवेदी ने कहा है—'पन्तजी की प्रगतिवादी रचनाओं में युगान्त का वही प्रारम्भिक स्थान है जो छायावाद काल में उनकी 'वीणा' का। 'वीणा में स्पष्ट सौन्दर्य बोध था, युगान्त में स्पष्ट युग बोध। एक में छायावाद का शैशव था,' दूसरे में प्रगति का बाल्यकाल। 'वीणा' का विकास पल्लव और गुंजन में हुआ, युगान्त का विकास युगवाणी और ग्राम्या में।' इतना अवश्य सत्य है कि कवि की विचार धारा पूर्णरूप से 'युगान्त' में स्पष्ट नहीं हो पायी है। निष्प्राण प्राचीनता के प्रति आक्रोश व्यक्त हो गया है और कवि शृंगार को उद्दीप्त करने वाली कोकिला से पावककण बरसाने के लिए प्रार्थना करता है——

> 'गा' कोकिल, बरसा पावक कण!
> नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन- आदि।

इसमें मानववाद की प्रतिष्ठा है। कवि का चिंतन और दर्शन हृदय के आवेश से युक्त होकर चित्रित हुआ है। कवि गाँधीवाद से प्रभावित था। इसीलिए छायावाद

का सौन्दर्यवाद गाँधीवाद की आध्यात्मिक चेतना से युक्त होकर अभिव्यक्त हुआ है। 'बापू के प्रति कविता' में जब पन्तजी कहते हैं—

सुखभोग खोजने आते सब,
आये तुम करने सत्य खोज,
जग की मिट्टी के पुतले जन,
तुम आत्मा के, मन के मनोज!
जड़ता, हिंसा, स्पर्धा में भर,
चेतना, अहिंसा, नम्र ओज,
पशुता का पंकज बना दिया;
तुमने मानवता का सरोज!

उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है, मानववाद। जहाँ पशुता मानवता में परिवर्तित हो गई है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है—'ताजमहल के कला-सौन्दर्य को देख अनेक कवि मुग्ध हुए हैं। पर करोड़ों की संख्या में भूखों मरती जनता के बीच ऐश्वर्य-विभूति के उस विशाल आडम्बर के खड़े होने की भावना से क्षुब्ध होकर युगान्त के बदले हुए पंत जी कहते हैं—

हाय! मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन!
जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन!

'पल्लव' में कवि अपने व्यक्तित्व के घेरे में बँधा हुआ, 'गुंजन' में कभी-कभी उसके बाहर और 'युगान्त' में लोक के बीच दृष्टि फैलाकर आसन जमाता हुआ दिखाई पड़ता है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि कवि की वाणी में लोकमंगल की आशा और आकांक्षा के स्वर भरे हुए हैं जिसमें भौतिकवाद के प्रति चिन्ता है, रूढ़ियों और परम्पराओं को ध्वस्त कर नवीन पथ की आशा में लीन है। यथा—

नव ऊषा-सन्ध्या अभिनंदित
नव-नव ऋतुमयि भू, शशि-शोभित,
विस्मित हो देखूँ मैं अतुलित
जीवन वैभव हे!
नव हे!

(तारापथ-उन्तीस)

इस प्रकार 'युगान्त' में मधुरता, कोमलता, कठोरता आदि कान्ति नाद से पूरित हैं।

युगवाणी—इसका प्रथम प्रकाशन १९३९ में हुआ। युगान्त में जिस विचार-धारा ने जन्म लिया था, वही इसमें विकसित हुई है। कवि कार्लमार्क्स के साम्यवाद से प्रभावित अवश्य था किन्तु उसके विचारों में स्थिरीकरण नहीं हुआ था। किन्तु सम-सामयिक परिस्थिति के कारण कवि की भावनाएँ प्रगतिवाद में बदल गईं। उस समय के आलोचकों ने उसी सन्दर्भ में देखा और कवि को प्रगतिवादी कवि घोषित किया। वास्तव में 'युगवाणी' में समसामयिक आन्दोलन का स्पष्ट प्रभाव है। यह भी स्वीकार करना होगा कि 'युगान्त' में छायावाद का अवसान हो गया था, अतः कवि ने 'युगवाणी' में तात्कालिक समस्याओं को रखना श्रेयस्कर समझा। कवि ने इस सम्बन्ध में उल्लेख किया है कि 'मैंने 'युगवाणी में मध्ययुग की संकीर्ण नैतिकता का घोर खंडन किया है और जनता के मन में जो अंध-विश्वास और मृत आदेशों के प्रति मोह घर किए हुए हैं, उसे छुड़ाने का प्रयत्न कर उन्हें नवीन जागरण का सन्देश दिया है।' इससे स्पष्ट है कि कवि ने तात्कालिक रूढियों, अंध-विश्वासों, परम्पराओं एवं शोषण करने वालों के प्रति विद्रोह की भावना प्रवाहित की। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं निकालना चाहिए कि कवि पूर्ण साम्यवादी हो गया था। क्योंकि कवि के विचारों में एक ओर मार्क्सवाद की झलक मिलती है तो दूसरी ओर गाँधीवाद की। किन्तु दोनों विचारों में उसका पूर्ण स्थायित्व नहीं है। कभी मार्क्सवाद का स्वागत करता है तो कभी गाँधीवाद का। यथा—

साम्यवाद के साथ स्वर्णयुग करता मधुर पदार्पण,
मुक्त निखिल मानवता करती मानव का अभिवादन।

यहाँ कवि ने साम्यवाद को स्वर्णयुग के रूप में देखा है किन्तु पुनः गाँधीवाद पर भी विश्वास करता है। जैसे—

गाँधीवाद जगत में आया ले मानवता का नव मान,
सत्य अहिंसा से मनुजोचित नव-संस्कृति करने निर्माण!
गाँधीवाद हमें जीवन पर देता अन्तर्गत विश्वास!
मानव की निःसीम शक्ति का मिलता उससे चिर आभास।
व्यक्तिपूर्ण बन जग जीवन में भर सकता है नूतन प्राण,
विकसित मनुष्यत्व कर सकता पशुता से जन-कल्याण?
मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गाँधीवाद,
सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद।

इसी आधार पर कोरा साम्यवादी कवि मैं पंत को नहीं मानता। नव-मानव संस्कृति का भी उपासक है। यथा—

मुक्त जहाँ मन की गति, जीवन में रति,
भव मानवता में जन-जीवन परिणति,
संस्कृत वाणी, भाव, कर्म, संस्कृत मन,
सुन्दर हों जनवास, वसन, सुन्दर तन।
ऐसा स्वर्ग धरा में हो समुपस्थित
नव मानव संस्कृति किरणों से ज्योतित।

इससे स्पष्ट है कि ज्यों-ज्यों समसामयिक परिवर्तित होती हुई परिस्थिति आती है त्यों-त्यों कवि की भावनाएँ भी बदलती जाती हैं। कभी तो वह भौतिकवाद पर प्रहार करता है। जैसे—

आत्मवाद पर हँसते हो भौतिकता का रट नाम।
मानवता की मूर्ति गढ़ोगे तुम सँवार कर चाम।

किंतु समाज में जिसे हेय दृष्टि से सदियों से देखा जा रहा है उसके प्रति सहानुभूति व्यक्त करता है—

सुन्दर लगती नग्न देह, मोहती नयन मन,
मानव के नाते उर में भरता अपनापन।
मानव के बालक हैं ये पासी के बच्चे,
रोम रोम मानव साँचे में ढाले सच्चे।

मार्क्सवाद में वर्गहीन, रूढ़िहीन, जातिहीन, शोषकविहीन समाज की कल्पना की गई है। कवि छन्द बन्धन, अचल रूढ़ि के विरोध में अपनी भावनाएँ व्यक्त करता है—

छंद बंध ध्रुव तोड़, फोड़कर पर्वत कारा—
अचल रूढ़ियों की, कवि, तेरी कविता धारा
मुक्त, अबाध, अमंद, रजत निर्झर सी निःसृत,
गलित, ललित आलोक राशि, चिर अकलुष,अविजित !

इससे स्पष्ट है कि कवि को उस समय जो यथार्थ लगा उसी का चित्रण कवि ने अपनी कविता के माध्यम से किया। वह किसी विशेष दर्शन में तल्लीन नहीं रहा। फिर भी 'युगवाणी' को तात्कालिक परिस्थिति के सन्दर्भ में प्रगतिवादी-गाँधीवादी रचना कहा जा सकता है किंतु कोरा प्रगतिवादी या गाँधीवादी नहीं।

ग्राम्या—प्रस्तुत कृति भी प्रगतिवादी कही जाती है। इसका प्रकाशन लगभग १६४० के आस-पास हुआ। 'ग्राम्या' नाम से ही स्पष्ट होता हैं कि गाँव का चित्र खींचा गया है। वस्तुतः मुन्शी प्रेमचन्द की तरह तो ग्राम्य-जीवन का पारखी प्रस्तुत कृति का कवि नहीं है। किन्तु इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि कवि ने ग्राम्य-

जीवन एवं जन-जोवन को नजदीक से देखा है। इसीलिए ग्राम्य-जीवन की सुन्दर झांकी कवि के कविताओं में मिलती है। जब कवि ग्राम्य-प्रकृति का चित्रण करता है तब ऐसा आभासित होता है कि कवि का मन उस ग्राम्य-प्रकृति में डूब गया है। इसका कारण है कि कवि में प्रकृति के प्रति विशेष प्रेम था जिसके कारण प्रकृति-प्रेम नहीं छोड़ सका है। सदैव प्रकृति-प्रेम झलकता ही रहता है। जैसे—

फैली खेतों में दूर तलक
मखमल की कोमल हरियाली
लिपटी जिससे रवि की किरणें
चाँदी की सी उजली जाली।
+ + +
रोमांचित-सी लगती वसुधा
आई जौ गेहूँ में बाली
अरहर सनई की सोने की
किंकिणियाँ हैं शोभाशाली।
उड़ती भीनी तैलाकत गंध
फूली सरसों पीली पीली
लो, हरित धरा से झाँक रही
नीलम की कली तीसी नीली।

इसके अतिरिक्त 'वह बुड्ढा' कविता में जब बुड्ढे का चित्रण करने लगता है तब उसी में सच्चे कवि की भाँति डूब जाता है जिससे कविता का भाव-सौन्दर्य द्विगुणित हो उठता है। यथा—

उसका लम्बा डील डौल है
हट्टी कट्टी काठी चौड़ी,
इस खण्डहर में बिजली सी
उन्मत्त जवानी होगी दौड़ी।
बैठी छाती की हड्डी अब,
झुकी रीढ़ कमटा सी टेढ़ी
पिचका पेट गढ़े कन्धों पर
फटी बिवाई से हैं एड़ी।
+ + +
हाथ जोड़ चौड़े पंजों की
गुंथी अँगुलियों को कर सम्मुख,

मौन त्रस्त चितवन से
कातर वाणी से वह कहता निज दुख।
गर्मी के दिन, धरे उपरनी सिर पर,
लुंगी से ढाँपे तन—
नंगी देह भरी बालों से—
वनमानुस सा लगता वह जन।

वास्तव में ग्राम-दर्शन में ग्राम-युवती गाँव के लड़के, वह बुड्ढ़ा ग्राम-वधू, ग्राम श्री, कहारों का नृत्य, मजदूरनी के प्रति आदि काव्य-रचनाएँ हैं।

सामान्यतः 'ग्राम्या' में ग्राम्य-जीवन का यथार्थ चित्रण है। ग्राम्य-नारी के सम्बन्ध में शिवदानसिंह चौहान ने लिखा है—"वह वर्ग नारियों की तरह न 'सुज्ञ' है न संस्कृत, न उसके कपोल, भ्रू, अधर रंगे हुए हैं और न उसके अंग सुरक्षित वासित हैं। न वह उनकी तरह 'रंग प्रणय' की कला में कुशल है क्योंकि सम्मोहन विभ्रम, अंग-भंगिमा उसे आती ही नहीं। वह तो सरल अबोध स्त्री है, जिसकी मांसपेशियों में दृढ़ कोमलता भरी हुई है जिसके अवयव सुगठित हैं उरोज अश्लथ है। उसमें न कृत्रिम रति की आकुलता है न कल्पित मनोज उसके मन को उद्दीप्त करता रहता है। सच तो यह है कि—

वह स्नेह शील सेवा, ममता की मधुर मूर्ति
यद्यपि चिर दैन्य अविद्या के तम से पीड़ित
कर रही मानवी के अभाव की आज पूर्ति
अग्रजा नगरी की यह ग्रामवधू निश्चित

पंत ने क्यों इस ग्राम नारी की इतनी प्रशंसा की है क्योंकि यद्यपि वह सुसंस्कृत नहीं है, पर अमानवी भी नहीं है, उसमें एक मानवी के गुण अभी मौजूद हैं जिनको प्रकाश में लाकर एक श्रेष्ठ भावी मानवी की जीवित प्रतिमा डाली जा सकती है।

इसके साथ-साथ कवि ने धोबी, चमार, कहार आदि जातियों के नृत्य का भी वर्णन किया है। यथा कहारों का रुद्र नृत्य कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है—

एक हाथ में ताम्र डमरू धर कर एक शिवा की कटि पर
नृत्य तरंगित रुद्र पूर से तुम जन मन के सुख कर।

ग्राम्या की कविताएँ सफल हैं। ग्राम्या की 'वाणी' कविता में कवि वाणी का सत्य वर्णन करता है, जहाँ कृत्रिमता का स्पर्श मात्र भी नहीं हुआ है। यथा—

तुम जड़ चेतन की सीमाओं के आर पार
झंकृत भविष्य का सत्य कर सको स्वराकार

वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलङ्कार !
युग कर्म शव्द, युग रूप शब्द, युग सत्य शब्द,
शब्दित कर भावी के सहस्र शत मूक अब्द
ज्योतित कर जन मन के जीवन का अन्धकार
तुम खोल सको मानव उर के निःशब्द द्वार
वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलङ्कार।

इस प्रकार पन्तकाव्य में हम ग्राम-जीवन का सुविकसित रूप पाते हैं जिसमें ग्रामवासियों के दुःख और वेदनामय जीवन के प्रति आन्तरिक सहानुभूति समाहित है।

स्वर्णकिरण और स्वर्ण धूलि—'ग्राम्या' के प्रकाशन के बाद कवि अरविन्द आश्रम में चला गया था। वहाँ कार्ल मार्क्स, रवीन्द्र, विवेकानन्द, गाँधी उपनिषद, अद्वैत वाद और पाश्चात्य दर्शन का मनन किया। किन्तु किसी दर्शन से उसे शान्ति नहीं मिली अरविन्दकृत 'दि लॉइफ डिवाइन' का उस पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। इस दर्शन से मानो उसकी आत्मिक विचारधारा की संगति बैठ गई और इसीलिए उनकी रचनाओं में अरविन्द की वाणी मुखर हो उठी। यद्यपि दोनों कृतियों का प्रकाशन १९४७ में हुआ। आजादी का प्रारम्भिक समय था। शान्ति मिलनी स्वाभाविक ही थी। कवि का उद्देश्य मानवता की प्रतिष्ठा करना था। दोनों कविता संग्रहों में सामाजिक प्रकृति सम्बन्धी और आत्मपरक कविताएँ हैं। किन्तु अध्यात्मवाद की प्रधानता है जिसमें भारतीय संस्कृति का वास्तविक रूप प्रकट हुआ है।

कवि बच्चन ने लिखा है उन्होंने आश्रम में रहकर जो कुछ लिखा है वह १९४७ में स्वर्ण किरण और स्वर्ण धूलि में प्रकाशित हुआ। एक बार उनकी शैली में फिर महान् परिवर्तन देखा गया। शैली का सम्बन्ध तो जीवन से होता है। जब शैली बदलती है तब उसके पहले ही जीवन बदल चुकता है। यह मैं पहले ही व्यक्त कर चुका हूँ कि पन्तजी परिस्थिति के अनुकूल ही बदलते गये हैं। किसी एक दर्शन पर टिके नहीं रह सके। पन्त की कविताओं में वैज्ञानिकता है केवल भावना ही नहीं है, जो बुद्धिवादी युग की देन है। इसीलिए कवि ने व्यक्ति, समाज, मानवता एवं सृष्टि के वर्णनों को नहीं छोड़ सका है।

'हिमाद्रि' कविता में प्रकृति के साथ जीवन का वर्णन भी सम्मिलित है—

मानदंड भू के अखण्ड हे
पुष्प धरा के स्वर्गारोहण
प्रिय हिमाद्रि तुमको हिमकण से
घेरे मेरे जीवन के क्षण !
मुझ अंचलवासी को तुमने

शैशव में आशी दी पावन
नभ में नयनों को खो, तब से
स्वप्नों का अभिलाषी जीवन।

+ + +

घनीभूत अध्यात्म तत्व से
जिससे ज्योति सरित शत निःसृत
प्राणों की हरियाली से स्मित
पृथ्वी तुमसे महिमा मण्डित।
स्फटिक सौध-से श्री शोभा के
रश्मि रेख शृंगों से कलि त
स्वर्ग खण्ड तुम इस वसुधा पर
पुण्य तीर्थ हे देव प्रतिष्ठित।

दूसरे उदाहरण में कवि ने अध्यात्म तत्व की चर्चा के साथ पर्वत को स्वर्गरूप में देखता हुआ देव रूप में प्रतिष्ठित करता है। वर्णन में गहनता का क्रम है।

यों तो १९४० के पश्चात् ही आध्यात्मिक मानववाद का प्रचारक बन गया था किंतु उसका विकास १९४७ के बाद से ही हुआ। 'स्वर्णकिरण' की 'सर्वोदय' शीर्षक रचना में कवि ने स्पष्ट किया है-'विश्व के अखिल मानवता के भेदों को मिलाकर एक विश्व संस्कृति के निर्माण के लिए उत्सुक है, पूर्व एवं पश्चिम के भेद विज्ञान और ज्ञान के बुद्धि भेद और धरती और मानवता के सांस्कृतिक भेद को अन्तश्चेतना के समन्वय सूत्र से जोड़कर विश्व संस्कृति का वह चरम उन्नयन चाहता है।' उदाहरण द्रष्टव्य है—

एक निखिल धरणी का जीवन
एक मनुजता का संघर्षण
विपुल ज्ञान संग्रह भव पथ का
विश्व क्षेम का करे उन्नयन।' आदि।

अभिव्यंजना की दृष्टि से दोनों कृतियाँ सफल हैं। डॉ० नगेन्द्र ने दोनों कृतियों के शिल्प-विधान के सम्बन्ध में लिखा है—'शिल्प बहुत कुछ साधना की वस्तु है। उसके लिए परिष्कृत रुचि के अतिरिक्त कल्पना की समृद्धि और प्रयत्न साधन अपेक्षित होता है। पंत में यह तीनों गुण प्रभूत मात्रा में है, अतएव उनकी कला सदा विकास शील रही है और 'स्वर्णकिरण' में वह अपनी चरम प्रौढ़ि पर पहुँच गई है। यह प्रौढ़ि तीन दिशाओं में लक्षित होती है—काव्य-सामग्री की समृद्धि-परिष्कार और विस्तार, प्रयोग-कौशल की सूक्ष्मता और अभिव्यक्ति की परिपक्वता। स्वर्णकिरण में पंत ने

अत्यन्त समृद्ध काव्य-सामग्री का प्रयोग किया है। अनेक कविताओं का कलेवर रूप रंग के ऐश्वर्य से जगमगा रहा है।……स्वर्ण धूलि की कुछ कविताओं में नित्यप्रति के भौतिक जीवन के साधारण उपकरणों का भी उपयोग हुआ है,……वास्तव में चयन और नियोजन की इतनी सूक्ष्मता, रूप और रंग का इतना बारीक मिश्रण अन्यत्र नहीं मिलता।' उदाहरण द्रष्टव्य है—

इसमें वह न निशा की आभा,
दुग्ध फेन-सा यह नव कोमल,
मानवीय लगता नयनों को,
स्नेह पवन सकरुण मुख मण्डल।

\+ + +

उदित हो रहा भू के नभ पर
स्वर्ण चेतना का नव दिनकर
आज सुहाते भू जीवन के
पावन श्रमकण मानव मुख पर।

\+ + +

दादुर टर टर करते, झिल्लो बजतीं झन झन,
म्याँउँ म्याऊँ रे मोर, पीउ पिउ चातक के गण !
उड़ते सोन बलाक आर्द्र सुख से कर क्रन्दन,
उमड़ घुमड़ घिर मेघ गगन में भरते गर्जन !

\+ + +

वर्षा के प्रिय स्वर उर में बुनते सम्मोहन,
प्रणयातुर शत कीट विहग करते सुख गायन !
मेघों का कोमल तन श्यामल तरुओं से छन,
मन में भू की अलस लालसा भरता गोपन !

उत्तरा:—इसका प्रकाशन १९४९ में हुआ था। 'स्वर्णकिरण' की विचार धारा 'उत्तरा' में ही विकसित हुई। या यों कहें, जो विचारधारा 'स्वर्णकिरण' में पनपी वह 'स्वर्णधूलि' से पार होती हुई 'उत्तरा' तक पहुँच कर, अपनी प्रौढ़ अवस्था में आ गई। बाबू गुलाबराय ने इस सम्बन्ध में लिखा है—'इस नवयुग में भौतिकवाद की स्थूल मान्यता बदल रही है। विज्ञान के लिए जड़भूत पदार्थ जड़ नहीं रहे हैं। वे शक्ति प्रेरित स्पन्दनों के केन्द्र बन गए हैं। भौतिकता से जगत् मानसिकता की ओर जा रहा है। बहिर्जगत भी संकुचित नहीं रहा है और उसके विस्तार में ही

अभीष्ट अन्तंजीवन का विकास हो रहा है । इसी की अभिव्यक्ति के लिए इस पुस्तक का निर्माण हुआ है । कवि युग के कोलाहल और क्रन्दन से, जो समतल भूमि भेद बुद्धि से प्रभावित है, अनभिज्ञ नहीं है ।' वास्तव में आन्तरिक करुणा, युग का वास्तविक दुःख, युग की समाप्ति, और नवीन युग का झंकार सब समाहित है । संसार घृणा-द्वेष से पूर्ण है । कवि मानव को सचेत करता है—

नृत्य कर रही क्रांति रक्त लहरों पर,
घृणा द्वेष की उठी आँधियाँ दुस्तर ।
कौन रोक सकता उद्वेग प्रलयंकर,
मर्त्यों की परवशता, मिटते कट मर ।

कवि आशावान् है जिसमें मानवता अन्तिम विजय है । कवि कहीं-कहीं शोषक विहीन समाज की भी कल्पना करता है । धनी और गरीब के भेद को मिटा देना चाहता है । नूतन युग का आगमन नये निर्माण के साथ चाहता है । इसीलिए कवि ने अपनी कविता में व्यक्त किया है—

विद्युत अणु उसके सम्मुख अवनत फन,
वसुधा पर अब नव सृजन के साधन,
आज चेतना का गत वृत्त समापन,
नूतन का अभिवादन करता कवि मन ।

उक्त पंक्तियों में कवि ने यह प्रकट किया है कि मानवता के सम्मुख सारी अणु शक्तियाँ नत मस्तक हो जाती हैं । कुछ आलोचकों ने यह कहा है कि कवि जब भारतीय दर्शन से प्रभावित हो गया और उसे विवेकानन्द, गाँधी, अरविन्द एवं उपनिषद का दर्शन मिला तब वह मार्क्सवाद का कटु आलोचक हो गया । किन्तु ऐसा मैं नहीं मानता हूँ । क्योंकि कवि कभी मार्क्सवादी नहीं रहा है । समसामयिक परिस्थिति के सन्दर्भ में उसने कुछ कविताएँ अवश्य लिखी हैं किन्तु उसमें वैज्ञानिक समाजवादी विचारधारा वैज्ञानिक ढंग से वर्णित नहीं है । इसका एक कारण यह है कि कवि मार्क्सवाद के अध्ययन एवं मनन में रमा नहीं । उसने डुबकी लगाकर कभी मोती निकालने की कोशिश नहीं की वातावरण के कोलाहल को ही अपना आधार बनाया इसीलिए मार्क्सवाद पर टिका नहीं रह सका । केवल इतना ही नहीं, बल्कि किसी दर्शन पर उसका स्थायित्व नहीं है । इसीलिए मैं मार्क्सवाद का कटु आलोचक महाकवि पंत को नहीं मानता । एक स्थान पर कवि ने लिखा है—'मैं' जनवाद को राजनीतिक संस्था या प्रजातंत्र के बाह्य रूप में ही न देखकर, भीतरी, प्रजात्मक मानव चेतना के रूप में भी देखता हूँ और जनतंत्रवाद की आन्तरिक परिणति को ही अन्तर्चेतनावाद अथवा नव-मानववाद कहता हूँ ·····दूसरे शब्दों में जिस विकासगामी

चेतना को हम संघर्ष के समतल धरातल पर प्रजातंत्रवाद के नाम से पुकारते हैं उसी को उर्ध्व, सांस्कृतिक धरातल पर मैं अर्न्तचेतना एवं अन्तर्जीवन कहता हूँ।.........मैं वर्गहीन सामाजिक विधान के साथ ही मानव अहंता के विधान की भी नवीन चेतना के रूप में परिणत संभव समझता हूँ' कदाचित् प्रगतिवादी आलोचकों को उत्तर देते हुए कवि ने अपने विचार प्रकट किए हैं। इसमें कवि ने अपनी आध्यात्मिक चेतना का ही परिचय दिया है। जिसमें दोनों के बीच एक नई दिशा देना चाहता है। इसीलिए नव-मानववाद की संज्ञा दी है। यथा—

मैं नव मानवता का सन्देश सुनाता,
स्वाधीन लोक की गौरव गाथा गाता,
मैं मनः क्षितिज के पार मौन शाश्वत की,
प्रज्वलित भूमि का ज्योतिवाह बन आता!
+ + +
म मानव प्रेमी, नव भू स्वर्ग बसाकर,
जन धरणी पर देवों का विभव लुटाता।

प्रस्तुत काव्य-संग्रह का कलापक्ष अवश्य ही अति प्रशंसनीय है। भाषा में कोमलता के दर्शन अवश्य होते हैं किन्तु कहीं-कहीं वे भाव उन शब्दों में नहीं आ पाये हैं जो होना चाहिए। कवि छायावादी विचारधाराओं से आगे बढ़ता अवश्य गया, किन्तु छोड़ नहीं सका। यथा—

जलते तारों-सी टूट रही,
अब अमर प्रेरणाएँ भास्वर,
स्वप्नों की गुंजित कलिकाएँ,
खिल पड़ती मानस में निःस्वर! आदि।

अतिमा :—इसका प्रकाशन १९५५ में हुआ। इसमें कवि के व्यक्तित्व का विविध रूप प्रतिबिंबित है। विशेष रूप से आध्यात्मिक चिंतन विद्यमान है। किन्तु उसमें बौद्धिकता का पुट मिला हुआ है। वर्णन प्रवृत्ति का आधिक्य भी है। कुछ कविताएँ पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हैं। कुछ कविताएँ प्रतीकात्मक भी हैं। उक्त बातों को समीक्षा करने के पहले विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के 'अतिमा' के विभाजन क्रम को रख देना आवश्यक समझता हूँ। वास्तव में 'अतिमा' की रचनाओं का विभाजन पूर्ण वैज्ञानिक तो नहीं किन्तु अन्य आलोचकों के विभाजन की अपेक्षा वैज्ञानिक सा लगता है। उनका विभाजन अधोलिखित है—(१) चिन्तन प्रधान रचनाएँ—

(अ) निजी दृष्टिकोण की उपयोगिता—नव अरुणोदय, गीतों का दर्पण, आत्मबोध।

(ब) सैद्धान्तिक शान्ति, क्रांति।

(स) उपदेश प्रधान आत्मदया।

(२) अ—मानसिक स्थितियों का वर्णन-नवजागरण, जिज्ञासा, बाहर भीतर, ऊषाएँ, प्राणों की द्वाभा, अन्तर्मानस, प्राणों की सरसी, दिव्य करुणा, ध्यान भूमि।

(ब)—प्रतीकात्मक कौए, बतखें, मेंढक, प्रकाश, पतिंगे, छिपकलियां, केंचुल, स्वर्ण-मृग, दीपक जलना।

(३)—वर्णनात्मक—जन्म दिवस, अतिमा, जीवन-प्रवाह, युग मन के प्रति, नेहरू युग, संदेश, लोकगीत।

(४) प्रार्थनापरक—रश्मि चरण, घर आओ आवाहन, स्वप्नों के पथ से आओ, प्रार्थना, अभिवादन।

(५) स्वतन्त्र—सनसिज, आः धरती कितना देती है, सोनजुही।

(६) प्रकृति-वर्णन—चन्द्र के प्रति, गिरि-प्रान्तर, पतझर, स्फटिक वन, कूर्माञ्चल के प्रति।

उल्लिखित विभाजन से स्पष्ट है कि 'अतिमा' में विविधता है। प्रथम में सैद्धान्तिक चिन्तन की प्रबलता, द्वतीय में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण एवं प्रतीक विधान का बाहुल्य, तृतीय में वर्णनात्मक प्रवृत्ति, चौथे में भावनामयी प्रार्थना,पाँचवे में कुछ स्वतन्त्र रचनाएँ तथा छठे में प्रकृति-वर्णन की प्रधानता है। समग्र रूप से जब हम देखते हैं तब यही स्पष्ट होता है कि कवि वर्णनात्मक, प्रतीकात्मक, स्वतन्त्र एवं प्रकृति-वर्णन सम्बन्धी कविताओं में विशेष रूप से रमा है, जहाँ उसके भाव खिल उठे हैं। वास्तव में यह पन्त की विशेषता है जो परिस्थितियों के अनुरूप से ही परिवर्तित होता गया है। उसके विचारों में क्रमानुसार प्रौढ़ता भी आती गई है यही कारण है कि पन्त का काव्य कवि के व्यक्तित्व के साथ खिल उठा है। उसकी सौन्दर्यता प्रत्येक शब्दों से ही टपकती है। यथा—

> 'मन को विराट की आत्मा से कर सर्वमुक्त
> तुम प्यार करो, सुन्दरता में रहना सीखो।
> जो अपने ही में पूर्ण स्वयं है लक्ष्य स्वयं
> कवि यही महत्तर ध्येय मनुज के जीवन का।

मानव जीवन का लक्ष्य है मन को विशाल आत्मा से युक्त करके जीव प्राणी से प्रेम करता हुआ सुन्दरता में निवास करे। कवि प्रकृति की याद दिलाता हुआ कहता है—

> तुम भूल गए क्या मातृ प्रकृति को ? तुम जिसके
> आँगन में खेले कूदे जिसके आँचल में

सोए जागे, रोए गाए, हँस बड़े हुए।
जो बाल सहचरी रही तुम्हारी स्वप्न प्रिया
जो कला मुकुर बन गई तुम्हारे हाथों में—
तुम स्वप्न धनी हो जिसके बने अमर शिल्पी।
जिसने कोयल बन सिखलाया तुमको गाना
मृदु गुञ्जन भर बतलाया मधु संचय करना—
फूलों की कोमल बाहों के आलिंगन भर।
जिसके रंगों की भावुक तूली से तुमने
शोभा के पदतल रँगे मनुज का मुख आँका
जिससे लेकर मधु स्पर्श शब्द रस गंध दृष्टि
तुमने स्वर निर्झर बरसाए सुख से मुखरित।

(सन्देश)

कवि ने उक्त 'सन्देश' कविता में मानव जीवन को लक्ष्य करके प्रकृति के महात्म्य का गान किया है। कवि छायावाद के प्रवर्तकों में से है। अतः छायावादी दृष्टि का पग-पग पर आना स्वाभाविक है। इसीलिए छायावादी विचारधारा उक्त कविता में प्रवाहित हुई है। इसी प्रकार से 'ओः धरती कितना देती है' कविता में पृथ्वी के माहात्म्य को पतिपादित किया है—

यह धरती कितना देती है! धरती माता
कितना देती है अपने प्यारे पुत्रों को!
नहीं समझ पाया था मैंने उसके महत्व को!
बचपन में, छिः स्वार्थ लोभवश पैसे बोकर!
रत्न प्रसविनी है वसुधा अब समझ सका हूँ!
इसमें सच्ची समता के दाने बोने है!
इसमें जन की क्षमता के दाने बोने हैं!
इसमें मानव ममता के दाने बोने हैं!
जिससे उगल सके फिर धूल सुनहली फसलें
मानवता की—जीवन श्रम से हँसे दिशाएँ!
हम जैसा बोएँगे वैसा ही पाएँगे!
'सोनजुही' कविता का भी उदाहरण द्रष्टव्य है—
एक टाँग पर उचक खड़ी हो
मुग्धा वय से अधिक बड़ी हो .....

आँगन के बाड़े पर चढ़कर
दारु-खंभ को गलबाँही भर
कुहनी टेक कँगूरे पर
वह मुस्काती अलबेली।
सोनजुही की बेल छबीली॥

\+ \+ \+

कहाँ मढ़ा लाए सोने से अपनी चोंचें
सारे कौवे प्यारे कौवे !
कौन संदेशा लाये घर-घर
कौन सगुन-स्वर, कौन अतिथि वर
काले पंखों के झुटपुट से
मन के रीते आँगन को भर
कहाँ मढ़ा लाए सोने से अपनी चोचें
प्यारे कौवे न्यारे कौवे।
कहाँ मढ़ा लाये सोने से अपनी चोंचें।
पौ फट गयी ! सुनहला युग क्षरण-आग्रो सोचें।

(कौवे, बतखें, मेंढक)

उक्त कविताओं के सम्बन्ध में दूधनाथ सिंह का कहना है कि 'कवि की रचना-सक्षमता को खोज निकालना बहुत आसान है। यहाँ लगता है कि भाषा और शब्द-शक्ति पर कवि का एक सहज और अन्तर्मुक्त अधिकार है। वह शब्द की अन्तरात्मा से परिचित है और उसे सहज ही पकड़ लेता है। इन काव्य-संग्रहों को पढ़ने से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि भाषा और सम्पूर्ण भाव-मंत्र कवि का अनुगामी है। उसके तार साधे हुए हैं और अपनी इच्छानुसार अपने आन्तरिक उद्वेलन को व्यक्त करने के लिए वह मनोनुकूल ध्वनि का सर्जन कर सकता है। यहाँ आकर कवि पंत की उपलब्धि की दिशाएँ स्पष्ट होने लगती हैं। यह उपलब्धि लोकमंगल की अन्तर-कामना से अनुप्राणित है।'

वाणी :—इसका प्रकाशन १९५८ में हुआ। इस काव्य-संग्रह में क्षीण यथार्थ-वादी विचारधारा के दर्शन होते हैं। बच्चनजी ने इस सम्बन्ध में लिखा है 'वाणी में विषयों की विविधता है, उपनयन (एप्रोच) की भी। मूल प्रयत्न चेतना के अन्तः संघर्ष को ठीक समझने और उसे निर्दिष्ट करने का है। जो लोग उसे ठीक नहीं समझ रहे हैं या जो उसे गलत दिशाएँ दे रहे हैं, उनको डाँटने, फटकारने और उनका विरोध करने का भी है। विचार-दर्शन में किसी नवीनता की प्रत्याशा नहीं की जानी चाहिए। अभि-व्यक्ति में नए छन्द रूपकों के प्रयोग हैं। प्रमुख कविता 'आत्मिका' है जिसमें अपने व्यक्ति-

गत जीवन के माध्यम से चेतना के संचरण को समझाने का प्रयत्न किया गया है—यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडे ठीक है तो यथा ब्रह्मांडे तथा पिंडे भी ठीक होना चाहिए।' वास्तव में सौन्दर्यवादी विचारधारा के दर्शन बराबर रूप से किसी न किसी सन्दर्भ में अवश्य ही मिल जाते हैं। चाहे कवि छायावाद से रहस्यवाद की ओर बढ़ रहा हो। कवि 'कृतज्ञता' में व्यक्त करता है—

प्रेम, प्रणत हूँ, मेरे हित तुम बने चराचर,
ज्योति, मुग्ध हूँ, तुम उज्ज्वल उर मुकुट अगोचर,
शान्ति, देह मन की तुम सात्विक सेज अनश्वर,
प्रिय आनन्द छन्द तुम मेरे, आत्मा के स्वर।

('वाणी' से)

उक्त पक्तियों में कवि ने कितनी सुन्दरता के साथ रहस्यवाद की चर्चा की है। भाव-विभोर होकर कवि ने 'आनन्द, छन्द और आत्मा के स्वर' के माध्यम से अपने काव्य की अभिव्यंजना भी प्रगट की है। इस विचारधारा में मानववादी दृष्टिकोण भी लक्षित होता है। यथा—

नव-मानवता को निःसंशय, होना रे अब अन्तःकेन्द्रित
जन-भूस्वर्ग नहीं युग सम्भव बाह्य साधनों पर अवलंबित।

'आत्म-निवेदन' कविता का उदाहरण भी द्रष्टव्य है—

ऐसा नहीं कि मैं प्रकाश ही का प्रेमी हूँ,
मुझे चाहिए भाव प्रेम रस, श्रद्धा पूर्ण समर्पण।
श्रेय प्रेय हो, व्यक्ति धर्म हो, लोककर्म हो,
सबसे ऊपर, ओत-प्रोत हो रस से अन्तर,
तन्मय प्राणों में हो प्रीति अकारण।
पर्वत-सा दर्पण मानस का सूना हो या भरा हुआ
दोनो स्थितियों में तुम्हीं उपस्थित रहो
हृदय में अनुक्षण।

('वाणी' से)

कवि एक मात्र ज्योति का ही प्रेमी नहीं है, बल्कि उसे भाव-प्रेम-श्रद्धा, व्यक्ति धर्म, लोककर्म भी चाहिए और उसमें रस अवश्य ही अन्तर्हित हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि की प्रस्तुत कृति में मानव-जीवन, जन-निर्माण, वर्तमान युग की विषमताओं का चित्रण यथास्थान किया गया है। उल्लिखित कृति का पंत की रचनाओं में महत्वपूर्ण स्थान है।

कला और बूढ़ा चाँद :—इसका प्रकाशन १९५९ में हुआ। प्रस्तुत काव्य-संग्रह पर कवि को भारत सरकार की ओर से पुरस्कार भी मिला। वास्तव में 'कला और बूढ़ा चाँद' में पंत की अन्य रचनाओं की अपेक्षा, नूतन अभिव्यंजना उक्त काव्य-संग्रह में प्रकट हुई है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

मैंने
गुलाब की
मौन शोभा को देखा
उसने विनती की
तुम अपनी
अनिमेष सुषमा की
शुभ्र गहराइयों का रहस्य
मेरे मन की आँखों में
खोलो

\+ + + (काला और बूढ़ा चाँद—प्रेम)

परियाँ खिलखिलाकर
हँसी !—
भौंहो के संकेत से कहा;
राजकुमारी से व्याह करो !
परियों की राजकुमारी
नत चितवन
मुसकुरा दी !—
उसके जूड़े में
वैसा ही कमल था !
पुरानी ही दुनिया अच्छी,
पुरानी ही दुनिया !

(कला और बूढ़ा चाँद—दंतकथा)

यहाँ समस्त शैलीगीत रूढ़ि परम्पराएँ टूट गई हैं। इसे गद्य-काव्य कहा जा सकता है। किन्तु प्राचीन गद्य-काव्य से भिन्न है। महाकवि निराला ने भी इस नूतन-पद्धति को अपनाया था। इसमें असाधारणता, सूक्ष्मता एवं विचिलता के दर्शन होते हैं, भाव की गहराइयाँ भी प्रकट हुई हैं। नूतन अभिव्यंजना की दृष्टि से यह काव्य-संग्रह अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

लोकायतन :—यह हिन्दी महाकाव्यों की परम्परा का महाकाव्य है। कुछ विद्वान इसे लोक-जीवन का महाकाव्य मानते हैं। प्रस्तुत काव्यकृति का परिचय प्रकाशक के शब्दों में इस प्रकार है—'इस वृहद् काव्य में कवि की जीवन भर की संचित भाव-राशि चैतन्यनिष्ठ चिन्ता और मानवी-मानस सम्पदा का चरण-चरण पर विवरण देखने को मिलेगा। 'लोकायतन' वर्तमान की वह गाथा है जो न अतीत की ओर मुड़ती है और न उसकी ओर से मुह मोड़ती है। यह काव्य, जो न अतीतोन्मुख है और न अतीत का अस्वीकार वर्तमान के भविष्य को उपहार के समान है। भारतीय लोकभूमि पर विश्व मानव के अन्तर्बाह्य विकास की परिकल्पना इसमें चित्रित हुई है।... भारतीय चेतना के मण्डल कलश इस काव्य से पाठकों की एक अवधि की काव्यपिपासा शान्त होगी।'

कवि ने लिखा है—'लोकायतन' का श्री गणेश मैंने ८ अक्टूबर सन् ५९ को किया था। संभोगवश, यह ८ अक्टूबर सन् ६३ को ही समाप्त भी हो गया। 'प्रसिद्ध आलोचक दूधनाथ सिंह ने सम्पूर्ण महाकाव्य को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया है—"(१) बाह्य परिवेश और (२) अन्तश्चैतन्य। 'बाह्य परिवेश में' कुल चार खण्ड हैं—(१) पूर्व स्मृति : आस्था, (२) जीवन द्वार (युग-भू, ग्राम-शिविर, मुक्ति यज्ञ), (३) संस्कृति द्वार (आत्मदान, संक्रमण ह्रास, विघटन, विकास) (४) मधु-स्पर्श और मध्य विन्दु ज्ञान। 'अन्तश्चैतन्य' में तीन खण्ड हैं—(१) कला-द्वार, (२) ज्योति-द्वार और (३) उत्तर स्वप्न : प्रीति।' इस तरह हम देखते हैं कि सम्पूर्ण काव्य-बन्ध-पूर्ण रूप से मौलिक और नवीन है। 'पूर्व-स्मृति' से (जिसकी मूल चेतना 'आस्था है') आरम्भ होकर महा-काव्य का समापन 'उत्तर-स्वप्न' (जिसकी मूल चेतना 'प्रीति' है) में होता है। अतीत की आस्था से चलकर भविष्य की प्रीति तक महाकाव्य देश-काल और पाप की सीमाओं में चित्रित होता हुआ भी एक सर्वव्यापी मंगल भूमि पर प्रतिष्ठित होता है। इस सम्पूर्णता तक पहुँचने के लिए काव्य में विभिन्न द्वारों की परिकल्पना की गई है। 'आस्था' 'जीवन द्वार' और 'संस्कृति द्वार' से होकर 'ज्ञान' तक पहुँचती है तब उसमें वह सम्पूर्ण सृजन की क्षमता और दृष्टि आती है जिससे वह 'कला द्वार' और 'ज्योति द्वार' से होकर भविष्य की शुभेच्छा में परिणत होती है। इस तरह सम्पूर्ण कथा का एक अन्तः रचित प्रतीकार्थ भी है।' वास्तव में आलोचक के विभाजन से सम्पूर्ण महाकाव्य का विश्लेषण तो नहीं हो जाता किन्तु विश्लेषण करने का मार्ग अवश्य सुगम हो जाता है। इस विशाल महाकाव्य में 'वंशी' 'सिरी' 'हरि' 'माधो गुरु' 'सुन्दर पुर' का सम्पूर्ण चरित्र एवं गांधी की अर्थ-संज्ञा समाहित है। यदि इस कृति को कवि के सम्पूर्ण मान-सिक विकास, गहन चिन्तन एवं लोक-जीवन के इतिहास का संकलन कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

प्रसिद्ध आलोचक दूधनाथ सिंह ने लिखा है—'भाषा, भाव सम्पदा, चरित्र-चित्रण, युग-जीवन का आकलन और लोकमंगल की सृष्टि, इन सभी दृष्टियों से यह महाकाव्य निश्चय ही हमारे सम्पूर्ण वर्तमान की महान् गाथा है। इसकी सारी भाषा-सर्जना बाइबिल की भाषा की याद दिलाती है।' 'लोकायतन' के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

क्यों जीवन-विमुख मनुज ने
संन्यास लिया आँगन से,
छल स्वर्ग नरक के भय ने
वनवास दिया जीवन से ?
अति वैयक्तिक मूल्यों में
कब सिमट गया विधि प्रेरित
सामूहिक जन जीवन का
विस्तृत यथार्थ श्रम-संचित !

(लोकायतन पृ० १५१)

आज की कला, किसे सन्देह ?
ह्रास युग को निर्जीव प्रतीक
न स्वर में संगति, सौष्ठव, सार
मात्र अपरूप, अमूर्त, अलोक !
गलस्तन, गगन कुसुम शश शृंग
न जन भू जीवन हित उपयोग,
भाव रस को न रूप से पुष्टि
रेख रँग रुचि का रिक्त प्रयोग !

(लोकायतन, पृ० २७८-७९)

पन्तजी की सम्पूर्ण काव्य-कला को श्रीमती शची रानी गुर्टू ने मुख्यतः इस प्रकार से विभाजित किया है—१—'प्रारम्भ में अर्थात् वीणा से गुञ्जन तक उनकी कविता का मूल भाव प्रकृति प्रेम एवं ऐन्द्रिय उल्लास है, जिसमें वस्तु सत्य के साथ आत्मसत्य के समन्वय का प्रयास है। २—गुञ्जन के बाद 'युगान्त' से युगवाणी और 'ग्राम्या' तक कवि की अनुभूति और जिज्ञासावृत्ति अधिक सजग और सचेत हो उठी है। उसके भावोन्माद का अब प्रौढ़ विकास हुआ है और उसकी चिन्तासरणि भावजगत में बैठने की अपेक्षा वस्तुजगत में अधिक खुलकर विचरण करती है। ३—स्वर्ण किरण और स्वर्ण धूलि में कवि का

सूक्ष्मचेत्ता मन मार्क्सवादी भौतिक संघर्षों से ऊबकर अध्यात्मवाद की ओर मुड़ा है। ४—और युगपथ उत्तरा आदि उसकी इधर की कृतियों में आत्मोन्मुख मनोभूमि अर्थात् उसके अवचेतन मन के साथ ऊर्ध्वमुखी वृत्तियों का समाहार है, जहाँ उसकी अन्त-र्भेदिनी दृष्टि स्थूल तथ्यों पर उतराती हुई सूक्ष्म-सत्यों में रम गई है।'

उपर्युक्त विभाजन का जब हम गहन अध्ययन करते हैं तब कवि की विचार-धारा को तीन भागों में बाँटते हैं। यथा—

१—**सौन्दर्यवादी युग**—सन् १६१८ से १६३६ तक की रचनाएँ इसमें रखी जाती हैं। इस सम्पूर्ण युग में सुन्दर तत्व की प्रधानता है जिसमें छायावादी एवं रहस्य वादी भावनाएँ हैं। वीणा, ग्रन्थि, पल्लव, गुञ्जन आदि रचनाएँ इसके अन्तर्गत हैं।

२. **प्रगतिवादी युग**—इसमें शिव तत्व की प्रधानता है। १६३६ से ४० तक की रचनाएँ—'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' आदि इसके अर्न्तगत हैं।

३. **अध्यात्मवादी**—इसमें सत्य तत्व की प्रधानता है। इसका समय भी १६४० से अब तक का माना जाता है। इसके अन्तर्गत स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा अतिमा, वाणी, कला और बूढ़ा चाँद आदि रचनाएँ आती हैं।

उक्त विभाजन वैज्ञानिक नहीं है किन्तु कवि की विचारधारा को समझने के लिये रास्ता सुगम बना देता है। कुछ आलोचक अन्तश्चेतनावादी युग एवं नवमानवता वादी युग के रूप में भी विभाजन करते हैं। किन्तु मैं अन्तश्चेतनावादी युग एवं नवमान-वतावादी युग का उल्लेख करना नहीं चाहता। यहाँ हम उन्हीं विभाजनों का मूल्यांकन करेंगे जिसे मैंने जिस रूप में विभाजन किया है।

सौन्दर्यवादी युग—श्री विश्वम्भर 'मानव' के शब्दों में 'जहाँ तक छायावाद का सम्बन्ध है वहाँ अब तक कवियों ने प्रकृति को अपने दृष्टिकोण से देखा था पन्त ने उसे निरपेक्ष दृष्टि से देखा, अब तक उसे जड़ समझा जाता था, पन्त ने उसे चेतन माना, अब तक उसे किसी न किसी प्रकार मानव-जीवन से सम्बन्ध करके रखा गया था, पन्त ने उसके जीवन को अपने में पूर्ण और स्वतन्त्र घोषित किया। प्रकृति के प्रति यह अभिनव दृष्टिकोण बीसवीं शताब्दी की ही विशेषता है और इस सम्बन्ध में दो मत नहीं कि प्रकृति की इस मुक्ति में पन्त का सबसे बड़ा हाथ है। पर जहाँ तक रहस्यवाद का सम्बन्ध है वहाँ पन्तजी का काव्य रहस्य-भावना के विकास की नहीं, ह्रास की कहानी है। प्रारम्भ में उसकी सुकुमार-वृत्ति जिस सौन्दर्य प्रेम के कारण अनन्त सत्ता का चिंतन करने में लीन रही बाद में वही अन्य विषयों की ओर मुड़ी।'

वास्तव में कवि ने जिस समय अपनी काव्य-रचना प्रारम्भ की उस समय देश में राजनीतिक एवं सामाजिक हलचल मची हुई थी। यह हलचल पराधीनता के विरोध में थी। सम्पूर्ण देश के नागरिक स्वतन्त्र होना चाहते थे। अतः इसी विद्रोह की

भावना ने साहित्य के क्षेत्र में नूतन युग का समारम्भ किया। प्रकृति के प्रति सौन्दर्य की भावना जाग्रत हुई। अब प्रकृति को चेतन समझा जाने लगा। समस्त संसृति के सौन्दर्य में परम ब्रह्म की खोज करने लगे। उस खोज में कौतूहलता का भाव था। यथा—

प्रथम रश्मि का आना रङ्गिणि
तूने कैसे पहचाना ?
कहाँ, कहाँ हे बाल विहंगिनि
पाया तूने यह गाना ?

(वीणा, प्रथम रश्मि)

कवि के मानस पर पाश्चात्य आंग्ल भाषा के कवियों–शेली, कीट्स, वर्ड्स्वर्थ, तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि का पूर्ण प्रभाव पड़ा था। इसीलिए कवि साहित्य जगत् में नूतन सृष्टि करना चाहता था। किन्तु उस परिस्थिति में ब्रजभाषा काव्य-भाषा के रूप में विराजमान थी। प्राचीन कवि या पुरातन विचार वाले कवि इसी भाषा में अपनी रचनाएँ करते थे। इसके विपरीत नए कवि उठ खड़े हुए। और इन महन्तों के विरोध में अपने साहस का परिचय देते हुए अपनी काव्य-प्रतिभाओं को व्यक्त किया। उसी समाज में आदर भी इन नूतन पथगामियों का होने लगा। ऐसे नूतन युग का समारम्भ करने वालों में महाकवि पंत का भी व्यक्तित्व था जिसने अपनी काव्य-प्रतिभा से उस युग को मोड़कर कलात्मकता प्रदान की।

व्यक्तिवादी प्रवृत्ति शृङ्गारिकता का ही रूप होती है। पंतकाव्य में शृङ्गारिक भावनाएँ समाहित हैं। किन्तु यह शृङ्गारिक भावना रीतिकालीन साहित्य से भिन्न है। इसमें कुतूहलता, सरलता विद्यमान है तथा साथ ही माँ का सत्य प्रेम भी प्रतिबिम्बित हो उठा है।—यथा

धूल भरे, घुँघराले, काले,
भय्या को प्रिय मेरे बाल,
माता के चिर चुम्बित मेरे
गोरे, गोरे सस्मित गाल;
वह काँटों में उलझी साड़ी
मंजुल फूलों के गहने,
सरल नीलिमामय मेरे दृग
अश्रु हीन, संकोच सने;
उसी सरलता की स्याही से
सदय, इन्हें अंकित कर दो,

मेरे यौवन के प्याले में
फिर वह बालापन भर दो !
हा ! मेरे बचपन-से कितने
बिखर गए जग के शृङ्गार !
जिनकी अविकच दुर्बलता ही
थी जग की शोभालकार !

(पल्लव)

दुःख एवं करुणा की ओर भी कवि की भावधारा प्रवाहित होती रही है कभी-कभी तो कवि संसार की प्रत्येक वस्तु में अपनी कारुणिक आवाज गुञ्जित करता है। कवि हृदय प्रकृति के प्रकोष्ठ भाग में बैठ जाता है और उसी के माध्यम से अपनी सुकुमार भावनाओं का परिचय भी देता है। जैसे—

खेल सस्मित सखियों के साथ
सरल शैशव सी तुम साकार,
लोल कोमल लहरों में लीन
लहर ही-सी कोमल, लघु भार,
सहज करती होगी, सुकुमारि !
मनोभावों से बाल विहार
हंसिनी सी सर में कल-तान
प्रिये, प्राणों की प्राण !

(गुञ्जन)

परिवर्तन कविता में करुणा से ओत-प्रोत भावना भी द्रष्टव्य है—

हाय री दुर्बल भ्रान्ति !—
कहाँ नश्वर जगती में शान्ति
सृष्टि ही का तात्पर्य अशान्ति !
जगत अविरत जीवन संग्राम,
स्वप्न है यहाँ विराम !

प्रगतिवादी युग—यह युग पंत की रचना 'युगान्त' से प्रारम्भ होता है। कवि पंत महाकवि निराला की भाँति जन्मजात विद्रोही कवि नहीं थे। पंत कवि ने समसामयिक परिस्थिति से जो कुछ ग्रहण किया उसी का चित्रण अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया। यह अवश्य है कि पंत की रचनाओं में समाज की विभिन्न अवस्थाओं, आर्थिक कष्टों, दरिद्रता, ग्राम्य-जीवन आदि के चित्र देखे जाते हैं। वास्तव में ये भावनाएँ प्रमुख रूप से युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या में विकसित हुईं। इस भावना की पृष्ठ-

भूमि में भारतीय स्वातंत्र्य-आन्दोलन था। रूस की समाजवादी क्रान्ति का भी प्रभाव भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन पर पड़ा। भारतीय नेताओं, बुद्धिजीवियों के विचारों में भी परिवर्तन आया। इस परिवर्तन के फलस्वरूप भारतीय नेताओं ने समाजवादी पार्टियों की भी स्थापनाएँ कर ली। इसके माध्यम से अपनी लड़ाइयाँ लड़ने लगे। रूसी समाजवादी व्यवस्थाओं में किसी भी मानव का शोषण नहीं होता और न कोई व्यक्ति बेरोजगार ही रहता है क्योंकि शोषकों के विरोध में ही रूसी समाजवादी क्रान्ति हुई थी। भारतवर्ष में भी यही स्थिति थी। यहां साम्राज्यवादी अंग्रेजों का शासन था। वे भारतीयों पर शासन करते थे। इस प्रकार से ये अंग्रेज शोषण के रूप में थे। इसी शोषण को भारतीय नेता समाप्त करना चाहते थे। इसी भावना ने जब अपना फैलाव किया तब साहित्यकारों के मानस पर भी ये लहरें दौड़ीं जिसका परिणाम यह हुआ कि कवि समुदाय तीव्र गति से इस भावना का प्रचार अपनी कविताओं के माध्यम से करने लगा। वह चेतनशील था। परिस्थितियों को मोड़ने में सफल हो गया। शनैः शनैः यह भावना बलवती होती गई। और इसने अपना एक रूप ही धारण कर लिया। कवियों की चिन्तनात्मक शक्ति जन-जीवन की ओर बढ़ती गई। प्रत्येक क्षेत्रों में जहाँ मानव के द्वारा मानव का शोषण होता था। यहीं से इन कवियों ने नव-निर्माण का मन्त्र फूका। पंतजी का विचार है—वैसे सभी युगों का लक्ष्य सदैव प्रगति ही की ओर रहा है पर आधुनिक प्रगति ऐतिहासिक विज्ञान के आधार पर जनसमाज की सामूहिक प्रगति के सिद्धान्तों की पक्षपाती है। यह भी सत्य है कि पंत की प्रगतिवादी विचारधारा का विकसित स्वरूप युगवाणी और ग्राम्या में देखने को मिलता है।

युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या में पन्तजी युग निर्देशक के रूप में दिखाई पड़ते हैं। मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को इन रचनाओं में मिलता है। इतना सत्य अवश्य है कि कवि की विचारधारा पूर्णरूप से युगान्त में स्पष्ट नहीं हो पाई है, निष्प्राण प्राचीनता के प्रति आक्रोश व्यक्त हो गया है और कवि शृङ्गार को उद्दीप्त करने वाली कोकिला से पावक कण बरसाने के लिए प्रार्थना करता है —

गा, कोकिल, बरसा पावक कण !
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन।

× × ×

इतना ही नहीं; बल्कि पुरातन का समूल विनाश देखना चाहता है—

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र,
हे स्त्रस्त ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण।

हिम-ताप-पीत, मधुवात-भीत,
तुम वीतराग, जड़, 'पुराचीन !!
(तारापथ—सत्रह)

ऐसा प्रतीत होता है कि कवि का चिन्तन और दर्शन हृदय के आवेश से युक्त होकर चित्रित हुआ है।

आलोचकों की यह धारणा है कि युगान्त में छायावाद का सौंदर्य-भाव गांधीवाद की आध्यात्मिक-चेतना से युक्त होकर अभिव्यक्त हुआ था, वहाँ युगवाणी में मार्क्स-वाद पर आधारित सामूहिक जीवन की प्रेरणा जगाई गई है। यद्यपि कवि ने गांधीवाद को भुलाया नहीं है, बल्कि युग की समस्याओं को वाणी देने का सफल प्रयास किया है। यह तो सत्य माना जा सकता है कि मार्क्स के प्रभाव के कारण ही समसामयिक परिस्थिति के सन्दर्भ में पूँजीपतियों की निन्दा की और मजदूरों की प्रशंसा। किन्तु मजदूर की सत्ता तक उनका चिन्तन नहीं पहुँच सका। इसका स्पष्ट प्रमाण है कि कवि साम्यवाद को समझने में असमर्थ रहा। कभी गांधीवादी हो जाता था तो कभी मार्क्स-वादी यदि यह माना जाय कि पंत साम्यवादी थे तो यह भी स्वीकार करना होगा कि साम्यवादी विचारधारा को व्यावहारिक रूप देने में कवि अवश्य असफल रहा। मेरा तो यहाँ तक विचार है कि पंतजी स्वयं भी अपने को साम्यवाद के व्यावहारिक रूप तक नहीं पहुँचा सके हैं, क्योंकि साम्यवाद की व्यावहारिकता में यदि प्रवेश कर गये होते तो पंत की विचारधाराओं में यह आमूल परिवर्तन न होता।

समर्थ प्रगतिशील आलोचक रामविलास शर्मा का मत है—दूसरे महायुद्ध के पहले जब कांग्रेसी मंत्रिमंडल बने थे तो उत्तरा के लिखने तक जनता की चेतना और उसके साथ हिन्दी जनता की चेतना में काफी परिवर्तन हो गया। अन्तर्चेतनावादी पंत जी से सामाजिक चेतना के ये परिवर्तन छिपे नहीं हैं लेकिन वे इस नयी सामाजिक चेतना से सहानुभूति नहीं रखते—न बौद्धिक, न हार्दिक। वह अपने पुराने समन्वयवाद को नया जामा पहनाकर हिन्दी पाठको से कहते हैं—'मैं प्रतिगामी नहीं, लेकिन मार्क्स-वाद का कौन सा विरोधी अपने को प्रतिगामी मानता है। उसका व्यवहार उसकी प्रतिगामिता प्रकट कर देता है। पंतजी यदि अपने अन्तर्चेतनावाद से लोगों को बहकाना चाहते हैं तो कुछ दिन और कोशिश करके देखें।'

प्रमुख बात यह कि कवि एक ओर गांधीवाद को भी नहीं भूलता दूसरी ओर मार्क्सवाद को भी हीन दृष्टि से नहीं देखता। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वह समन्वय वादी है। किन्तु मैं गाँधी जी के १९३४ में घटित विचारों को प्रगट करना चाहता हूँ जब उन्होंने यह व्यक्त किया था 'कांग्रेस में समाजवादी तत्वों का प्रभाव और संख्या बढ़ रही है। यदि वे कांग्रेस में छा गये, जो असम्भव नहीं है, तो मैं नहीं रहूँगा।'

इससे स्पष्ट है कि इन दोनों सिद्धान्तों में समन्वय नहीं हो सकता। दोनों अलग २ सिद्धान्त हैं, और दोनों के रास्ते भी भिन्न २ हैं। अतः कवि का दर्शन न मार्क्सवादी है और न गाँधीवादी। और न उसकी इन दोनों के प्रति गहरी आस्था ही है। केवल उसकी कविताओं में वातावरण एवं आन्दोलनों की गूँज मात्र है। 'युगवाणी' में कवि की प्रगतिशील धारणाएँ उभरी हैं। कवि पंत ने स्वयं कहा है—मैंने युगवाणी में मध्ययुग की संकीर्ण नैतिकता का घोर खंडन किया है और जनता के मन में जो अंध-विश्वास और मृत आदर्शों के प्रति मोह घर किये हैं, उसे छुड़ाने का प्रत्यन कर उन्हें नवीन जागरण का सन्देश दिया है, 'ग्राम्या' में कवि पूर्ण यथार्थवाद की ओर बढ़ा है। ग्राम्य-जीवन का जीता-जागता चित्र कवि की दृष्टि से ओझल नहीं हो सका है। ग्राम्य-युवती, कहारों के नृत्य, ग्राम्यश्री, आदि के चित्र खींचे हैं।

'ग्राम्यश्री' कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है—

फैली खेतों में दूर तलक
मखमल की कोमल हरियाली
लिपटी जिससे रवि की किरणों
चाँदी की सी उजली जाली।

ग्राम-जीवन का चित्र 'वह बुड्ढा' कविता में प्रकट हुआ है—

खड़ा द्वार पर लाठी टेके,
वह जीवन का बूढ़ा पंजर,
चिमटी उसकी सिकुड़ी चमड़ी
हिलते हड्डी के ढाँचे पर।

'कहारों का रुद्र नृत्य' कविता में कवि ने नृत्य की कला का बड़ा ही सजीव चित्र खींचा है। यथा—

रंग रंग के चीरों से भर अंग, चीखासा-से,
दैन्य शून्य में अप्रतिहत जीवन की अभिलाषा से,
जटा छटा सिर पर, यौवन की अश्रु छटा आनन पर,
छोटी बड़ी तूँबियाँ, रंग रंग की गुरियाँ सज तन पर,
हुलस नृत्य करते तुम, अटपट धर पटु पद, उच्छृंखल
आकांक्षा से समुच्छ्वसित जन मन का हिला धरातल

× × ×

'मजदूरनी के प्रति' कविता में कवि जब मजदूरनी का वर्णन करता है तब ऐसा लगता है कि कवि स्वयं ग्राम-निवासी है। मजदूरों के बीच में रहने का उसे सुअवसर मिला है। यथा—

नारी की संज्ञा भुला, नरों के संग बैठ,
चिर जन्म सुहृद सी जन हृदयों में सहज पैठ,
जो बँटा रही तुम जग जीवन का काम काज
तुम प्रिय हो मुझे न छूती तुमको काम लाज।

उक्त प्रकार से साम्यवादी भी वर्णन करते हैं किन्तु वे व्यवहार में भी ऐसा ही जीवन व्यतीत करते हैं। अतः उनके वर्णन में सूक्ष्मता है। पंत को प्रगतिवादी कहा जा सकता है लेकिन साम्यवादी नहीं। क्योंकि भावों में स्वाभाविकता साम्यवादियों की तुलना में नहीं है।

अध्यात्मवादी-युग:—वस्तुतः पंत ने प्रगतिवादी विचारधारा को आन्तरिक प्रेरणा के परिणामस्वरूप ग्रहण न करके समसामयिक परिस्थिति के कारण किया था। इसका परिणाम यह हुआ कि पंत जी इस विचारधारा पर बहुत अधिक दिनों तक स्थिर न रह सके। स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि और उत्तरा आदि रचनाओं में कवि की इसी भावना का परिचय प्राप्त होता है। विचारधारा के परिवर्तन का एक अन्य कारण यह भी है कि कवि सन् ४२ के आस-पास अरविन्द आश्रम में चला गया था। वहाँ उसे मार्क्स, रवीन्द्र, विवेकानन्द, गाँधी, उपनिषद्, अद्वैतवाद एवं पाश्चात्य दर्शन के अध्ययन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। कवि किसी दर्शन से प्रभावित नहीं हुआ है कुछ आलोचकों का विचार है कि अरविन्द की (The life Devine) का उस पर काफी प्रभाव पड़ा। जिसके कारण पंत की प्रगतिशील भावनाएँ आध्यात्मिक दर्शन में बदल गयों। किन्तु मेरा विचार है कि कवि का मानस परिस्थितिवश ही परिवर्तित होता गया। किन्तु कवि का कहना यह है—मैं आध्यात्म और भौतिक, दोनों दर्शन के सिद्धान्तों से प्रभावित हुआ हूँ। पर भारतीय दर्शन की सामंतकालीन परिस्थितियों के कारण जो एकान्त परिणति व्यक्ति की प्राकृतिक मुक्ति में हुई है (दृश्य-जगत् एवं ऐहिक जीवन की माया होने के कारण उसके प्रति विराग आदि की भावना जिसके उपसंहार मात्र हैं) और मार्क्स के दर्शन की, पूँजीवादी परिस्थितियों के कारण, वर्ग-युद्ध और रक्त-क्रान्ति में परिणत हुई है—ये दोनों परिणाम मुझे सांस्कृतिक दृष्टि से उपयोगी नहीं जान पड़े।' इससे आशय यही निकलता है कि पंतजी का प्रेम भारतीय दर्शन के प्रति था, जिसके कारण न भौतिक दर्शन में इनकी आस्था स्थिर रह सकी और न पाश्चात्य दर्शन में। यही कारण है कि इनकी प्रगतिशील रचनाओं में भी आध्यात्मवाद की स्पष्ट झलक मिलती है। कवि की विचारधारा में जो भटकाव रहा है, वह है समन्वयवाद। कवि ने भारतीय दर्शन और मार्क्सवादी दर्शन को मिलाने का असफल प्रयास किया। दोनों दर्शन एक दूसरे के विरोधी हैं। साथ ही इसी के साथ गांधी एवं आंग्ल दर्शन को भी जोड़ने का प्रयास किया जिससे इनकी भावनाओं का

तारतम्य जाता रहा। और इसीलिए किसी दर्शन को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त न कर सके।

मध्यकालीन कवियों की यह धारणा थी कि सूक्ष्म का चिन्तन करने से स्थूल शक्ति स्वतः प्राप्त हो जाती है इसीलिए उनकी भावनाएँ शुद्ध आध्यात्मिक हुईं। उसमें यदि यह कहा जाय कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का समन्वय है तो आज का प्रत्येक कवि एक स्वर से स्वीकार करेगा किन्तु पंत के काव्य में कोई आलोचक यह व्यक्त करे कि धर्म, अर्थ काम और मोक्ष का समन्वय है, इसलिए पंतजी भारतीय दर्शन के पुजारी हैं और उनके काव्य में सब समाहित है तो कोई स्वीकार न करेगा। क्योंकि वास्तविकता यह नहीं है। इसलिए पंत के काव्य में न धर्म मिलेगा और न विशेष दर्शन। हाँ, इतना अवश्य है कि पंत काव्य में मनोवैज्ञानिकता मिलती है। यह भी आधुनिक विज्ञान की देन है। मानववाद में थोड़ी इनकी दृष्टि रमी है। जहाँ इन्होंने मानवता के पूर्ण विकास हेतु अपनी गहन भावनाएँ प्रकट की हैं।

'स्वर्ण किरण' की 'हिमाद्रि' नामक कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है—

घनीभूत अध्यातम तत्व से,
जिससे ज्योति सरित शत निःसृत,
प्राणों की हरियाली से स्मित
पृथ्वी तुमसे महिमा मंडित।
स्फटिक सौध-से श्री शोभा के
रश्मि रेख शृंगों से कल्पित,
स्वर्ग खण्ड तुम इस वसुधा पर
पुण्य तीर्थ हे देव प्रतिष्ठित।
× × ×
संभव है, तुम मन के कुंठित,
सम्भव है तुम जग से कुंठित,
तुम्हें लोह से स्वर्ण बना प्रभु
जग के प्रति कर देंगे जीवित,
आओ प्रभु के द्वार!

(स्वर्ण धूलि)

इन उपर्युक्त उदाहरणों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानों कवि ने सांस्कृतिक क्रान्ति का स्वप्न देखा हो क्योंकि वह सत्य एवं अहिंसा को संगठन का उपादान मानता है। अहिंसात्मक का तात्पर्य मनुष्य बनाना है। कवि की बाद की रचनाएँ भी मानववाद की विस्तृत धरातल पर हो हैं। हम यह कहें कि व्यक्तिवाद की सीमा से

निकलकर समष्टिवाद की ओर ले जाती हैं, तो अत्युक्ति न होगी। वास्तव में पंत की विचारधारा में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। और अन्त में यह कहना कठिन है कि उनकी कविता की विचारधारा आगे किस दिशा में जाएगी। 'अतिमा', 'वाणी' 'कला और बूढ़ा चांद', 'लोकायतन', 'किरण' वीणा', 'पौ फटने से पहले' आदि रचनाएँ कला-पूर्ण हैं। कुछ उदाहरण क्रमानुसार द्रष्टव्य हैं—

'मन को विराट की आत्मा से कर सर्व युक्त
तुम प्यार करो, सुन्दरता में रहना सीखो
जो अपने ही में पूर्ण स्वयं है, लक्ष्य स्वयं।
कवि, यही महत्तर ध्येय मनुज के जीवन का।' (अतिमा)

\+ + +

ऐसा नहीं कि छन्द चरण रस गीले ये
सुख दुख सुरभित स्वर
मेरे काव्य कंठ के अंतिम मर्म वचन हैं।
गूँज रहे अन्तर में भावी के स्वर्णिम युग,
मनुष्यत्व का शुभ्र ज्योति मंडित प्रांगण हैं। (वाणी)

\+ + +

तुम्हें नहीं दीखो ?
बिना तीरों की नदी
बिना स्रोत की
सदानीरा। (कला और बूढ़ा चाँद-सदानीरा)

\+ + +

सृजन-सुख-क्षण अनन्त मुख चूम
महत् आनन्द करे अवतीर्ण,
शुभ्र शाश्वत से हो रस वृष्टि
नित्य-यौवन पाए भू जीर्ण! (लोकायतन, पृ० २७९)

\+ + +

हरित प्राण-वंशी में
आत्मा की हीरक-लय
नए बोध मे करे

\+ + +

मनुज-उर को रस-तन्मय! (किरण-वीणा)

प्रमे, अरूप
रूप से पर—
रस सम्मोहन में
मुग्ध हृदय
तुमको पाता
तन्मय अर्पण में!

(पौ फटने से पहले)

अध्याय | ३

पन्तकाव्य में गीतितत्व

मनुष्य के उच्चारण का सर्वप्रथम प्रयत्न गीत रहा होगा। जैसे प्रथम प्रभात को देख सूर्य की किरणें निकल पड़ती हैं, आकाश में बादलों को घुमड़ते देख मयूर नाच उठते हैं, उसी प्रकार मानव-हर्ष के साथ गीत भी फूट पड़ा होगा। आदि काव्य वेदों में तो संगीत युक्त ऋचाएँ भरी पड़ी हैं सामवेद को तो आदि गान ही कहा गया है। वास्तव में मानव-हृदय के हर्ष-विषाद के स्पन्दनों के साथ गीत का सहज सम्बन्ध रहा है। इसी-लिए आर्य जाति ने वेदों में गीतों को सुरक्षित रखा। डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है 'हिन्दी में विश्व के लगभग सभी साहित्यों में गीत परम्परा आदिकाल से चली आती है या यूं कहिए कि गीत कविता का आदि रूप है'। आदिकालीन कवि जयदेवकृत 'गीतगोविन्द' तो गीत-काव्य ही है। अपभ्रंश काल में गीति-काव्य बहुत रचे गए। इसी प्रकार से सन्त कवियों ने भी गीति-काव्य रचने की एक परम्परा चलाई। सूर एवं मीरा आदि में तो गीति-काव्य का विकसित रूप पाया जाता है। किन्तु सामन्तकाल में यह परम्परा क्षीण सी दिखाई देती है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं सत्यनारायण कविरत्न के माध्यम से यह परम्परा पुनः विकसित हुई किन्तु इस परम्परा का तीव्रगति से प्रवाह छायावाद युग में हुआ।

छायावादी कविता के प्रमुख कवि पंत, प्रसाद और निराला हैं। महाप्राण निराला ने 'गीतिका' की भूमिका में गीतों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किए हैं— 'कुछ गीत समय के दायरे से बाहर हैं। उनके लिए गायक का उचित निर्णय आवश्यक होगा। उनके भाव किस-किस रागिनी में अच्छी अभिव्यक्ति पाएँगें, यह मैंने गायक की समझ पर छोड़ दिया है। पर यह निश्चित है कि ब्रजभाषा के पद गाने वालों के लिए साफ उच्चारण के साथ ही इन गीतों का गाना असम्भव है। वे इतने मार्जित नहीं हो सके। गीत को गाकर सुना देना अलग बात है और संगीत कला की दृष्टि से गाना और बात है। हिन्दी में प्रायः गीत छन्दबद्ध हैं संगीतात्मक नहीं।' किन्तु गाने वाले के ढंग पर यह निर्भर करता है कि वह उसे अपने स्वर की गति से प्रवाहित करे। क्योंकि कवि स्वतन्त्र होता है वह किसी सीमा में बँधकर नहीं चलता। यही कारण है कि छायावादी कवियों में पूर्ण स्वच्छन्दता है। गीतों की ध्वनियाँ इन कवियों की वाणी का

अनुगमन करती हैं। इसीलिए संगीत की आरोह-अवरोह की शैली इन कवियों की कविताओं में दीख पड़ती है। डॉ० केशरीनारायण शुक्ल ने लिखा है—'प्रत्येक समय की सर्वोत्तम कविता के समान आज (छायावाद) की कविता भी सच्ची भाव-सृष्टि का परिणाम है। इसमें शब्द और अर्थ का उपमान और प्रतीक के समान मधुर लय से योग रहता है।'

पंत को सुकुमार भावों का कवि कहा जाता है। प्रकृति के प्रति उनका प्रगाढ़ प्रेम है। इसीलिए उन्हें प्रकृति में ही सौन्दर्य दिखलाई पड़ता है। छायावादी कवियों में गीति-तत्व की दृष्टि से पंतजी का विशिष्ट स्थान है। सामान्य रूप से गीति-काव्य की अधोलिखित विशेषताएँ मानी जाती हैं—(१) संगीतात्मकता, (२) रागात्मक अन्विति (३) प्रवाह (४) अन्तः प्रेरणा (५) संक्षिप्तता और (६) कला की पूर्णता। इन्हीं उक्त आधारों पर दृष्टि रखते हुए मैं पंतकाव्य का निरीक्षण करूँगा।

गीति-काव्य का संगीत से युक्त होना आवश्यक है। यह संगीत मुक्तकों में भी मिलता है। कोमल पदावली सुचारु शब्द, वर्ण मैत्री आदि द्वारा संगीत की ध्वनि फूटती है। पंत काव्य में इस प्रकार की संगीत की योजनाएँ सर्वत्र उपलब्ध होती हैं। यथा—

'बाँध दिए क्यों प्राण
प्राणों से।
तुमने चिर अनजान
प्राणों से।'

\+ \+ \+

न जाने कौन आये द्युतिमान।
जान मुझको अबोध अज्ञान
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूँक देते छिद्रों में गान,
अहे सुख दुख के सहचर मौन!
नहीं कह सकती तुम हो कौन!

(मौन निमन्त्रण-तारापथ-पाँच)

गीत एक मूलभाव से अनुप्रेरित होना चाहिए। प्रायः गीति-काव्य लिखने वाले कवियों में यही भाव सन्निहित रहते हैं। सारी पंक्तियाँ एक ही मूलभाव से बँधी हुई होती हैं। विभिन्नता कहीं दिखलाई पड़ती है किन्तु मूलभाव वही रहता है। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि विभिन्न रूप भले ही हो किन्तु अभिव्यक्ति एक ही बार अनुस्यूत होनी चाहिए। पंत के गीतों में प्रायः यह विशेषता मिलती है। यथा—

'काला तो यह बादल है,
अथवा द्वार भिखारी आया हो।'

इससे स्पष्ट है कि गीतों में रागात्मकता होनी चाहिए। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने लिखा है—'प्रगीत काव्य में कवि भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति है, उसमें किसी प्रकार के विजातीय द्रव्य के लिए स्थान नहीं रहता। प्रगीतों में ही कवि का व्यक्तित्व पूरी तरह प्रतिबिंबित होता है। वह कवि की सच्ची आत्मभिव्यंजना होती है। इस प्रकार यह गुण पंत की कविताओं में विद्यमान है।

प्रगीति की शैली प्रवाहयुक्त एवं सरल होनी चाहिए पंतजी सौन्दर्यवादी कवि हैं, इसलिए पहले कलाकार हैं उसके बाद कुछ और। पंत की कविताओं में सर्वत्र प्रवाह तो नहीं मिलता। कहीं-कहीं शब्द भी निरर्थक ही हैं किसी भी प्रकार उसमें सार्थकता नहीं आती! किन्तु कही-कहीं प्रवाह भी झलकता है। जैसे—

खड़ा द्वार पर लाठी टेके
वह जीवन का बूढ़ा पंजर
चिमटी उसकी सिकुड़ी चमड़ी
हिलते हड्डी के ढाँचे पर।
उभरी ढीली नसें जाल सी
सूखी ठठरी से हैं लिपटी
पतझर में ठूठे तरु से ज्यों
सूनी अमरबेल हो चिपटी।

(तारापथ- वह बुड्ढा-सत्ताईस)

जहाँ तक गीतिकाव्य में अन्त:प्रेरणा का प्रश्न है वहाँ वह समस्त काव्यों में विद्यमान रहता है। यदि कोई कवि बिना अन्त:प्रेरणा की रचना करता है तो उसकी रचना में स्वाभाविकता नहीं रहती कृत्रिमता मात्र झलकती रहती है। ठीक इसी प्रकार से प्रगीतिकार के लिए भी यही नियम लागू होता है। इसीलिए हार्दिक भावना का होना नितान्त आवश्यक है। पंतकाव्य में निश्छल अन्त:प्रेरणा दिखलाई पड़ती है किन्तु सर्वत्र नहीं। 'मौन निमन्त्रण' कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है—

कनक छाया में जब कि सकाल
खोलती कलिका उर के द्वार
सुरभि पीड़ित मधुओं के बाल
तड़प बन जाते हैं गुञ्जार
न जाने ढुलक ओस में कौन
खींच लेता मेरे दृग मौन! (तारापथ पाँच)

यह सत्य है कि प्रगीत की रचना, भावावेश में होती है। इसीलिए छोटी कविता की संभावना की जाती है। किन्तु कभी-कभी कविताएँ बड़ी भी हो जाती हैं। इसका कारण यह है कि भावावेश में उसकी भावना का तारतम्य जब तक मिलता रहता है तब तक कविता लिखी जाती है और जब भावों का संतुलन टूट जाता है तब कविता भी छोटी हो जाती है। वस्तुतः पंतकाव्य में दोनों प्रकार की कविताओं के दर्शन होते हैं। पंत की 'पल्लव' रचना में दोनों प्रकार के गीत समाहित हैं। यथा—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले ! तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन !
भूल अभी से इस जग को।

उक्त उदाहरण 'तारापथ' की चौथी कविता 'मोह' का है जो 'पल्लव' रचना से लिया गया है। यह कविता बहुत छोटी है।

इस तरह मेरे चितेरे हृदय की
बाह्य प्रकृति बनी चमत्कृत चित्र थी
सरल शैशव की सुखद सुधि सी वही
बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।

उक्त उदाहरण 'पल्लव' की 'उच्छ्वास' कविता का है। 'तारापथ' संकलन में इसका स्थान तीसरा है। यह कविता बड़ी है।

पंतकाव्य में काव्यात्मकता भी झलकती है। यह प्रगीत का विशेष गुण है जो प्रत्येक प्रगीतकार में होना चाहिए। जब कवि 'प्रथम रश्मि' कविता में अपनी भावनाओं को अभिव्यंजनात्मकता से युक्त होकर प्रकट करता है—

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि !
तूने कैसे पहचाना ?
कहाँ, कहाँ हे बाल विहंगिनि !
पाया तूने यह गाना ? (तारापथ एक

वस्तुतः उक्त उदाहरण में कलात्मकता मुखर हो उठी है।

उक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि पंतजी प्रगीतकार की दृष्टि से काफी सफल हैं। डॉ० गुलाबराय ने गीति-काव्य के पाँच भेद माने हैं—१—प्रकृति सम्बन्धी, २—जीवन मीमांसा सम्बन्धी, ३—आध्यात्मिक विरह-मिलन, ४—राष्ट्रीय गीत और, ५—लौकिक प्रेम सम्बन्धी गीत।

यह मैं प्रारम्भ में ही कह चुका हूँ कि कवि का प्रेम प्रकृति के प्रति प्रगाढ़ है। इसलिए प्रकृति सम्बन्धी उदाहरण प्रस्तुत करना उचित नहीं समझता। यों तो छायावादी कवियों ने जीवन मीमांसा सम्बन्धी गीत कम लिखे हैं क्योंकि ये सारे कवि कल्पना

के दीवाने थे इसलिए इसी के ताने बुनने में व्यस्त रहे। इतना अवश्य है कि अपनी कविताओं में इन कवियों ने युग का चित्रण समय की गति के साथ-साथ अवश्य किया है। पन्तकाव्य में जीवन मीमांसा सम्बन्धी उदाहरण मिलते हैं। जैसे—

जीवन की क्षण-धूलि रह सके जहाँ सुरक्षित
रक्त मांस की इच्छाएँ जन की हो पूरित।
(युगवाणी दो लड़के, तारापथ तेईस)

पंतकाव्य में आध्यात्मिक विरह मिलन सम्बन्धी गीत भी मिलते हैं—

एक ही तो असीम उल्लास,
विश्व में पाता विविधाभास।
तरल जलनिधि में हरित विलास,
शरत अम्बर में लीन विकास।

आधुनिक हिन्दी साहित्य जगत् की विशेषता है राष्ट्रीय गीत। भारतेन्दु से लेकर आज तक राष्ट्रीय गीत सम्बन्धी रचनाएँ मिलती हैं। यों तो कुछ न कुछ रूप में प्रत्येक काल में भी मिलती हैं किन्तु पहले की रचनाएँ आज की तुलना में नहीं के बराबर हैं। इसलिए आज के राष्ट्रीय गीत पहले की अपेक्षा अपना विशेष महत्व रखते हैं। पंत काव्य में राष्टीय गीत देखे जा सकते हैं—

सफल आज उसका तप संयम,
पिला अहिंसा स्वन्य सुधोपम,
हरती जन मन भय, भव तम भ्रम,
जग जननी जीवन विकासिनी। (भारतमाता, तारापथ तीस)

छायावाद में शृङ्गार रस की प्रधानता है। शृङ्गार का सम्बन्ध प्रेम से होता है जो लौकिक है। पंतजी प्रणयिनी के चित्रण में नहीं चूकते हैं। यथा—

'बाल रजनी सी अलख थी डोलती,
भ्रमित हो शशि के वदन के बीच में।
अचल रेखांकित कभी थी कर रही,
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में।

उक्त उदाहरण में मुख सौन्दर्य का वर्णन किया गया है।

शैली की दृष्टि से भी प्रगीत के ६ भेद माने गए हैं—

(१) चतुर्दश-पदी (२) शोक गीत (३) सम्बोधन गीत (४) विचारात्मक (५) व्यंग्य (६) उपदेशात्मक गीत।

पंत की रचनाओं में चतुर्दशपदी एवं शोक गीत नहीं मिलते हैं। शेष युगवाणी 'गुञ्जन' एवं 'ग्राम्या' में मिल जाते हैं।

प्रगीतकार की दृष्टि से पंत का नाम उल्लेखनीय है। गीति-काव्य को समृद्ध बनाने वालों में महत्वपूर्ण स्थान है।

अध्याय | ४

पंतकाव्य में प्रकृति-चित्रण

वास्तव में प्रकृति मानव की चिर सहचरी रही है। प्रकृति की गोद में ही मनु-पुत्र ने अपनी आशा आकांक्षाओं के चित्र चित्रित किए हैं। दोनों जन्म से ही एक दूसरे के पूरक रहे हैं। इसीलिए दोनों की सत्ता अनुराग-विराग से अनुप्राणित है। मानव प्रकृति से ही सदा जीवन का संघर्ष सीखता आया है। जीवन की वास्तविक गति उसे प्रकृति से ही मिली इसीलिए मानव आगे बढ़ता ही गया। ठीक ऐसी ही स्थिति महाकवि पंत की है। जन्म कुर्माञ्चल प्रदेश में हुआ। प्रकृति के बीच गुनगुनाना सीखा। शनैः शनैः कवि का अनुराग प्रकृति में जम गया उसकी सौन्दर्य छटा को निर्निमेष पलकों से देखता रहा। यही कारण है प्रकृति उसके रोम-रोम में समा गई। कवि ने 'याचना' नामक कविता में इसी राग की ध्वनि की मांग की है—

जो अकर्ण अहि को भी सहसा
कर दे मन्त्र मुग्ध नत फन
रोम-रोम के छिद्रों से माँ
फूटे तेरा राग गहन
बना मधुर मेरा तन मन।

कवि का जब प्रकृति में अटूट प्रेम हो गया तब कवि मौन निमन्त्रण कविता में यह देखता है कि मधुमास सौरभ उसे सन्देश देता है—

देख वसुधा का यौवन भार
गूँज उठता है जब मधुमास
विधुर उर के से मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास
न जाने सौरभ के मिस कौन
संदेशा मुझे भेजता मौन।
क्षुब्ध जल शिखरों को जब वात
सिन्धु में मथकर फेनाकार
बुलबुलों का व्याकुल संसार

बना बिथुरा देती अज्ञात
उठा तब लहरों से कर कौन
न जाने, मुझे बुलाता मौन ! (तारापथ : पाँच)

प्रकृति के इन्हीं मौन संकेतों को कवि ने भाव एवं वाणी प्रदान की इसी कल्पना लोक से विचरता हुआ कवि आध्यात्मिकता की ओर बढ़ गया। कवि ने यह स्वयं स्वीकार किया है कि उसे कविता करने की प्रेरणा प्रकृति से ही मिली। 'आधुनिक कवि की भूमिका में लिखा है—'कविता करने की प्रेरणा मुझे सर्वप्रथम प्रकृति निरीक्षण से मिली है जिसका श्रेय मेरी जन्म भूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। कवि जीवन से पहले भी मुझे याद है, मैं घन्टों एकान्त में बैठा प्रकृति दृश्यों को एक टक देखा करता था और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था। जब कभी मैं आँख मूदकर लेटता था तो वह दृश्य चुपचाप मेरी आँखों के सामने घूमता था। 'वीणा' के चित्रण प्रकृति के प्रति मेरे अगाध-मोह के साक्षी हैं। प्रकृति निरीक्षण में मुझे अपनी भावनाओं की अभिव्यंजना में अधिक सहायता मिली है प्राकृतिक चित्रों में प्रायः मैने अपनी भावनाओं को ही कभी-कभी प्राकृतिक सौन्दर्य का लिवास पहना दिया है। वस्तुतः यही गूज पंत काव्य में सर्वत्र मिलती है।

आलोचकों ने साहित्य जगत में प्रकृति चित्रण छः प्रकार के माने हैं—१—आलम्बन रूप। २—उद्दीपन रूप। ३—अलंकृत रूप। ४—उपदेशात्मक। ५—मानवीकरण। ६—ईश्वर सम्बन्धी।

अतः इसी आधार पर हम पन्त के प्रकृति चित्रण का निरीक्षण करेंगे।

आलिम्बन रूप में—किसी प्रकार की भावना से रहित विशुद्ध प्रकृति चित्र जहाँ विद्यमान हों वहाँ ही प्रकृति का आलम्बन रूप होता है। यहाँ कवि उच्छ्वास नाम क कविता में प्रकृति की सुन्दरता पर मुग्ध होकर आत्मविभोर हो उठा है। इस प्रकार के चित्रण में नदी, पर्वत, झरना आदि कवि की भावना के आधार हो जाते हैं।

'पल्लव' की 'उच्छ्वास' कविता का प्रस्तुत उदाहरण द्रष्टव्य है—

पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश,
पल पल परिवर्तित प्रकृति वेश !
मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग सुमन फाड़
अवलोक रहा है बार-बार
नीचे जल में निज महाकार !

—जिसके चरणों में पला ताल
दर्पण सा फैला है विशाल ।।
गिरि का गौरव गाकर झर् झर्
मद से नस-नस उत्तेजित कर
मोती की लड़ियों से सुन्दर
झरते हैं झाग भरे निर्झर।
गिरिवर के उर से उठ उठ कर
उच्चाकांक्षाओं से तरुवर
हैं झाँक रहे नीरव नभ पर
अनिमेष अटल कुछ चिन्ता पर । (तारापथ : तीन)

इस प्रकार के अनेक चित्रण 'तारापथ' की हिमाद्रि एवं ग्राम श्री कविताओं में मिलते हैं। यह अवश्य है कि कहीं-कहीं अरहर, सनई एवं मटर आदि के चित्रण में ही कवि सन्तुष्ट हो गया है।पंत काव्य में प्रकृति के आलम्बन रूप कम मिलते हैं। तारापथ काव्य संकलन में तो इसके चित्र बहुत ही कम हैं।

उद्दीपन रूप में—जब प्रकृति का उपयोग कवि अपनी भावनाओं को उद्दीप्त करने में करता है तब प्रकृति का उद्दीपन रूप होता है ।

'डोलने लगी मधुर मधु वात
हिला तृण व्रतित कुंज तरु पात
डोलने लगी प्रिये ! मृदु वात
गूँज मधु गंध धूलि हिम गात'

यहाँ 'मधुर मधुवात' से कवि की प्रसन्नता प्रकट होती है। क्योंकि जब कवि मानस तृप्त होता है और आनन्द की हिलोरें उसके मानस पर उठने लगती हैं तभी ऐसे चित्र अंकित होते हैं। मध्यकालीन साहित्य में सूर, तुलसी, केशव आदि कवियों के द्वारा ऐसे चित्रों की भरमार है।

अलंकार रूप में—जहाँ कवि काव्य में सौन्दर्य लाने के लिए अलंकारों का समावेश प्रकृति के माध्यम से करता है वहां अलंकार रूप में प्रकृति चित्रण होता है—

निराकार तम मानो सहसा
ज्योति पुन्ज में हो साकार
बदल गया द्रुत जगत जाल में
धर कार नाम रूप नाना ।

(तारापथ : एक)

यहां अलंकारों के आधार पर प्रकृति के यथार्थ रूप का चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

'अरुण कलियों से कोमल घाव
कभी खुल पड़ते हैं असहाय।'

उक्त उदाहरण को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि की मूल चेतना प्रकृति में ही है। प्रकृति के चित्रण में कवि अलंकारों के फेर में नहीं पड़ा है। स्वयं अलंकार स्वाभाविक गति से समाहित हो गए हैं।

उपदेशात्मक रूप में—जहां कवि को जगतीतल का प्रत्येक आकर्षण कुछ उपदेश देता हुआ सा दिखाई पड़ता है वहाँ ही उपदेशात्मक रूप में प्रकृति चित्रण होता है। यथा—

तुम भूल गए क्या मातृ प्रकृति को ? तुम जिसके
आँगन में खेले कूदे, जिसके आंचल में
सोए, जागे, रोए, गाए, हँस बड़े हुए !
जो बाल सहचरी रही तुम्हारी स्वप्न प्रिया
जो कला मुकुट बन गई तुम्हारे हाथों में—
तुम स्वप्न धनी हो जिसके बने अमर शिल्पी।

(तारापथ : अड़तीस)

पंत काव्य में ऐसे उपदेश रूप में उदाहरण बहुत मिलते हैं। गुन्जन में ऐसे उपदेशात्मक प्रकृति चित्रण रूप देखे जा सकते हैं—

"कहती अपलक तारावलि
अपनी आँखों का अनुभव
अवलोक आँख आँसू की
भर आती आंखें नीरव।"

मानवीकरण रूप में—'जहाँ किसी वस्तु अथवा भाव में चेतना का आरोप किया जाता है वहां 'मानवीकरण' अलंकार होता है। मानवीकरण छायावादी कविता की मुख्य विशेषता है। प्रमुख छायावादी कवियों ने मानवीकरण रूप में ही प्रकृति का चित्रण किया है। महाकवि पंत की रचनाओं में अधिकांशतः मानवीकरण के रूप में प्रकृति के चित्रण मिलते हैं। यथा—

फिर परियों के बच्चों से हम
सुभग सीप के पंख पसार।

समुद पैरते शुचि ज्योत्स्ना में
पकड़ इन्दु के कर सुकुमार।'

(पल्लव : तारापथ : सात)

बादल के टुकड़ों में चेतना का आरोप किया गया है। और उन्हें बालक शिशुओं के रूप में दिखलाया गया है। 'प्रथम रश्मि' कविता में तो इस प्रकार के उदाहरण भरे पड़े हैं—

सोई थी तू स्वप्न नीड़ में
पखों के सुख में छिपकर,
ऊँघ रहे थे घूम द्वार पर
प्रहरी से जुगनू नाना;
शशि किरणों से उतर उतरकर
भू पर काम रूप नभचर
चूम नवल कलियो का मृदु मुख,
सिखा रहे थे मुसकाना

(तारापथ : एक)

यहाँ कवि ने जुगनू का प्रहरी के रूप में चित्रण प्रस्तुत किया है। यही नहीं समूचे पद में मानवीकरण है। जैसे—काम रूप नभचर आदि। 'तारापथ' काव्य-संकलन की। उच्छ्वास, परिवर्तन, नौका-बिहार आदि कविताओं में मानवीकरण के चित्र पाए जाते हैं 'नौका-विहार' कविता का एक सुन्दर उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है—

शांत, स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल !
अपलक अनंत, नीरव भूतल !
सैकत शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल,
लेटी हैं श्रांत, क्लांत, निश्चल !
तापस बाला गंगा निर्मल, शशि-मुख से दीपित मृदु करतल,
लहरें उर पर कोमल कुंतल !

(तारापथ ! सोलह)

उक्त उदाहरण में गंगा को तपस्विनी बालिका के रूप में कवि ने चित्रित किया है।

ईश्वर सम्बन्धी अभिव्यक्ति के रूप में—इसमें कवि समस्त प्रकृति में ईश्वरीय सत्ता का दर्शन करता है। प्रत्येक उपकरण ईश्वरीय सत्ता की अभिव्यक्ति के माध्यम से बोध कराते हैं। पन्त जी की कविता मौन निमन्त्रण में इसके रूप मिलते हैं। जहाँ अपरिचित सत्ता का बोध होता है। यथा—

बिछा कार्यों का गुरुतर भार
दिवस को दे सुवर्ण अवसान,
शून्य शय्या में श्रमित अपार,
जुड़ाती जब मैं आकुल प्राण;
न जाने मुझे स्वप्न में कौन।
फिराता छाया जग मे मौन।
न जाने कौन, अये द्युतिमान !
जान मुझको अबोध अज्ञान,
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूंक देते छिद्रों में गान;
अहे सुख दुख के सहचर मौन।
नहीं कह सकती तुम हो कौन।

(तारापथ—पाँच)

इस प्रकार हम देखते हैं कि पंत काव्य में आलोचकों द्वारा निर्धारित षट्विध रूपों में से 'मानवीकरण रूप, आलम्बन रूप, उपदेशात्मक रूप, और ईश्वर सम्बन्धी अभिव्यक्ति रूप आदि का सफल चित्रण हुआ है।

जब हम इस शास्त्रीय रूढ़ि परिपाटी को छोड़ देते हैं तो साहित्यिक प्रवाह की वास्तविक गति पन्त काव्य में पाते हैं। वह ऐसी सौन्दर्य की गति है, जो मानव को साहित्यिक भाव-भूमि के माध्यम से कल्पना-जगत का आनन्द दिलाती है। वह मानव कुछ देर के लिए सांसारिक सुखों एवं दुःखों से परे हो जाता है और जब कल्पना-लोक में विचरण करने लगता है तब उसके रोम-रोम से कवि की वही ध्वनि फूटने लगती, जो प्रकृति के बीच कवि के रोम-रोम से फूटी थी। कवि स्वच्छन्दवादी है,अतः उसकेभाव-भूमि की जाँच स्वच्छन्द रूप से ही होनी चाहिए;किसी संकोर्ण साँचे से नहीं। कवि का कल्पना जगत सुविकसित वस्तु के लिए विकसित है। इसलिए विकसित वस्तु चाहिए,क्योंकि संकीर्ण साँचे में सुविकसित वस्तु नहीं समा सकती; जबर्दस्ती जब हम उसमें उसे पिरोना चाहते हैं तो वह साँचा चरमरा जाता है। ठीक जैसे कुटिया में लिखे जाने वाले काव्य की तुलना दरबारी काव्य से नहीं की जा सकती। क्योंकि कुटिया का काव्य स्वच्छन्द गति से प्रवाहित हुआ है और दरबार में लिखा जाने वाला काव्य संकीर्ण दायरे में। दोनों की अलग-अलग विधाएँ हैं, दोनों का अलग-अलग महत्व है; अतः दोनों की तुलना पृथक्-पृथक् सन्दर्भ में ही होनी चाहिए; नहीं तो दोनों लड़खड़ा पड़ेंगे। ठीक उसी प्रकार स्वच्छन्दतावादी कवि की रचना का मूल्यांकन दरबारी शास्त्रीय परम्परा के ढाँचे

से नहीं करनी चाहिए। अतः स्वच्छन्द रीति से और स्वच्छन्द गति से प्रवाहित होने वाली प्रकृति सम्बन्धी कविता का हम मूल्यांकन प्रस्तुत करते हैं। कवि जब 'वीणा' की 'प्रथम रश्मि' कविता में प्राकृतिक-छटा का वर्णन करता है—

सिहर उठे पुलकित हो द्रुम दल
सुप्त समीरण हुआ अधीर,
झलका हास कुसुम अधरों पर,
हिल मोती का सा दाना;
खुले पलक, फैली सुवर्ण छवि;
खिली सुरभि, डोले मधु बाल,
स्पन्दन कंपन औ नव जीवन
सीखा जग ने अपनाना;

(तारापथ—एक)

उक्त उदाहरण में प्रकृति का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया है। प्रभात-कालीन वायु के स्पर्श से वृक्षों के सुप्त पल्लव रोमांचित होकर किस प्रकार से सिहर उठे हैं। वायु की निश्चेष्टता प्रथम-रश्मि-आगमन से ही प्रवाहित होने लगी है। पुष्प-अधरों, ओस के कणों; सम्पूर्ण प्रकृति की प्रफुल्लता और सर्वत्र हर्ष ही हर्ष का फैलना आदि वर्णित हैं। इस प्रकार प्रस्तुत चित्रण कवि के गहन प्रकृति-अध्ययन को सूचित करता है। इसी प्रकार से 'पल्लव' की कविता 'मौन निमन्त्रण' में कवि प्रकृति का चित्र खींचता है—

कनक छाया में, जब कि सकाल
खोलती कलिका उर के द्वार,
सुरभि पीड़ित मधुपों के बाल
तड़प बन जाते हैं गुञ्जार;
न जाने, ढुलक ओस में कौन
खींच लेता मेरे दृग मौन!

(तारापथ—पाँच)

कवि ने कितनी सूक्ष्मता के साथ उक्त पंक्तियों में कली को नवयौवना बाला के रूप में और भ्रमर कुमारों को प्रेमी किशोरों के रूप में चित्रित किया है। कवि ने यह दिखाया है कि प्रभात की सुनहली किरणों में कलियाँ अपनी पंखुड़ियों को खोलती हैं तो उनकी सुगन्ध से व्याकुल भँवरे कलियों का रसपान करने के लिए तड़प उठते हैं। तड़पने का अनुमान भ्रमरों के गुंजार से कवि करता है। यह कवि की प्रबल कल्पना

शक्ति का प्रतीक है। कवि को सन्देह होता है कि नन्हीं-नन्हीं ओस की बूँदों के द्वारा कौन उसे आकृष्ट कर लेता है। यह उदाहरण प्रकृति में लीन कवि का परिचायक है। 'पल्लव' की 'बादल' कविता में कवि प्रकृति का कलात्मक चित्र खींचता है—

बुद्बुद द्युति तारक दल तरलित
तम के यमुना जल में श्याम
हम विशाल जबाल जाल-से
बहते हैं अमूल, अविराम;
× × ×
दुहरा विद्युद्दाम चढ़ा द्रुत,
इन्द्र धनुष की कर टंकार,
विकट पटह-से निर्घोषित हो,
बरसा विशिखों सा आसार;

(तारापथ—सात)

× × ×

हाय! सब मिथ्या बात!
आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरता सूनी साँस!
वही मधु ऋतु की गुंजित डाल
झुकी थी जो यौवन के भार,
अकिंचनता में निज तत्काल
सिहर उठती,—जीवन है भार!
आज पावस नद के उद्गार
काल के बनते चिह्न कराल
प्रात का सोने का संसार;
जला देती सन्ध्या की ज्वाल!

(तारापथ—नौ)

प्रथम उदाहरण में कवि ने बुद्बुद् द्युति, तारक-समूह यमुना के श्याम जल आदि का रमणीक चित्र प्रस्तुत किया है। 'बुद्बुद् द्युति में कवि की सूक्ष्मता का आभास होता है। द्वितीय में कवि की स्थूल दृष्टि ही प्रतिबिंबित हो उठी है। किन्तु तृतीय उदाहरण में प्रकृति परिवर्तन का जो चित्र उपस्थित किया है, वह अति सराहनीय है। समस्त जड़वत् जगत् को मिथ्या मानता है, क्योंकि इनका स्थायित्व नहीं है। प्रकृति के माध्यम से जीवन को भी मिथ्या कवि ने स्वीकार किया है।

'गुञ्जन' की कविता 'एक तारा' में भी कवि का प्रकृति चित्रण दर्शनीय है—

नीरव सन्ध्या में प्रशांत
डूबा है सारा ग्राम प्रांत !
पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर,
ज्यों वीणा के तारों में स्वर !
खग कूजन भी हो रहा लीन, निर्जन गो पथ अब धूलिहीन,
धूसर भुजंग-सा जिह्म क्षीण !
झींगुर के स्वर का प्रखर तीर, केवल प्रशान्ति को रहा चीर
सन्ध्या-प्रशान्ति को कर गम्भीर !

(तारापथ—चौदह)

प्रस्तुत उदाहरण वास्तव में पंत जी को प्रकृति के महाकवि के रूप में चित्रित करता है। सन्ध्या का चित्र मानो स्वयं बोल रहा हो। वीणा के तारों की झंकार भी सुनाई देती है। पक्षियों का कलरव, गो पथों की निर्जनता, झींगुर के स्वर आदि मिल कर सन्ध्या को गम्भीर बनाने में किस प्रकार से योग दे रहे हैं। सम्पूर्ण चित्र को संजोकर कवि ने कैसी विलक्षता के साथ चित्रित कर दिया है जो पल-पल पर नूतन सा लगता है।

'युगान्त' में जब उसे पुरातन प्रिय नहीं लगता है तब उत्तेचित होकर अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है—

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र,
हे स्त्रस्त ध्वस्त हे शुष्क शीर्ण !
हिम-ताप-पीत मधुवात-भीत,
तुम वीतराग जड़ पुराचीन।

(तारापथ—सत्रह)

किस प्रकार से सामाजिक विप्लव को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त किया है। वह पुरातन समाज को एक क्षण भी नहीं देखना चाहता। इसीलिए शीघ्र ही जीर्ण पत्तों को झर जाने के लिए कहता है। प्रकृति का भयावह चित्र है। 'युगान्त' का दूसरा उदाहरण ध्वनि की व्यंजना के लिए अति प्रसिद्ध है जो निम्नलिखित है—

बाँसों का झुरमुट—
सन्ध्या का झुटपुट—
हैं चहक रही चिड़ियाँ
टी-वी-टी-टुट्-टुट् !

(तारापथ—अठारह)

'युगवाणी' की झंझा नीम कविता का उदाहरण ध्वनि एवं अभिव्यंजना की दृष्टि से अति उत्तम प्रतीत होता है—

वृक्ष शिखर से भू पर
शत शत मिश्रित ध्वनि कर
फूट पड़ा लो निर्झर
मरुत कम्प अर !......
झूम झूम, झुक झुक कर
भीम नीम तरु निर्भर
सिहर सिहर थर् थर् थर्
करता सर् मर्
चर् मर् । (तारापथ—चौबीस)

ध्वनि के अतिरिक्त प्रकृति का स्थूल रूप ही चित्रित है। यहाँ कवि की दृष्टि गोताखोर की तरह मोती खोजने में दत्तचित्त नहीं दिखाई पड़ी। इसीलिए कवि प्रकृति के स्थूल सौन्दर्य तक ही पहुँच सका।

'ग्राम्या' में कवि प्राचीन प्रकृति वर्णनों की परम्पराओं की ओर झुकता सा दिखाई देता है। यथा—

महके कटहल मुकुलित जामुन,
जङ्गल में झरबेरी झूली,
फूले आड़ू, नीबू, दाड़िम
आलू, गोभी, बैगन, मूली। (तारापथ—छब्बीस)

इस वर्णन में न कोई नूतनता है और न प्रकृति की सुन्दरता। केवल काम चलाऊ प्रकृति का वर्णन कवि ने कर दिया है। यही प्रकृति वर्णन में कवि की शिथिलता है। 'स्वर्ण किरण' की 'हिमाद्रि' कविता में प्रकृति का उत्कृष्ट चित्र मिलता है। यथा—

घनीभूत अध्यात्म तत्व—से,
जिससे ज्योति सरित शत निःसृत
प्राणों की हरियाली से स्मित
पृथ्वी तुमसे महिमा मंडित।
स्फटिक सौंध-से श्री शोभा के
रश्मि रेख शृंगो से कल्पित
स्वर्ग खण्ड तम इस वसुधा पर
पुण्य तीर्थ हे देव प्रतिष्ठित ! (तारापथ—तैंतीस)

यहाँ हिमालय को जो जड़ प्रकृति है, कवि ने देव स्वरूप प्रतिष्ठित किया है। 'स्वर्ण धूलि' की 'सावन' कविता का उदाहरण प्रकृति की सूक्ष्म ध्वनि की परिचायक है। जैसे—

झम झम झम झम मेघ बरसते रे सावन के,
छम छम छम गिरतीं बूँदे तरुओं से छन के!
चम चम बिजली चमक रही छिप उर में घर के,
थम थम दिन के तम में सपने जगते मन के!

(तारापथ-पैंतीस)

बादलों के झम-झम, बूँदों के छम-छम, बिजली के चम-चम और दिन के थम-थम में, जो ध्वनियाँ समाहित हैं वही समूचे पद को रमणीक बनाती हैं। कवि ने यहाँ प्रकृति का बिल्कुल सच्चा चित्र उपस्थित किया है। यहाँ कवि का प्रकृति चित्रण अति प्रशंसनीय है।

इसके पश्चात् की रचनाओं में प्रकृति का वह उन्मुक्त रूप नहीं मिलता, जो 'वीणा', 'पल्लव', 'गुंजन', 'युगान्त', 'युगवाणी' आदि रचनाओं में मिला है। यहाँ प्रकृति कवि के लिए उपास्य एवं कौतूहल की जननी रही है किन्तु जैसे जैसे पंत जी आध्यात्मिकता की ओर बढ़ते गए है वैसे ही वैसे प्रकृति का शुद्ध रूप समाप्त होता गया है। वैसे तो पंत की प्रत्येक रचनाओं में प्रकृति के चित्र देखे जा सकते हैं किन्तु अब वह शुद्ध प्रकृति का रूप नहीं देखा जा सकता है। पंत जी के समग्र प्रकृति-चित्रण को देखकर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ, कवि अपनी सूक्ष्म प्रकृति-पर्यवेक्षणी शक्ति द्वारा प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वों की ओर आकृष्ट हुआ है और प्रकृति के अंग-प्रत्यंग के वर्णन में सफल है।

—❀—

अध्याय | ५

पंत का नारी विषयक दृष्टिकोण

प्राचीन काल में यह भावना प्रचलित थी, 'जहाँ नारियों की पूजा की जाती है वहाँ देवता निवास करते हैं'। वस्तुतः यह सत्य है। नारी इस युग में शक्ति की प्रतीक थी। मानव शक्ति का उपासक था। इस प्रकार दोनों में उपासक-उपास्य का सम्बन्ध था। मानव जब कोई यज्ञ करता था तब उसके साथ नारी का यज्ञ में बैठना आवश्यक था, क्योंकि बिना नारी के यज्ञ अधूरा समझा जाता था इतना ही नहीं, नारियों को अपने विवाह की भी पूर्ण स्वतन्त्रता थी। स्वयम्बर के माध्यम से नारियाँ अपना विवाह करती थीं। कृष्ण की गोपिकाएँ तो पूर्ण स्वतन्त्र थीं। जो कृष्ण के बीच आकर रास-लीला में भाग लेती थीं। पुरुष उन्हें सन्देह की दृष्टि से नहीं देखता था। वीरगाथा काल की नारी वीरांगना के रूप में अवतरित हुई। उसने देश, जाति, धर्म और सतीत्व की रक्षा के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देना आवश्यक समझा। भक्ति काल में नारी को आध्यात्मिक प्रेरणा एवं शक्ति की संचालिका माना गया। कवियों ने नारी में अनन्त सौन्दर्य के दर्शन किए। किन्तु यह युग युक्त कथन का अपवाद भी रहा। कुछ कवियों ने नारी को मांसल यौवन एवं विद्युत वासना के रूप में देखा। किन्तु सूर की राधा तो चिरन्तन पुरुष की प्रेमिका बनकर आयी। तुलसी ने उसे आदर्श नारी के रूप में देखा। किन्तु सामन्त काल में वही नारी वासनात्मक रूप में चित्रित की गई। इस प्रकार इस युग में उसके मातृत्व पक्ष की उपेक्षा की गई। लेकिन उसी नारी को आधुनिक काल में समाज-सेविका के रूप में देखा गया। छायावादी कविता में तो नारी का अस्तित्व, भावुकता, सौन्दर्य, कल्पना एवं अतीन्द्रिय चित्र के रूप में परिवर्तित हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद में नारी का विविध-मुखी चित्रण हुआ है। अब हम उक्त ऐतिहासिकता के पश्चात् पंत काव्य में नारी भावना का क्या रूप है ? इसको देखने का प्रयास करेंगे। क्योंकि यहाँ हमारा यही अभीष्ट है।

वस्तुतः महाकवि पंत ने नारी को चार रूपों में देखा है। (१) देवी (२) मां (३) सहचरी और (४) प्राण।

कवि प्रारम्भ से ही प्रकृति-सौन्दर्य प्रेमी रहा है। प्रकृति के बीच ही उसे सुकुमार

भावनाएँ प्राप्त हुईं। कवि ने 'वीणा' में नारी को मां के रूप में देखा है। 'तारापथ' की 'मोह' नामक कविता में माँ के सम्मुख नारी के बाला रूप का वर्णन करता है--

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले ! तेरे बाल जाल मे कैसे उलझा दूँ लोचन ?
भूल अभी से इस जग को !

वस्तुतः उक्त कथन में कलात्मकता है। 'वीणा' में तो कवि के प्रारम्भिक जीवन की कल्पना का संकलन है। इसीलिए 'वीणा' का विकास 'पल्लव' की रचनाओं में दीख पड़ता है। किन्तु यहाँ यह भी कहना आवश्यक है कि पंत जी के हृदय में नारी के प्रति राग-विराग का द्वन्द्व अधिक चला है और कहीं तो प्रकृति-प्रेम में लीन उसके 'बाल-जाल' में लोचन उलझाने से विचकते से दिखाई पड़ते हैं। 'पल्लव' की 'बालापन' कविता में माँ का वास्तविक रूप झलक उठा है। यथा--

हे विधि, फिर अनुवादित कर दो
उसी सुधा स्मिति में अनुपम
मा के तन्मय उर से मेरे
जीवन का तुतला उपक्रम !

(तारापथ--आठ)

ग्रन्थि में नारी भावना का विकसित रूप प्राप्त होता है किन्तु 'ग्रन्थि' की तुलना में 'गुंजन' में नारी भावना का अविकसित रूप ही मिलता है। 'भावी पत्नी के प्रति' नामक कविता में कवि नारी को प्राणों की प्राण के रूप में चित्रित करता है--

प्रिये, प्राणों की प्राण !
न जाने किस गृह में अनजान
छिपी हो तुम, स्वर्गीय विधान !
नवल कलिकाओं की सी वाण,
बाल रति सी अनुपम, असमान,
न जाने, कौन कहाँ, अनजान,
प्रिये, प्राणो की प्राण !

(तारापथ-बारह)

'गुंजन' की 'अप्सरा' नामक कविता में नारी का सहचरि रूप देखा जा सकता है--

शैशव की तुम परिचित सहचरि,
जग से चिर अनजान।

नव शिशु के सँग छिप-छिप रहती
तुम, माँ का अनुमान,
डाल अँगूठा शिशु के मुँह में
देती मधु स्तन दान,
छिपी थपक से उसे सुलाती
गा-गा नीरव—गान !

(तारापथ-पन्द्रह)

'युगवाणी' में नारी को नर की छाया समझकर कवि व्यक्त करता है—

वह नर की छाया नारी !
चिर नमित नयन पर विजड़ित
वह चकित, मौन हिरनी सी
नज चरण चाप से शंकित
मानव की चिर सह धर्मिणि
युग-युग से मुख अवगुंठित,
स्थापित घर के कोने में
वह दीपशिखा सी कम्पित !

उक्त पंक्तियों में नारी के जीवन का वास्तविक चित्र कवि ने खींचा है। वास्तव में नारी का कुछ ऐसा ही जीवन रहा है और आज भी है। इसके अतिरिक्त 'ग्राम्या' में कवि ने 'मजदूरनी के प्रति नामक कविता में ग्रामीण—नारी का जीता—जागता चित्र प्रस्तुत किया है। जिसमें उसे जग—जीवन का कार्य करने वाली नारी भी कहा है—

नारी की संज्ञा भुला, नरों के संग बैठ,
चिर जन्म सुहृद सी जन हृदयों में सहज पैठ,
जो बंटा रही तुम जग जीवन का काम काज
तुम प्रिय हो मुझे : न छूती तुमको काम लाज !
सर से आँचल खिसका है, धूल भरा जूड़ा,
अधखुला वक्ष-ढोती तुम सिर पर धर कूड़ा,
हँसती, बतलाती सहोदरा सी जन जन से,
यौवन का स्वस्थ्य झलकता आतप सा तन से !

(तारापथ-इकतीस)

इसके अतिरिक्त 'स्वर्ण-किरण' और 'स्वर्ण धूलि' आदि रचनाओं में भी नारी भावना का स्वाभाविक रूप पाया जाता है। किन्तु अन्य रचनाओं में नारी-भावना का रूप नहीं के बराबर मिलता है। पन्त जी निराला जैसे महाकवि की भाँति नारी-भावना के पारखी तो नहीं थे किन्तु अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा नारी भावना के प्रति काफी सजग थे। श्री शान्ति प्रिय द्विवेदी ने लिखा है "छायावाद युग में पंत ने नारी को उसकी सांस्कृतिक महिमा-सुषमा में देखा था। छायावाद के बाद ज्यों-ज्यों सामाजिक वास्तविकता स्पष्ट होने लगी, त्यों-त्यों न केवल नारी का बल्कि समस्त मानव समुदाय का अशोभन मुख कवि के सम्मुख प्रत्यक्ष होने लगा। कवि ने शोषित पीड़ित समूह की भाँति ही नारी के माध्यम से भी युगों का कदर्य्य इतिहास देखा है।' इस प्रकार पंत जी नारी भावना के चित्रण में काफी हद तक सफल रहे हैं।

—०-※-०—

अध्याय | ६

पंत काव्य पर एक तुलनात्मक दृष्टि

विश्व इतिहास इस बात का साक्षी है कि हम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में किसी व्यक्ति अथवा वस्तु विशेष का मूल्य आंकने के लिए तुलनात्मक पद्धति का अनुसरण करते आए हैं। विश्व का साहित्यक क्षेत्र इसका अपवाद नहीं है। प्राचीन काल में कालिदास और भवभूति की तुलना की जाती थी। आंग्ल साहित्य के महान् कवि शेक्सपियर की तुलना भी आलोचक संस्कृत के महान् कवि, कालिदास से करते थे और आज भी कुछ वैसा ही है। हिन्दी साहित्य में सूर-तुलसी केशव-तुलसी, देव-बिहारी आदि की तुलना अति प्रसिद्ध हैं। यह दृष्टिकोण कवियों और आलोचकों ने कवियों के मूल्य को आंकने के लिए अपनाया था किन्तु धीरे-धीरे राजनीतिक प्रभाव के कारण यह पद्धति गलत दिशा में जाने लगी। जिसका परिणाम यह हुआ कि कवियों का वास्तविक मूल्य नहीं आंका जा सका कालिदास—भक्त कालिदास को बड़ा ठहराने में तत्पर थे तो दूसरी ओर भवभूति के उपासक भवभूति को। इसी प्रकार से हिन्दी साहित्य में तो इसकी आँधी ही चल पड़ी। देव कभी छोटे दिखाये जाते थे तो कभी बिहारी बड़े, कभी देव बड़े तो बिहारी छोटे, सूर तुलसी एवं केशव-तुलसी आदि की भी यही दशा थी। किसी कवि का उचित मूल्यांकन न हो सका। आज भी आलोचक किसी का मूल्यांकन करने के लिए इसी पद्धति का सहारा लेते हैं। अतः हम यहाँ मुख्य रूप से छायावाद के प्रमुख कवियों पंत ,प्रसाद, निराला, महादेवी एवं मैथिलीशरण गुप्त के बीच तुलनात्मक अध्ययन, साहित्यिक स्तर पर प्रस्तुत करेंगे।

पंत और प्रसाद—दोनों महाकवि छायावाद के प्रवर्तकों में से हैं। कुछ आलोचक पंत को छायवाद का प्रवर्तक मानते हैं तो कुछ 'प्रसाद' को। दोनों कवियों ने ब्रजभाषा काव्य परम्परा का विरोध करके खड़ी बोली में कविता पद्धति की नींव ही नहीं डाली बल्कि उसे विकसित करने में भी योग दिया। दोनों ही सौन्दर्य-प्रेमी रहे हैं। प्रकृति की सुन्दरता ने इन्हें आकर्षित कर लिया था। प्रकृति के बीच कल्पना की उड़ान भरने का सुअवसर भी प्राप्त हुआ। इसीलिए दोनों के काव्यों में कोमल भावनाएँ संगीत आदि ध्वनियाँ मिलती हैं। दोनों कवि अपनी-अपनी रचनाओं के प्रति सचेत दिखाई पड़ते हैं। इसीलिए काव्यों में प्रगाढ़ चिन्तन एवं मनन झलकता है।

रचना के दृष्टिकोण से प्रसाद ने जहाँ नाटक, काव्य उपन्यास, कहानी, महाकाव्य आदि का सृजन किया वहाँ पंत ने भी काव्य-महाकाव्य, कहानी, नाटक और आलोचना आदि का सृजन किया। कविता की दृष्टि से दोनों ही अति भावुक कवि हैं। कल्पना की गहरी उड़ान भरने में पंत जी प्रसाद से आगे दिखाई पड़ते हैं। पंत की प्राकृतिक सौन्दर्य भावना प्रसाद की अपेक्षा बलवती है। महाकाव्य की दृष्टि से 'कामायनी' पंत के 'लोकायतन' से अधिक सफल है। एक में आनन्दवाद की प्रतिष्ठा है तो दूसरे में लोक-जीवन की। एक में पुराण की कथा है जिसमें आधुनिक वैज्ञानिकता नहीं दूसरे में आधुनिक युग की वैज्ञानिकता है। एक साहित्यकारों तक ही सीमित है तो दूसरा साहित्यकारों एवं लोक जीवन दोनों में। लोक-जीवन की दृष्टि से पंत जी का महाकाव्य 'लोकायतन' अधिक सफल है।

नाट्य कला की दृष्टि से 'प्रसाद' की समता हिन्दी साहित्य जगत् में कोई नहीं कर सकता। 'पंत' तो इस दृष्टि से कोसों दूर हैं। उपन्यास एवं कहानी की दृष्टि से भी 'प्रसाद' 'पंत' को बहुत पीछे छोड़ देते हैं। प्रसाद का दर्शन शैव था। पंत का कोई विशेष दर्शन नहीं था। यों तो दोनों भारतीय संस्कृति के पुजारी रहे। प्रसाद में दर्शन का स्थायित्व रहा किन्तु पंत में नहीं। पंत के विचार समय की गति के साथ परिवर्तित होते रहे। इसीलिए पंत में प्रसाद की अपेक्षा वैज्ञानिक युग की प्रगतिशीलता एवं नव-मानववाद के दर्शन अधिक होते हैं। दोनों में गीति-तत्व भी मिलते हैं। प्रसाद के गीतों में स्थायित्व दर्शन के दर्शन होते हैं किन्तु पंत में नहीं। इसीलिए पंत के गीतों में कृत्रिमता सी लगती है और प्रसाद के गीतों में स्वाभाविकता। वर्णन-क्रम भाषा की दृष्टि से पंत जी कोश के कवि प्रतीत होते हैं किन्तु प्रसाद नहीं।

पंत और निराला :—एक का जन्म कूर्मांचल प्रदेश में हुआ तो दूसरे का बंग-प्रदेश के महिषादल अंचल में। दोनों का प्रकृति के प्रति अपार प्रेम है। दोनों का व्यक्तित्व महान् है। पंत सुकुमार भावों के कवि हैं तो निराला लोक-जीवन के। निराला विद्रोही हैं तो पंत शान्त दोनों ही छायावाद के प्रमुख कवि हैं।

रचना की दृष्टिकोण से पंत ने जहाँ, काव्य, महाकाव्य उपन्यास, कहानी, नाटक एवं आलोचना का सृजन किया वहाँ निराला ने काव्य, उपन्यास, कहानी आलोचना और रेखाचित्र आदि का। काव्य की पैनी दृष्टि जितनी निराला में थी उतनी पंत में नहीं। महाकाव्य को छोड़कर अन्य समस्त क्षेत्रों में निराला ने अपनी लेखिनी चलाई है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि 'निराला' में महाकाव्य लिखने की क्षमता ही नहीं थी। पंत ने महाकाव्य लिखा, जो लोक-जीवन के निकट है। निराला का तो सम्पूर्ण जीवन ही लोक–जीवन में रमा है। इसीलिए समस्त रचनाओं में लोक–जीवन के जीते-

जागते चित्र प्रतिबिम्बित होते हैं। उपन्यास, कहानी, आलोचना आदि में जो स्थान पंत का है वही निराला का।

जहाँ तक दर्शन का प्रश्न है वहाँ निराला अद्वैतवादी हैं किन्तु पंत में यह दर्शन कृत्रिम सा लगता है। रहस्यवाद की सच्ची कविताएँ निराला में दिखलाई पड़ती हैं किन्तु पंत में कृत्रिम सी। निराला में दर्शन की गहनता है पंत में किसी विशेष दर्शन की गहनता नहीं। निराला सिद्धान्तः अद्वैतवादी थे किन्तु पंत कोई विशेष सिद्धान्तवादी नहीं। छायावाद की सम्पूर्ण विशेषताएँ दोनों कवियों में हैं। अन्तर्जगत का चित्रण, वैयक्तिकता के प्रति आग्रह, गीतात्मक प्रकृति के प्रति नूतन दृष्टिकोण, वेदना, प्रेम और शृंगार का प्राचुर्य आदि। अन्तर्जगत का चित्रण जितना सूक्ष्म निराला कर सके हैं उतना पंत नहीं। निराला के काव्य में गीतात्मकता का वास्तविक,स्वरूप प्राप्त होता है किन्तु पत में कृत्रिम। कहीं–कहीं पंत में भी गीतात्मकता की स्वर लहरी का सफल चित्रण हुआ है। वेदना, प्रेम और शृंगार के वर्णन में निराला आगे हैं। पंत नारी–जीवन का वह रूप न देख सके जो निराला ने।

प्रगतिवादी कवियों में निराला सच्चे हैं पंत कृत्रिम। वस्तुतः 'प्रगतिवादी कविताओं का सृजन निराला ने पंत की अपेक्षा अधिक किया है। निराला का जीवन भी दलित रहा है, पंत का ऐसा नहीं। निराला ने सर्वहारा का अनुभव स्वयं अपने जीवन से किया था पंत ने नहीं। समसामयिक लहर का प्रभाव पंत पर अधिक पड़ा है किन्तु निराला पर कम। इसीलिए निराला प्रगतिवादी रचना करने में सक्षम रहे, इस क्षेत्र में जो सफलता निराला ने प्राप्त की वह पंत न प्राप्त कर सके।

रूढ़ियों एवं परम्पराओं का विरोध दोनों ने किया। नवीनता का सृजन भी यथार्थवाद से ग्रहण किया। निराला की इस प्रकार की काव्य-शैली में तीखा प्रहार है किन्तु पंत में नहीं। व्यंग्य काव्य लिखने में निराला पंत से बहुत आगे रहे हैं। यथा—

> अबे सुन बे गुलाब,
> भूल मत गर पाई खुशबू रंगो अब,
> खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
> डाल पर इतरा रहा है कैपिटेलिस्ट,
> कितनों को तूने बनाया है गुलाम,
> माली कर रखा, सहाया जाड़ा घाम।
> शाहों राजों अमीरों का रहा प्यारा,

इसलिए साधारणों से रहा प्यारा,
कांटों से ही भरा है,
यह सोच तू।
घड़ों पड़ता रहा पानी
तू हरामी खानदानी।

(कुकुरमुत्ता)

राष्ट्रीय कविता लिखने में दोनों ही कवि आगे रहे हैं। दोनों में काफी समता है। मानवता और विश्वबन्धुत्व का दृष्टिकोण निराला में वास्तविक है जो प्रगतिवाद पर आधारित है। किन्तु पंत का यह दृष्टिकोण अध्यात्मवाद पर आधारित है जिसमें खोखला आदर्शवाद समाहित है।

भाषा की दृष्टि से निराला पंत की अपेक्षा काफी सफल हैं। कहीं-कहीं पंतजी के शब्द भी निरर्थक से लगते हैं। शब्दों के प्रयोग से ऐसा लगता है कि पंतजी शब्द-कोष लेकर कविता करने बैठते हैं जिसके कारण शब्दों में प्राण नहीं दिखाई पड़ता। किन्तु निराला में प्राण-राग युक्त शब्द मिलते हैं, कहीं भी निरर्थकता नहीं दिखलाई पड़ती इसीलिए सारा काव्य प्राणवान्-सा लगता है। वस्तुतः पंत ने भाषा के सम्बन्ध में अपने हृदय के उद्‌गार प्रकट किए हैं—भाषा का और मुख्यतः कविता की भाषा का प्राण राग है। राग ही के पंखों की अबाध उन्मुक्त उड़ान में लयमान होकर कविता शान्त को अनन्त से मिलाती है। राग ध्वनिलोक निवासी शब्दों के हृदय में परस्पर स्नेह तथा ममता का सम्बन्ध स्थापित करता है। संसार के पृथक्-पृथक् पदार्थ पृथक्-पृथक ध्वनियों के चित्र मात्र हैं।........राग का अर्थ आकर्षण है, यह वह शक्ति है जिसके विद्युत् स्पर्श से खिचकर हम शब्दों की आत्मा तक पहुँचते हैं। हमारा हृदय उनके हृदय में पहुँचकर एक भाव हो जाता है। प्रत्येक शब्द एक संकेत मात्र, इस विश्व व्यापी संगीत की अस्फुट झंकार मात्र है। जिस प्रकार समस्त पदार्थ एक दूसरे पर अवलम्बित हैं ऋणानुबन्ध हैं उसी प्रकार शब्द भी। जिस प्रकार शब्द एक ओर व्याकरण के कटिन नियमों से बद्ध होते हैं, उसी तरह दूसरी ओर राग के आकाश में पक्षियों की तरह स्वतन्त्र भी होते हैं।

(पल्लव की भूमिका)

पंत के उद्‌गारों की प्रत्येक ध्वनि निराला के काव्यों में देखी जा सकती है किन्तु स्वयं पंत काव्यों में प्रत्येक ध्वनि नहीं। इसका कारण यह है कि निराला ने कालिदास, जयदेव, तुलसीदास एवं रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि की काव्य भाषा का अनु-गमन किया था। इसीलिए समास गुम्फित भाषा-शैली ने अपना प्रभाव जमा दिया।

पन्त और महादेवी—पंत, प्रसाद और निराला के समान ही महादेवी का भी नाम छायावादी कविता के क्षेत्र में लिया जाता है। दोनों कवियों के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण हैं। पंतजी महाकाव्य एवं काव्य दोनों के सृजन में तत्पर रहे किन्तु महादेवी केवल गीति काव्य में। पंत की रचनाएँ सौन्दर्यपरक हैं किन्तु महादेवी की रचनाएँ वेदनापरक। पन्तजी लोकजीवन के कवि हैं महादेवीजी साहित्यिक वर्ग तक ही सीमित हैं, लोक-जीवन का कवि होने के कारण कवि को समय के अनुसार बदलना पड़ा है किन्तु महादेवी एक ही आधार पर अडिग रही हैं।

पंत व महादेवी दोनों ने ही प्रकृति के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं। महादेवी में विरह-भावना अधिक है किन्तु पंत में नहीं। पन्तजी सौन्दर्य के प्रति महादेवी की अपेक्षा अधिक सजग दिखाई पड़ते हैं। महादेवी के प्रकृति-चित्रण में स्पष्टता के साथ दुरूहता विद्यमान है किन्तु पन्त में कहीं-कहीं ऐसा है। पन्त में आलम्बनात्मक प्रकृति चित्र अधिक मिलते हैं, महादेवी में इसका अभाव सा लगता है।

पंत की राष्ट्रवादी भावनाएँ महादेवी की अपेक्षा अधिक प्रबल हैं। महादेवी ने राष्ट्रीय भावनाओं को अपने काव्य में कम स्थान दिया है। रहस्यवादी भावना पंत की अपेक्षा महादेवी में अधिक है। महादेवी ने अद्वैतवाद, द्वैतवाद और द्वैताद्वैतवाद दार्शनिक सिद्धान्तों को अपने काव्य में स्थान दिया है। पंतजी इन दर्शनों को पूर्ण रूप से नहीं ग्रहण कर सके हैं। महादेवी ने अपनी आध्यात्मिक विचारधारा को दर्शन-शास्त्र के अनुकूल ही व्यक्त किया है पंतजी ऐसा नहीं कर सके हैं। पन्त में जहाँ कलात्मकता के दर्शन होते हैं वहाँ महादेवी में भावात्मकता के किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि महादेवी के काव्य में कलात्मकता का अभाव है।

पन्त व महादेवी दोनों ने अपनी रचनाओं में खड़ीबोली को आधार बनाया है! महादेवी की भाषा सरल सुकोमल तथा संस्कृत के तत्सम शब्दों से युक्त है किन्तु तद्भव शब्द भी यथास्थान प्रयुक्त हुए हैं। पंत की भाषा किलष्ट, दुरूह एवं कृत्रिम सी लगती है। कहीं-कहीं तो पन्त के शब्द निर्जीव से लगते हैं। कथन की दृष्टिकोण से दोनों के काव्यों में नवीनता है। महादेवी के काव्य में चित्र-शैली एवं प्रगीत-शैली के दर्शन होते हैं। किन्तु पन्त के काव्य में विविध शैलियों के दर्शन होते हैं। महादेवी के गीतों में संगीत के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्व निहित है पंत में संगीत की सूक्ष्मता नहीं। भारतीय दर्शन के प्रति दोनों में प्रेम दिखाई पड़ता है। पंतजी अन्य दर्शन से भी समसामायिक परिस्थिति के कारण प्रभावित हुए। पन्त के काव्य में सशक्त अभिव्यंजना है। प्रत्येक कवि का क्षेत्र भिन्न-भिन्न होता है। एक साँचे में नहीं ढाले जा सकते अतः दोनों के अपने-अपने क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है।

पन्त और गुप्त—पंत एवं गुप्त दोनों ही छायावादी कवि हैं। छायावादी प्रभाव के कारण पंत के काव्य में प्रकृति प्रेम गुप्त की अपेक्षा अधिक मिलता है। पंत की सौदर्न्य योजना गुप्त को पीछे छोड़ जाती है किन्तु गुप्त की राष्ट्रीय भावना पंत को पास फटकने नहीं देती। यद्यपि राष्ट्रीय भावना दोनों कवियों में है किन्तु राष्ट्रीय भावना के चित्रण में गुप्तजी की पैनी दृष्टि अधिक रमी दिखाई देती है। भावों का सुन्दर सन्तुलन पन्त के काव्य में अधिक है जहाँ गुप्त जी समता नहीं कर पाते।

दोनों कवियों की रचनाओं में विभिन्नता है। काव्यों में पौराणिक कथाओं का आधार गुप्तजी ने लिया है किन्तु पंतजी ने इन कथाओं से दूर रहकर अपनी पैनी दृष्टि से सुन्दर भावों की अभिव्यक्ति की है। सामाजिक संकीर्णता एवं कुरीतियों का भण्डा-फोड़ दोनों कवियों ने किया है। समय की गति के प्रवाह में दोनों कवियों की भावनाएँ बदलती रही हैं जो दोनों कवियों की प्रतिभाओं की विशेषता है। दोनों कवियों के महाकाव्यों में लोक जीवन मिलता है। गुप्तजी ने चिर-उपेक्षिता उर्मिला को नायिका के रूप में चित्रित किया है पंत ने ऐसा नहीं। गुप्त काव्य में शुद्ध विरह-वर्णन मिलता है पन्त काव्य में ऐसा नहीं है। ऋतु परिवर्तन के वर्णन में पन्त अधिक रमे हैं। गुप्त ने भी ऋतु परिवर्तन का चित्रण किया है किन्तु भावों की गहनता न होने के कारण पंत की समता नहीं कर सकते। बुद्धिवाद का प्रभाव दोनों कवियों में देखा जा सकता है। पन्त जी इस क्षेत्र में गुप्त से बहुत आगे हैं। मानववाद दोनों कवियों की रचनाओं में मिलता है। दोनों कवियों की रचनाओं में लक्ष्य तो एक ही है किन्तु मार्ग या साधन अलग-अलग बनाए गए हैं। गांधीवाद का प्रभाव दोनों कवियों में देखा जाता है। गांधी दर्शन के चित्रण में गुप्तजी अधिक रमे हैं, पन्तजी स्थूल दृष्टि से ही झाँक पाए हैं। मार्क्स दर्शन का प्रभाव पन्त पर ही है, गुप्तजी पर उसका प्रभाव तनिक भी नहीं है। नारी-विषयक दृष्टिकोण दोनों कवियों में समान रूप से ही दिखाई देता है। पंत की भाषा पर संस्कृत का बोझ है। गुप्तजी की भाषा अति सरल तथा सुन्दर है, किसी भाषा का भार उस पर नहीं दिखाई देता, जिसके कारण गुप्त की भाषा में स्वाभाविकता विद्यमान है और पन्त की भाषा बनावटी लगती है। किन्तु समग्र रूप में यह स्वीकार करना पड़ेगा कि निराला एवं प्रसाद को छोड़कर पन्त की समता छायावादी कवि नहीं कर सकते। यों तो दोनों ही महाकवि अपने-अपने क्षेत्रों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

--※--

अध्याय | ७

पंतकाव्य में रहस्यवाद

वास्तव में सृष्टि के प्रारम्भिक युग में मानव खुले आकाश के नीचे, नदियों के तट पर, वृक्षों की छाया में ही निवास करता था। उसे उस युग में जीवन के विषय में कोई जानकारी नहीं थी। इतना ही नहीं; वह जीवन में लाई जाने वाली वस्तुओं से भी परिचित नहीं था। शनैः-शनैः उपयोग में लाई जाने वाली वस्तुओं का उसे ज्ञान हुआ होगा। इस जानकारी के पश्चात्, प्रकृति की उत्पत्ति, परिवर्तन एवं विनष्टता को देखकर, उसने यह कल्पना की होगी; वह वास्तव में कौन सी शक्ति है, जो प्रकृति की सृष्टि करती है, परिवर्तन करती है एवं वह विनष्ट भी कर देती है। यहीं से रहस्यात्मक भावों ने जन्म लिया होगा। शनैः-शनैः जब उनके मानसिक स्तर का विकास हुआ होगा तब अपनी काल्पनिक शक्ति से यह अनुमान किया होगा कि वह अदृश्य एवं अव्यक्त सत्ता है। इन्हीं 'भावों' का जब सन्तुलन हुआ होगा तभी वेदों का निर्माण भी हुआ होगा। वैसे प्राचीन आचार्य तो वेदों को अपौरुषेय मानते हैं किन्तु यह सत्य नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रहस्यात्मक विचार सर्वप्रथम वेदों में ही संग्रहीत हुए। अतः रहस्यवाद का जन्म भी वेदों से ही मानना चाहिए। आज समस्त विद्वान् रहस्यवाद का जन्म वेदों से ही स्वीकार करते हैं। इसीलिए हम स्वीकार करते हैं कि इसकी प्राचीनतम धारा वेदों में ही सुरक्षित है। यही सुरक्षित विचार नाथों एवं सिद्धों के माध्यम से हिन्दी साहित्य जगत् में उदित हुए। किन्तु भाषा के विकास के साथ-साथ ये विचार भी विकसित होते रहे। धीरे-धीरे कबीर नानक के माध्यम से हिन्दी-साहित्य में पूर्ण रूप से फैल गए। भक्तिकालीन साहित्य में इसकी एक परम्परा ही चल पड़ी। संसार से मुक्ति हेतु, कविजन अपनी भावनाओं को ईश्वर को अव्यक्त मानकर समर्पित करते थे अर्थात् गुणगान गाते थे। वह अव्यक्त अलौकिक था, इसीलिए अलौकिक शक्ति के रूप में उसका वर्णन भी करते थे। ये कविजन किसी राजा या सामन्त के यहाँ आश्रित नहीं होते थे। जंगलों में या कुटियों में अथवा नदियों के तटपर अथवा मन्दिरों में इनका निवास होता था, वहीं भगवन्-भजन करते थे। यहीं रहस्यवाद का शुद्धतम रूप मिलता है। ये सदैव उसी अव्यक्त, अज्ञात सत्ता के चिन्तन-मनन में लगे रहते थे। संसार के प्रति इनका कोई मोह नहीं था, क्योंकि संसार को असार समझते थे। किन्तु यही भावना रीति काल

में शृङ्गार के रूप में बदल गई। रीतिकालीन कवि शृङ्गार के माध्यम से अपनी रहस्यात्मक भावना को व्यक्त करने लगे। वस्तुतः रहस्यवाद का वह रूप नहीं था जो उसके पूर्व था। क्योंकि ये कविजन राजाओं के यहाँ आश्रित होते थे, उन्ही की प्रशंसा में अपनी सारी शक्ति केन्द्रित किए हुए थे। उनके पास स्वतन्त्र चिन्तन का अवकाश ही नहीं था। अतः बिना स्वतन्त्र चिन्तन-मनन के वह रहस्यात्मक भाव गूँजता ही नहीं, इसीलिए रहस्यवाद का शुद्ध रूप नहीं मिलता। नायक-नायिका के प्रेम में ही उनकी रहस्यात्मक भावना समाहित थी। वस्तुतः रहस्यवाद का यह विकृत रूप था।

आधुनिक काल के रहस्यवाद पर प्रकाश डालने के पूर्व मैं कुछ साहित्यिक विद्वानों की 'रहस्यवाद सम्बन्धी' परिभाषाओं को व्यक्त करना चाहूँगा। अतः सर्वप्रथम आचार्य शुक्ल के विचारों को उन्हीं के शब्दों में प्रकट करता हूँ 'जो चिन्तन के क्षेत्र में अद्वैतवाद है वही भावना के क्षेत्र में रहस्यवाद है। जयशंकर प्रसाद ने रहस्यवाद की परिभाषा निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त की है—'काव्य में आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति की मुख्य धारा का नाम रहस्यवाद है।' डॉ० रामकुमार वर्मा ने कहा है—'रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहता है और वह सम्बन्ध-यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में अन्तर नहीं रह जाता।' महादेवी वर्मा का विचार है 'जब प्रकृति की अनेकरूपता परिवर्तनशील विभिन्नता में कवि ने एक ऐसा तादात्म्य खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर किसी असीम चेतन में और दूसरा उसके असीम हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक-एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा। परन्तु इस सम्बन्ध में मानव हृदय की सारी प्यास न बुझ सकी क्योंकि मानवीय सम्बन्धों में जब तक मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव नहीं दूर होता। इसी से इस अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया।' इसके सम्बन्ध में गुलाबराय का विचार है कि 'प्रकृति में मानवीय भावों का आरोप कर जड़ चेतन के एकीकरण की प्रवृत्ति छायावाद की एक विशेषता है और उसके मूर्त की अमूर्त से तुलना करने वाले अलंकार विधान में, 'बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल,' लहरों के लिए 'इच्छाओं की असमान' तथा मानवीकरण प्रधान लाक्षणिक प्रयोगों में परिलक्षित होती है। जब यह प्रवृत्ति कुछ अधिक वास्तविकता धारण कर अनुभूतिमय निजी सम्बन्ध की ओर अग्रसर होती है तभी छायावाद रहस्यवाद में परिणत हो जाता है।'

उपर्युक्त परिभाषाओं की कथन-शैली में विभिन्नता दिखलाई पड़ती है किन्तु लक्ष्य समस्त परिभाषाओं का एक ही है और वह है 'अज्ञात शक्ति'। किन्तु परिभाषाओं

की कथन शैली की भिन्नता के आधार 'अज्ञात शक्ति' के विभिन्न रूपों या वर्णनों का ज्ञान अवश्य ही स्पष्ट हो जाता है। आलोचकों ने इसके चार रूप माने हैं—प्रेम सौन्दर्य, दार्शनिक, धर्म और उपासना और प्रकृति सम्बन्धी। पंत जी का रहस्यवाद किसके अन्तर्गत है, इस पर विचार करने के पहले डॉ० नामवर सिंह के मतों को व्यक्त कर देना चाहूँगा, क्योंकि उनके कथन से आधुनिक रहस्यवाद के जन्म एवं विकास पर स्पष्ट प्रकाश पड़ जाता है। रहस्यवाद भावना प्राचीन है लेकिन 'रहस्यवाद' शब्द सर्वथा आधुनिक विचारधारा है। हिन्दी साहित्य में 'रहस्यवाद' शब्द का प्रयोग १९२० ई० से पहले नहीं दिखाई पड़ता है। जब मुकुटधर पाण्डे, सुमित्रानन्दन पंत, जयशङ्कर प्रसाद की नवीनतम कविताएँ प्रकाश में आईं तो उनकी आलोचना-प्रत्यालोचना के सिलसिले में 'रहस्यवाद' शब्द का प्रयोग किया गया। रवीन्द्र की अंग्रेजी गीतांजलि को देशी-विदेशी आलोचकों ने मिस्टिक कहा था, इसलिए हिन्दी में उस तरह की कविताओं को 'मिस्टिक' और उसमें निहित भाव धारा को 'मिस्टसज्म' समझकर उनके लिए हिन्दी शब्द रहस्यवाद चलाया गया। इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि पंत आधुनिक युग के प्रमुख रहस्यवादी कवियों में से एक हैं। आधुनिक युग के लगभग सभी कवियों ने अपनी रहस्यात्मक भावना को प्रकृति प्रेम के माध्यम से ही व्यक्त किया है। पंत जी भी इन्हीं में से आते हैं। पंत जी जीवन के कवि हैं। शेली, कीट्स, वर्ड्स्वर्थ आदि पाश्चात्य महान् कवियों का प्रभाव पंत जी पर पड़ा था, जिसके कारण प्रकृति प्रेम में स्थूलता न होकर सूक्ष्मता विद्यमान है। यही कारण है कि पंत जी आधुनिक छायावादी कवियों में प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से प्रमुख हैं। इस समय का रहस्यवाद भी साधक का नहीं था और न किसी प्रकार की साधना-पद्धति के माध्यम से कवि ने प्राप्त किया। प्रकृति के मध्य कवि का जन्म ही हुआ था और साथ ही साथ प्रकृति के बीच उसने स्वतन्त्र रूप से गुनगुनाना भी सीखा था। इसीलिए प्रकृति से कवि का आन्तरिक संबंध जुड़ गया और कवि की दार्शनिक भावना प्रकृति के सुन्दरतम रूप में ही निकल पड़ी। 'वीणा' जो कवि की प्रथम कृति है, इसकी 'प्रथम रश्मि' कविता में प्रकृति सौन्दर्य की दार्शनिक विचारधारा देखी जा सकती है—

प्रथम रश्मि का आना, रंगिणि!
तूने कैसे पहचाना
कहाँ, कहाँ हे बाल विहंगिनि!
पाया यह स्वर्गिक गाना?

× × ×

कूक उठी सहसा तरुवासिनि।
गा तू स्वागत का गाना,

किसने तुझको अंतर्यामिनि !
बतलाया उसका आना ?

(तारापथ—एक)

उक्त पंक्तियों में कवि आश्चर्य प्रकट करता है प्रथम रश्मि के आगमन का ज्ञान तुझे कैसे हो गया और तूने स्वर्गिक गाना कहाँ पाया ? पुनः उसे अन्तर्यामिनी बतलाता है, इसमें कवि की रहस्यात्मकता फूट पड़ी है । अन्तर्यामिनी शब्द से उसे आन्तरिक बातों को जानने वाला बतलाता है, अतः ये बातें रहस्यवाद को चरितार्थ करती हैं । इसी प्रकार से जिज्ञासा की भावना सर्वत्र मिलती है कहीं 'माँ' और कहीं 'प्रियतम का रूप दिखलाई पड़ता है । 'उच्छ्वास' कविता में कवि की आन्तरिक वेदना देखी जा सकती है । क्योंकि कवि के मार्मिक जीवन को रहस्यमय घटना प्रेम पूर्ण उच्छ्वास हैं जिन्होंने उसे वाणी दी है । इसी वाणी से मधुर गीतों की झंकार भी सुनाई देती है, जहाँ कोमल भावनाओं का पराग भी प्राप्त हो जाता है । यथा—

उसके उस सरलपने से
मैंने था हृदय सजाया,
नित मधुर मधुर गीतों से
उसका उर था उकसाया !

कह उसे कल्पनाओं की
कल कल्प लता, अपनाया
बहु नवल भावनाओं का
उसमे पराग था पाया !

मैं मन्द हास सा उसके
मृदु अधरों पर मँडराया;
औ उसकी सुखद सुरभि से
प्रतिदिन समीप खिंच आया !

(तारापथ—तीन)

'पल्लव' की मोह कविता में उसे वृक्षों की कोमल छाया दिखलाई पड़ी । जहाँ बाल-जाल में लोचन उलझाने की चर्चा करता है, किन्तु 'कैसे' प्रश्न सूचक शब्द से रहस्यात्मकता भी प्रकट करता है । यथा—

छोड द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले ! तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?

(तारापथ—चार)

'पल्लव' की मौन निमंत्रण कविता में तो उसे न जाने 'कौन' स्वप्न की छाया में विचरण करवाता है। यहीं सुख-दुख के मौन सहचर के रूप में देखता है किन्तु यह नहीं जान पाता कि वह वास्तव में कौन है ? यही रहस्यात्मक कवि की स्थिति है

बिछा कार्यों का गुरुतर भार
दिवस को दे सुवर्ण अवसान,
शून्य शय्या में, श्रमित अपार,
जुड़ाती जब मैं आकुल प्राण;
न जाने मुझे स्वप्न में कौन
फिराता छाया जग मे मौन !
न जाने कौन, अये द्युतिमान।
जान मुझको अबोध अज्ञान,
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूँक देते छिद्रों में गान;
अहे सुख दुख के सहचर मौन !
नहीं कह सकती तुम हो कौन !

(तारापथ—पाँच)

'छाया' कविता में कवि 'सजनि' के रूप में सम्बोधन करता है। उसके अभिनय को रहस्यमय संसार को विचित्र रूप में देखता है। यथा—

किस रहस्यमय अभिनय की तुम
सजनि ! यवनिका हो सुकुमार,
इस अभेद्य पट के भीतर है
किस विचित्रता का संसार ?
निर्जनता के मानस पट पर
—बार बार भर ठंडी साँस—
क्या तुम छिप कर क्रूर काल का
लिखती हो अकरुण इतिहास ?

(तारापथ—छः)

इतना ही नहीं इसी कविता के अन्त में 'सखि' के रूप में सम्बोधन करके स्वच्छन्द रूप से मिलने की बात करता है और अन्त में शीघ्र ही अन्तर्धान हो जाने का कामना अर्थात् पूर्ण रूप से मिलन। यथा—

—हाँ सखि आओ बाँह खोल हम
लग कर गले, जुड़ा ले प्राण,

फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में
हो जावें द्रुत अंतर्धान !

(तारापथ—छ:)

कहीं कहीं कवि की आत्मा व्याकुल भी हो उठी है। यथा—

माँ वह दिन कब आयेगा जब
मैं तेरी छबि देखूँगी ?

यहाँ कवि माँ की छवि को सृष्टि के दर्पण में देखता है जिसके कारण वह आत्मा स्वयं आकुल होकर बोल उठी है। मां प्रकृति का रूप है अतः कवि एकाकार हो जाने का चित्रण करता है।

कहीं-कहीं कवि प्रकृति के सुन्दर चित्रों के साथ प्रकृति का विकराल रूप भी प्रदर्शित करता है। वस्तुतः कवि ने प्रकृति को स्थूल से स्थूलतम, सूक्ष्म से सूक्ष्मतम रूप में देखने का सफल प्रयास किया है क्योंकि कवि जन्म से ही वह प्रकृतिवादी रहा है। स्वयं पन्त ने कहा भी है—प्राकृतिक चित्रणों में प्रायः मैंने अपनी भावनाओं का सौन्दर्य मिलाकर उन्हें ऐन्द्रिक चित्रण बनाया है, कभी-कभी भावनाओं को ही प्राकृतिक सौन्दर्य का लिबास पहना दिया है। जैसा पन्तजी ने कहा है ठीक वैसा ही वर्णन भी किया है। मुझे पन्तकाव्य में जहाँ जहाँ प्रकृति के सूक्ष्म चित्र मिले हैं वहाँ मुझे ऐसा लगा है कि कवि प्रकृति के सौन्दर्य की रहस्यमयता में ही सच्चिदानन्द का रूप पा गया है। सदा प्रकृति के बीच आनन्दमुक्त ही दिखाई पड़ता है। इतना अवश्य है कि जब दर्द का अनुभव होता है तब प्रकृति में मानव के आनन्द का अभाव देखता है। कदाचिद् इसी-लिए ऐसे चित्र भी उपस्थित हो गये हैं। परिवर्तन नामक कविता में प्रकृति के विशाल परिवर्तन को देखकर उसी में भ्रम में मिथ्या अहंकार, निराकार, साकार, मृत्यु और जीवन का एक रूप भी देखता है। यथा—

तुम्हारा ही, अशेष व्यापार,
हमारा भ्रम मिथ्याहंकार
तुम्हीं में निराकार साकार,
मृत्यु जीवन सब एकाकार !

(तारापथ—नौ)

नौका-विहार कविता में तो कवि पूर्ण रूप से अद्वैतवादी साधक की भाँति हो गया है वहाँ शत-शत विचारों का प्रकाश पाता है, संसार के क्रम-जीवन के उद्गम, गति और संगम को धारा के समान ही शाश्वत स्वीकार करता है। जीवन को नौका-विहार को जीवन का क्रम भी स्वीकार करता है। यथा—

ज्यों-ज्यों लगती है नाव पार
उर में आलोकित शत विचार !
इस धारा सा ही जग का क्रम शाश्वत इस जीवन का उद्गम
शाश्वत है गति शाश्वत संगम ।
शाश्वत नभ का नीला विकास शाश्वत शशि का यह रजत हास,
शाश्वत लघु लहरों का विकास !
हे जग-जीवन के कर्णधार ! चिर जन्म-मरण के आर-पार
शाश्वत जीवन-नौका-विहार !
मैं भूल गया अस्तित्व-ज्ञान-जीवन को यह शाश्वत प्रमाण
करता मुझको अमरत्व-दान !

(तारापथ—सोलह)

इसके अतिरिक्त 'तारापथ' की निम्नलिखित कविताओं में पन्त का रहस्य-वादी रूप देखा जा सकता है—आठ, नौ, ग्यारह, बारह, बीस, अड़तीस, इकतालीस, चौआलीस, पैंतालीस, पचास, और इक्यावन किन्तु इतना सब होते हुए भी पन्त को शुद्ध रहस्यवादी कवि नहीं माना जा सकता है। क्योंकि उक्त समस्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो गया कि प्रतीक पद्धति में प्रेम, मिलन, प्रतीक्षा आदि है। साधक की न वह पिपासा है और न अर्त्तनाद। इसके प्रकृति-चित्रण में भी वैज्ञानिकता है।

वैज्ञानिकता के कारण ही शुद्ध रहस्यवाद का रूप नहीं आ सका है। वैसे भी व्यवहार पक्ष से भी रहस्यवादी नहीं हैं। तमाम जीवन के उतार-चढ़ाव में समसामयिक परिस्थिति के कारण परिवर्तित होते रहे हैं। किसी दर्शन का स्थायित्व इनके विचारों में नहीं है। विश्वम्भर 'मानव' के शब्दों में हम कह सकते हैं—पन्तकाव्य रहस्य भावना के विकास की नहीं ह्रास की कहानी है। प्रारम्भ में उनकी सुकुमार वृत्ति जिस सौन्दर्य प्रेम के कारण अनन्त सत्ता का चिन्तन करने में लीन रही, बाद में वही काव्य विषयों की ओर मुड़ी।···वीणा में परमात्मा का ग्रन्थि में लौकिक रूप का पल्लव में प्रकृति का प्रेमी कवि रहा है। युगान्त में यही कवि मानवता का प्रेमी बन जाता है। युगवाणी और ग्राम्या में समाजवाद के आधार पर मानवतावाद की प्रतिष्ठा कवि ने की है। इस प्रकार ब्रह्म से प्रकृति, प्रकृति से नारी, नारी से लोकहित तक कवि आया है अर्थात् लौकिकता से उसका उतार बराबर लौकिकता की ओर हुआ है। अब एक प्रकार नवचेतनवाद को कवि ने फिर अपनाया है। उसकी स्थापना है कि सुख के भौतिक साधनों को एकत्र करने के साथ ही मनुष्य को वैसी आत्मिक उन्नति की ओर भी ध्यान देना चाहिए। बाहर-भीतर का विकास एक-सा होना चाहिए। इस चेतना-वाद का रहस्यवाद से अभी कवि कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाया। वास्तव में विश्वम्भर मानव के कथन में विभिन्न परिवर्तित विचारों का रूप है जो पन्त के समूचे जीवन पर प्रकाश डालता है और इसी से पन्त के दार्शनिक विचारों पर भी प्रकाश पड़ जाता है। पन्त का स्पष्ट रहस्यवाद नहीं है। आधुनिक प्रमुख कवियों की तुलना में पन्त का रहस्यवाद ढीला यानी शिथिल लगता है।

अध्याय ८

पन्त का जीवन-दर्शन

पन्तजी आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवियों में से हैं। वीणा में कवि ने प्रकृति की सुन्दरता का दर्शन किया। पल्लव में कलात्मकता उभरी थी, जहाँ उसे शिव तत्व मिला। गुञ्जन से लोक दर्शन की छाया मिली, यहीं से वास्तव में लोक-चिन्तन में तत्पर हुआ।

छायावादी युग के आन्दोलन को प्रारम्भ से ही देखा था। इधर भारत भूमि पर स्वातंत्र्य आन्दोलन तीव्र गति से चल रहा था। कवि ने भी स्वातंत्र्य आन्दोलन में भाग लिया। देश की सुखी-दुःखी जनता के रूप को देखने का उसे मौका मिला था। कवि-हृदय दुःख की वेदना से पिघल उठा। प्रकृति के सौन्दर्य के साथ मानव-जीवन की उसे चिन्ता हुई। यथा—

जग पीड़ित है अति दुख से,
जग पीड़ित रे अति सुख से,
मानव जग में बँट जाए,
दुख सुख से औ' सुख दुख से !
अविरत दुख है उत्पीड़न,
अविरत सुख भी उत्पीड़न,
दुख-सुख की निशा-दिवा में,
सोता-जागता जग-जीवन ।
यह साँझ-ऊषा का आगन
आलिगन विरह-मिलन का,
चिर हास-अश्रु मय आनन
रे इस मानव-जीवन का ।

(तारापथ—ग्यारह)

कवि का समन्वयवाद भी यहीं दिखलाई पड़ता है। कवि संसार में सुख-दुख को समान रूप से बाँट देने को बात कहता है। यहाँ समन्वय दर्शन को ओर झुकता

है। वस्तुतः यही दर्शन अन्त तक उसके जीवन क्रम में बराबर रूप से प्रवेश पाता रहा है यही कारण है मानव-जीवन के अन्तर्हृदय का स्पर्श करके कुछ समय तक उसी में लगा रहा। धीरे-धीरे समय की गति के साथ-साथ विभिन्न परिस्थितियों में, विभिन्न रूपों में बदलता हुआ दिखलाई पड़ा।

यही कारण है कि कहीं अध्यात्म की झलक मिलती है तो कहीं चेतनवाद की। स्वर्ण धूलि और 'उत्तरा' आदि रचनाओं में तो अध्यात्मवाद की प्राप्ति ज्ञान-विज्ञान से करना चाहता है। किन्तु देश की परिस्थितियों ने उसके जीवन-दर्शन को मोड़ा था। अतः कभी गांधीवाद की ओर मुड़ा तो कभी मार्क्सवाद की ओर। कुछ आलोचक यह मानते हैं कि पन्तजी मार्क्सवाद से प्रभावित थे, कुछ आलोचक गांधीवाद और मार्क्सवाद दोनों से प्रभावित बतलाते हैं किन्तु दोनों मतों में सत्यता नहीं जान पड़ती, क्योंकि किसी विशेष दर्शन में इनकी रुचि स्थिर न रह सकी। मुझे ऐसा लगता है कि समय गति के क्रम ने इन्हें विवश किया जिस विवशता के कारण उसी समय चक्र के अनुसार इन्हें कविताएँ करनी पड़ीं। न तो इनके जीवन में अद्वैतवाद न द्वैताद्वैतवाद मिलता है। हाँ गांधीजी मार्क्स अरविन्द दर्शन की झलक मात्र अवश्य मिल जाती है। कवि के व्यावहारिक जीवन से भी यही लगता है कि किसी दर्शन विशेष में उसका लगाव नहीं है। कवि नौका विहार कविता में कहता है—

ज्यों ज्यों लगती हैं नाव पार
उर में अलोकित शत विचार !
इस धारा सा ही जग का क्रम शाश्वत इस जीवन का उद्गम
शाश्वत है गति शाश्वत संगम !
शाश्वत नभ का नीला विकास शाश्वत शशि का यह रजत हास
शाश्वत लघु लहरों का विकास !
हे जग जीवन के कर्णधार ! चिर जन्म-मरण के आर-पार
शाश्वत जीवन नौका विहार!
मैं भूल गया अस्तित्व-ज्ञान जीवन का यह शाश्वत प्रमाण
करता मुझको अमरत्व दान !

(तारापथ—सोलह)

कवि ने यहाँ बतलाया है कि जीवन रूपी नौका ज्यों-ज्यों पार लगती है त्यों-त्यों हृदय में शत विचार प्रकाशित होते हैं।

कवि जीवन के उद्गम सघर्ष एवं संगम को शाश्वत मानता है। अन्त में अमरत्व दान प्राप्त होने की चर्चा करता है। वस्तुतः उसके इन कथनों में ईश्वरीय सत्ता के ज्ञान का आभास अवश्य होता है, किन्तु स्थिरता नहीं। मध्यकाल के कवियों की

भाँति न कोई वेदना और न कोई पिपासा ही कवि में दीख पड़ती है। केवल उसे सहज भाव में अमरत्व दान प्राप्त हो जाता है। यही उल्लेख करता है इसलिए विचारों में गहनता नहीं। इन विचारों में मध्यकाल के दर्शन की लहर मात्र अवश्य देखा जा सकता है यही कारण है कि ऐसी भावनाएँ आधुनिक काल के प्रत्येक कवियों में देखी जा सकती हैं

कवि जन्म से ही प्रकृतिप्रेमी रहा है। प्रकृति की सुन्दरता में ही उसने प्रत्येक रहस्यमय दर्शन को देखने का प्रयास किया। वस्तुतः प्रकृतिवादी कवियों की देन थी। कहीं प्रकृति को स्त्री रूप में, कहीं मां, कहीं सहचरि और कहीं देवि रूप में देखा। प्रत्येक स्थान में कमनीयता माधुर्यता अवश्य प्रतिबिम्बित होती हैं। लेकिन शुद्ध अध्यात्म दर्शन नहीं। प्रकृति में रहस्यमय भावनाएँ अवश्य है। इन्हीं रहस्यमय रूपों में ही कवि का जीवन चलता हुआ दिखलाई पड़ता है। प्रकृति के सुख-दुख में मानव के सुख दुख की भाँति ही सम्मिलित भी हो जाता है। कला और बूढ़ा चाँद में गुलाब की अक्षय शोभा को देखता ही रह जाता है—

मैं अवाक् रह गया !
वह सजीव प्रेम था !
मैंने सूँघा,
वह उन्मुक्त प्रेम था !
मेरा हृदय
असीम माधुर्य से भर गया
मैंने
गुलाब को
ओठों से लगाया
उसका सौकुमार्य
शुभ्र अशरीरी प्रेम था !
मैं गुलाब की
अक्षय शोभा को
निहारता रह गया ! (तारापथ—इक्तालीस)

× × ×

दुखमय, भंगुर जग जीवन,
प्रिय सृष्टि अविद्या आश्रित
परलोक शून्य कामी मन
जन भू से हुआ प्रवासित ! (लोकायतन तारापथ—चौवालीस)

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि कवि का जीवन विकास की ओर बढ़ता गया है। किसी विशेष दर्शन की ओर उसका स्थायी रूप में झुकाव नहीं है। कल्पना की उन्मुक्त उड़ान में विभिन्न दार्शनिक विचारों की लहरें मात्र ग्रहण करता रहा है। किसी दर्शन का सूक्ष्मतम रूप पकड़ने का प्रयास कवि ने नहीं किया। केवल मानव जीवन के सुख-दुख, प्रकृति के परिवर्तन आदि का रूप कवि के काव्य में दर्शन के रूप में समाहित है।

अध्याय | ६

पंतकाव्य में सौन्दर्य-चेतना

यह सत्य है कि पंत जी प्रकृति-सौन्दर्य-प्रेमी कवि हैं। उनकी समस्त रचनाओं में 'सत्यं-शिवम्' का दर्शन किया जा सकता है। यह कवि की धारणा भी है कि जो सुन्दर है वह शिव अवश्य होगा और जो शिव होगा वह सत्य अवश्य होगा। कवि ने कहा है--

'वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप, हृदय में बनता प्रणय अपार,
लोचनों में लावण्य अनूप, लोक सेवा में शिव अविकार।'

आलोचकों ने कवि की सौन्दर्य-भावना को प्राकृतिक एवं कायिक दो रूपों में देखने का प्रयास किया है।

पंतजी प्रकृति सौन्दर्य के सफल गीतकार हैं। इसका कारण यह है कि पंतजी ने प्रारम्भ से ही प्रकृति के बीच रहना सीखा था, प्रकृति के सौन्दर्य में मग्न होकर अठ-खेलियाँ खेलते रहे। शनैः-शनैः प्रकृति के हृदय में पैठकर प्रकृति के रूप में गुनगुनाने लगे। स्थूल से स्थूलतम और सूक्ष्म से सूक्ष्मतम रूप में प्रकृति का सच्चा निरीक्षण भी किया। कवि ने स्वयं लिखा है—कविता करने की प्रेरणा मुझे सर्वप्रथम प्रकृति निरी-क्षण से मिली है जिसका श्रेय मेरी जन्म-भूमि कूर्माचल प्रदेश को है। कवि जीवन से पहले भी मुझे याद है, मैं घण्टों एकान्त में बैठा प्राकृत दृश्यों को एक टक देखा करता था और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था। जब कभी मैं आंख मूंद कर लेटता था तो वह दृश्य चुपचाप मेरी आँखों के सामने घूमता था। वीणा के चित्रण प्रकृति के प्रति मेरे अगाध मोह के साक्षी हैं। प्रकृति निरीक्षण में मुझे अपनी भावनाओं की अभिव्यंजना में अधिक सहायता मिली है। प्राकृतिक चित्रों में प्रायः मैंने अपनी भावनाओं को ही कभी-कभी प्राकृतिक सौन्दर्य का लिवास पहना दिया है।' इसका तात्पर्य यह हुआ कि पंतजी प्रकृतिप्रेमी हैं। अधिकांशतः प्रकृति को कोमल रूप में ही देखा है। आरम्भ से लेकर अंत तक की रचनाओं में प्राकृतिक-सौन्दर्य दिखलाई पड़ता है। 'वीणा' की 'प्रथम रश्मि' कविता में ही प्रकृति सौन्दर्य की सफल और कोमल भावना फूट पड़ी थी। यथा--

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि !
तूने कैसे पहचाना ?
कहाँ, कहाँ हे बाल विहँगिनि !
पाया तूने यह गाना ?
सोई थी तू स्वप्न नीड़ में
पंखों के सुख में छिपकर,
ऊँघ रहे थे, घूम द्वार पर
प्रहरी से जुगनू नाना;

× × ×

छिपा रही थी मुख शशि बाला
निशि के श्रम से हो श्रीहीन,
कमल क्रोड में बन्दी था अलि,
कोक शोक से दीवाना

× × +

(तारापथ—एक)

गाते उर में क्षिप्र स्रोत,
लहारते सर तुषार के निर्मल,
सौरभ की गुंजित अलकों से
छू समीर, उर करता शीतल !
नीली पीली हरी लाल
चपलाओं का नभ जगता चंचल,
रजत कुहासे में, क्षण में,
माया प्रांतर हो जाता ओझल।

(स्वर्ण किरण–तारापथ–तैंतीस)

प्रथम उदाहरण में कवि 'बाल विहंगिनि' कहकर सम्बोधित करता, जिसमें सौन्दर्य का भाव छलक पड़ा है किन्तु रहस्यात्मक कोमल भावना भी साथ ही साथ समाहित है। मानवीकरण के रूप में प्रकृति का चित्रण करके कवि ने अपनी सुकुमार भावना का परिचय दिया है। इसी प्रकार से द्वितीय उदाहरण में भी कोमल सौन्दर्य भावना रहस्यात्मकता के साथ 'मुख शशि बाला' और 'कोक शोक से दीवाना' में समहै। तृतीय उदाहरण 'तारापथ' की 'हिमाद्रि' कविता का है। समस्त पद में सुकुमार भावना है। विशेष रूप से 'सौरभ की गुंजित अलकों से 'पंक्ति में' कवि की प्रकृति सौन्दर्य भावना कोमलता के साथ प्रकट हो गई है। 'स्वर्ण धूलि' की 'कुंठित' कविता में भी कवि की कोमल भावना देखी जा सकती है—

जन समाज का वारिधि विस्तृत
लगता अचिर फेन से मुखरित,
हँसी खेल के लिए तरंगें
तुम्हें न यदि करती आमंत्रित,
आओ प्रभु के द्वार !
मेघों के संग इन्द्रचाप-स्मित
यदि न कल्पना होती धावित,
शरद वसंत नहीं हरते मन
शशि मुख दीपित, स्वर्ण मंजरित
आओ प्रभु के द्वार !

(तारापथ—चौंतीस)

× × ×

झम झम झम झम मेघ बरसते रे सावन के,
छम छम छम गिरतीं बूँदे तरुओं से छन के !
चम चम बिजली चमक रही छिप उर में घन के,
थम थम दिन के तम में सपने जगते मन के !

× × ×

दादुर टर टर करते, झिल्ली बजतीं झन झन,
म्याँउ म्याँउ रे मोर, पीउ पीउ चातक के गण !
उड़ते सोन बलाक आर्द्र सुख से कर क्रन्दन,
उमड़ घुमड़ घिर मेघ गगन में भरते गर्जन !

(तारापथ—पैंतीस)

झम झम झम झम मेघ के बरसने में' 'छम छम छम बूँदों के गिरने में', चम चम बिजली के चमकने में', 'थम थम दिन में' दादुर के टर टर में, झिल्ली के झन झन में, मोर के म्याँउ-म्याँउ में, चातक के पीउ पीउ में और बादलों के उमड़-घुमड़ में जो ध्वनियाँ हैं वही कवि की कलात्मकता प्रकृति दृश्य की सुन्दरता का परिचायक है। इनके प्रत्येक शब्दों में कोमल चमत्कार व्याप्त है। कोमल शब्दों के चयन में कवि कुशल है। प्रत्येक शब्द से जो ध्वनियाँ फूटती हैं वही कवि की प्रकृति प्रेम कोमल भावना आदि को व्यक्त करने में सक्षम हैं। ऐसे चित्रण कवि की रचनाओं जैसे—स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि और उत्तरा में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त, कुछ चित्र प्रगतिवादी कविताओं में भी देखे जा सकते हैं।

पंतकाव्य में गीतितत्व 'नामक शीर्षक में' मैं व्यक्त कर चुका हूँ कि महाकवि पंत की सौन्दर्यवादी प्रवृत्ति, केवल प्रकृति सौन्दर्य तक ही सीमित नहीं है। कायिक सौन्दर्य की ओर भी कवि की सूक्ष्म दृष्टि गई है, जहाँ सुकुमारता एवं कोमलता के दर्शन होते हैं। 'तारापथ' की 'उच्छ्वास' कविता में बालिका का सरलपन लिया जा सकता है, जहाँ कोमल एवं सहज भावना स्वाभाविक गति से प्रवाहित हुई है। यथा—

सरलपन ही था उसका मन
निरालापन था आभूषण,
कान से मिले अजान नयन
सहज था सजा सजीला तन !
सुरीले, ढीले अधरों बीच
अधूरा उसका लचका गान
विकच बचपन को, मन को खींच
उचित बन जाता था उपमान !

(तारापथ-तीन)

× × ×

रँगीले, गीले फूलों-से
अधखिले भावों से प्रमुदित
बाल्य सरिता के फूलों से
खेलती थी तरंग सी नित !
—इसी में था असीम अवसित।

× × ×

उसके उस सरलपने से
मैंने था हृदय सजाया
नित मधुर-मधुर गीतों से
उसका उर था उकसाया !

कह उसे कल्पनाओं की
कल कल्प लता, अपनाया
बहु नवल भावनाओं का
उसमें पराग था पाया !

(तारापथ-तीन)

इसके अतिरिक्त 'आँसू की बालिका' में, कवि वीणा की झंकार के सदृश, उस बालिका का कोमल और मोहक रूप देखता है। जहाँ उसने यह व्यक्त किया है कि उसने अपने सौन्दर्य, कोमलता एवं अलौकिक आकर्षण से उसे आकृष्ट कर लिया है। वस्तुतः कवि ने उस बालिका के सौन्दर्यमय रूप को सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्टि से देखने का सफल प्रयास किया है। श्री यशदेव ने ठीक ही कहा है—'वीणा का मृदु झंकार अनुभूतिगत सौन्दर्य का कैसा सुन्दर रूपक खींचती है और दर्पण की प्रतिबिम्बन में असमर्थता ने उसकी असीमता और अलौकिकता को और भी सप्राणता दे दी है। एक उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है——

उषा का था उर में आवास
मुकुर का मुख में मृदुल विकास,
चाँदनी का स्वभाव में भास
विचारों में बच्चों के सांस।

महाकवि पंत प्राकृतिक तथा मानसिक चित्रों के साथ-साथ कहीं-कहीं शब्द-चयन के क्षेत्र में भी कुशल दिखलाई पड़ते हैं। यह तो सत्य है कि निराला के समान कुशल भावों एवं शब्दों के चित्रकार नहीं हैं किन्तु अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा अधिक कुशल चित्रकार कहे जा सकते हैं। कहीं-कहीं महाप्राण निराला भी पंत की कविता की कोमल-भावना एवं सौन्दर्ययुक्त शब्दों को देखकर काफी प्रभावित हुए थे और उसके प्रति सचेतनता के साथ कहा था 'पंत काव्य में स्त्रीत्व चिन्ह अधिक मिलते हैं।' श्री ओमप्रकाश सिंहल ने उदाहरण देते हुए कहा है कि उन्होंने श्याम के स्थान पर श्यामल, स्वर्ण के स्थान पर स्वर्णिम का प्रयोग किया है। इसी प्रकार उनके काव्य में रुपहले, सुनहले आदि शब्दों का प्रयोग अधिक उपलब्ध होता है। स्वप्निल, वाकुल, फेनिल आदि ऐसे ही शब्द हैं जो पंतजी की काव्य-अटारी पर ही देखने को मिलते हैं।' यों तो सत्य भी है कि पंत काव्य में कहीं-कहीं ऐसी कोमल एवं सौन्दर्यभाव-युक्त शब्दावली का प्रयोग मिलता है जहाँ निराला भी मात खा जाते हैं किन्तु समग्र काव्य की दृष्टि से पंत बहुत पीछे हो जाते हैं। यों तो भाषा के विषय में 'पल्लव' की भूमिका में स्वयं पंत ने अपने विचार व्यक्त किये हैं—'जिस प्रकार बड़ी चुवाने से पहले उड़द की पीठी को मथकर हल्का तथा कोमल कर लेना पड़ता है उसी प्रकार कविता के स्वरूप को भावों के ढाँचे में ढालने से पूर्व भाषा को भी हृदय के ताव में गलाकर कोमल, करुण, प्रांजल कर देना पड़ता है।' यह कथन भाषा की दृष्टिकोण से अपने-आप में सत्य है किन्तु सर्वत्र पंतजी इस कथन का पालन नहीं कर सके हैं। कहीं-कहीं भाषा की कोमल पदावली अवश्य भावों की गहनता के साथ दीख पड़ती है। कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं——

खेतों मे फैला है श्यामल
धूल भरा मैला-सा आँचल
गंगा-जमुना में आँसू-जल
मिट्टी की प्रतिमा उदासिनी !
भारत माता ग्रामवासिनी ! (तारापथ–तीस)

× × × ×

गा, कोकिल, गा मत कर चिन्तन—
पावक पग धर आये नूतन
हो पल्लवित नवल मानवपन–
गा, कोकिल मुकुलित हों दिशि क्षण– ।'

समसामयिक परिस्थिति के कारण, 'परिवर्तन' नामक कविता में अपने अदम्य साहस के साथ अपने पुरुषार्थ को 'प्रकृति परिवर्तन' के माध्यम से व्यक्त किया है। जहाँ की शब्दावली भी विषय एवं सन्दर्भ की दृष्टि से कठोर हो गई है, किन्तु उसमें शिव-तत्व समाया है। यथा——

अहे निष्ठुर परिवर्तन !
तुम्हारा ही तांडव नर्तन
विश्व का करुण विवर्तन !
तुम्हरा ही नयनोन्मीलन,
निखिल उत्थान, पतन !
अहे वासुकि सहस्त्र फन !
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरंतर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्ष:स्थल पर !
शत-शत फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अंबर
मृत्यु तुम्हारा गरलदन्त, कँचुक कल्पांतर,
अखिल विश्व ही विवर,
वक्र कुंडल
दिङ्मंडल ! (तारापथ–नौ)

सुन्दरता के सम्बन्ध में निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं——

कहाँ है सुन्दरता का पार ?
तुम्हें किस दर्पण में सुकुमारि
दिखाऊँ मैं साकार !

पंतजी की कल्पना में वैज्ञानिकता है। जिसके कारण कल्पना का प्रवाह नियन्त्रित होकर चलता है। कहीं-कहीं तो वास्तविक अनुभूति को भी पीछे छोड़ा गया है। किन्तु पंत की रचनाओं में पूर्ण अनुभूति का अभाव भी नहीं है।

अध्याय | १०

पंत की काव्य-कला

डॉ० भगीरथ मिश्र के कथन से कवि के समूचे काव्य-विकास पर प्रकाश पड़ जाता है, अतः सर्वप्रथम उन्हीं के कथन को व्यक्त करता हूँ—'आधुनिक युग की सुकुमार भावना, कोमल कल्पना के कवि श्री सुमित्रानन्दन पंत जी का कवि रूप युगानुरूप चेतना को समन्वित करता हुआ विकसित हो रहा है। सबसे पहले आप प्रकृति-प्रेमी कोमलकान्त पदावली को लेकर शुभ प्रेम-भावना तथा शिशु-सुलभ जिज्ञासा और भोले भावों को ले अवतरित हुए। पंतजी की प्रारम्भिक रचनाओं—ज्योत्सना, पल्लव, गुञ्जन आदि में प्राकृतिक सौन्दर्य और प्रेम के प्रति किशोर अल्हड़ संवेदन-शीलता के दर्शन होते हैं, परन्तु आगे चलकर देश की राजनीतिक स्थिति ने जब युगानुकूल गाँधीवाद की ललकार की, तब उसका स्वर पंतजी की कविताओं में झंकृत हुआ। प्रगतिवादी आन्दोलन चलने पर साम्यवादी भावना और चेतना की लहर जब पूँजीवाद और सामन्तवाद के विरुद्ध संचरित हुई तो पंत की रचनाओं युगान्त, युग-वाणी, ग्राम्या आदि में प्रगति और नवक्रांति का सन्देश प्रकट करने वाली यथार्थवादी धारा की रचना देखने को मिलती है। आज अब हमारा देश स्वतंत्र हो गया है और नव-निर्माण और नव-प्रयोग की धूम मची हुई है तब पंतजी नूतन सांस्कृतिक एवं सामाजिक निर्माण का सन्देश लेकर आते हैं। वास्तव में इस कथन में सत्यता दीख पड़ती है। कवि समय की गति के अनुसार बदलता गया है, जिसके कारण उसकी रचनाओं में विभिन्न उतार-चढ़ाव भी आते गये हैं; यही कारण है कि रचनाओं के विकास की दृष्टि से भाषा शब्द-चयन और अलंकार आदि में अन्तर आते गये हैं। यह हम कह सकते हैं कि कवि की भाषा शैली-अलंकार आदि भावों को लेकर चले है, इतना अवश्य है कि कहीं-कहीं भावों की अभिव्यक्ति चरमरा गई है। यहाँ हमारा मुख्य अभीष्ट कला-पक्ष को वर्णित करना है, जिसका तात्पर्य भाषा-शैली, शब्द-चयन, गुण, अलंकार और छन्द-योजना से है। अतः इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए हम उन पर प्रकाश डालेंगे।

कवि प्रारम्भ से ही प्रकृति-प्रेमी रहा है। प्रकृति सौन्दर्य-प्रेमी होने के कारण उन्मुक्त कल्पना में विचरण करता रहा है। यही कारण है कि कोमल एवं सुन्दर भाव

स्वच्छन्द गति से प्रवाहित होते हुए दिखलाई पड़ते हैं। यह भी पूर्ण सत्य है कि कवि प्रकृति के हृदय में पैठकर प्रकृति के माध्यम से हो भावों की गति में गुनगुनाता रहा है। इससे कवि के भावों का पक्ष हृदयस्पर्शी हो गया है, किन्तु सर्वत्र नहीं। शब्दों की क्लिष्टता के कारण भावों की अभिव्यक्ति में सम्प्रेषणीयता नहीं आ सकी है। निराला के काव्य में तो प्रत्येक शब्द लय, गति के साथ बोलते हुए दिखलाई पड़ते हैं, किन्तु पंत के काव्य में ऐसी स्थिति कहीं-कहीं बन पड़ी है। प्राचीन काल के विद्वानों की धारणा थी कि भाषा-शैली ही मानव अभिव्यक्ति का साधन है, अतः इसी के माध्यम से प्रत्येक मानव के पास अपनी विचार पहुँचाई जा सकती है। अतः इसी के आधार पर उनकी भाषा-शैली में बराबर सम्प्रेषणीयता की शक्ति पायी जाती है। यही कारण है कि भाषा-शैली एवं भावों की दृष्टि से प्राचीन काल का साहित्य सबल है। इसकी प्रबलता का एक कारण यह भी है कि क्षेत्रीय बोलियों में ही काव्य रचते थे। ऐसी ही क्षेत्रीय बोलियों में कम से कम क्षेत्रीय भावाभिव्यक्ति तो सच्ची होती है। सच्ची होने के कारण उसकी स्वाभाविकता में कमी नहीं आने पाती। यही कारण है कि प्राचीन एवं आधुनिक दोनों पाठकों को समझने में अति सरलता होती है। आजा की भाषा-शैली के सम्बन्ध से आधुनिक काव्य के भावों को सरलता के साथ नहीं समझ जा सकता है। हाँ, यह भी सत्य है कि वैज्ञानिकता का प्रतिबिम्ब काव्य पर नहीं पड़ा था, आज इस नूतन वैज्ञानिक युग में वैज्ञानिकता का प्रभाव आधुनिक काव्य पर पूर्णरूपेण देखा जा सकता है। यही नहीं, छायावाद की प्रमुख विशेषताएँ वैयक्तिकता, शृङ्गारिकता, प्रकृति-प्रेम, कारुण्य या वेदनावाद, सशक्त अभिव्यंजना कौशल और पाश्चात्य अलंकारों की सौन्दर्य छटा दिखलाई पड़ती है, जिसके कारण विषय-भाव के आकार के अनुसार ही भाषा को चलना पड़ा है। यही कारण है कि ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता और प्रतीकात्मता बराबर रूप से देखी जा सकती है।

पंत काव्य की भाषा-शैली पर प्रकाश डालने के पूर्व ब्रजभाषा अर्थात् उस समय की काव्य-भाषा पर प्रकाश डालना आवश्यक समझता हूँ, क्योंकि दोनों में पूर्वापर का सम्बन्ध है। छायावादी कवियों के पूर्व ब्रजभाषा ही काव्य-भाषा थी। कविजन इसी भाषा में काव्य-प्रणयन करना सार्थक समझते थे; बड़ी धूम थी। किन्तु ठीक परम्परा के विपरीत खड़ीबोली में कवियों ने अपनी रचनाएँ लिखने का दृढ़ संकल्प किया। इनमें पंत जी भी एक थे। उस समय खड़ी बोली में रचना करना आसान बात नहीं थी। कवि ने खड़ीबोली में रचना करके अपने अदम्य उत्साह का परिचय दिया। ब्रजभाषा के विद्वानों ने इसकी तीव्र आलोचना की किन्तु इन कवियों के मानस पर तनिक भी प्रभाव न पड़ा। पन्त की रचना में सबलता थी इसी प्रकार से प्रसाद, निराला

महादेवी और मैथिलीशरण गुप्त आदि कवियों की राचनश्रों में सबलता थी। ब्रजभाषा काव्य-पद्धति का सारा ढाँचा ही चरमरा गया। ये समस्त कवि जन मेधावी अपार प्रतिभाशाली थे। इनकी रचनाओं ने उस समय की गति को पहचाना था। समाज को अपनी ओर मोड़ लिया। ब्रजभाषा काव्य के महन्तों ने अपने सिर को झुका लिया। समाज के इस प्रवाह में उनकी सुनने वाला कोई न रहा। खड़ीबोली का विकास होता ही गया।

पन्तजी में कलात्मकता थी। उन्होंने भाषा में प्रांजलता का रूप दिया जिसमें विशेष स्पष्टता थी। पन्तजी भाषा-शैली के कुशल चित्रकार हैं। डाक्टर की भाँति भाषा की नाड़ी को पहचानने-समझने में सफल हो गए। पन्तजी ने पल्लव के प्रवेश में लिखा है—"हिलोर में उत्थान, लहर में सलिल के वक्षस्थल की कोमल कम्पन, तरंग के लहरों के समूह का एक दूसरे का धकेलना उठकर गिरना, बढ़ो-बढ़ो का शब्द मिलता है; बीचि में जैसे किरणों में चमकती हौले-हौले झूमती हुई हँसमुख लहरियों का, ऊर्मि से मधुर मुखरित हिलोरों का कल्लोल से ऊँची-ऊँची बाहें उठाती हुई उत्पातपूर्ण तरंगों का उद्भास मिलता है। पंख शब्द में केवल एक फड़क ही मिलती है, उड़ान के लिए भारी लगता है जैसे किसी ने पक्षी के पंखों में शीशे का टुकड़ा बाँध दिया हो, वह छटपटा कर बार-बार नीचे गिर पड़ता है। अंग्रेजी का विंग जैसे उड़ान का जीता-जागता चित्र हो। इसी तरह टच में जो छूने की कोमलता है वह स्पर्श में नहीं। स्पर्श जैसे प्रेमिका के अंगों का स्पर्श कर हृदय में रोमांच हो उठता है उसका चित्र है—ब्रज-भाषा के परस में छूने की कोमलता अधिक विद्यमान है जिस प्रकार जाँय से मुँह भर आता है उसी प्रकार हर्ष से आनन्द का स्फुरण होता है।" वास्तव में पंत जी सोने के आभूषण में नग का काम करते हैं। वे श्याम और श्यामल में अन्तर मानते हैं। श्यामल को अधिक कोमल कहते हैं। देशज, ग्राम्य-भाषा, ब्रजभाषा और उर्दू-अँग्रेजी के शब्दों का अभाव नहीं है। शुद्ध संस्कृत के तत्सम शब्दों की बहुलता है। विषयानुसार ही पन्तजी की भाषा बदलती गई है। कहीं-कहीं ऐसी भाव भंगिमा दिखलाई पड़ती है। जहाँ कवि का हृदय प्रकृति के प्रकोष्ठ भाग में स्थित होकर बोल रहा है। यथा—

> छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
> तोड़ प्रकृति से भी माया
> बाले! तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?
>
> (तारापथ—चार)

\+ \+ \+

> गरज गगन के गान! गरज गम्भीर स्वरों में,
> भर अपना संदेश उरों में औ अधरों में,

बरस धरा पर बरस सरित गिरि स्वर सागर में
हर मेरा संताप पाप जग क्षण भर में !

(तारापथ—तीन)

\+ +

धूल भरे घुँघराले काले
भय्या को प्रिय मेरे बाल
माता के चिर चुंबित मेरे
ग रे गोरे सस्मित गाल
वह काँटों में उलझी साड़ी
मंजुल फूलों के गहने
सरल नीलिमय मेरे दृग
अस्रु हीन संकोच सने !

(तारापथ—आठ)

द्वितीय उदाहरण भाषा के प्रवाह एवं ध्वनि की दृष्टि से अति सराहनीय है। तृतीय उदाहरण में भाषा की स्वाभाविकता प्रकट हुई है। जो इस बात का परिचायक है कि कवि के हृदय से निकलकर मानो आ गई है। परिवर्तन नामक कविता में तो कवि के कठोर शब्द दिखलाई पड़ते हैं। किन्तु सन्दर्भ में कवि अपनी भावनाओं को व्यक्त कर रहा है, उस दृष्टि से भाषा का प्रवाह अति उत्तम है। संस्कृत के तत्सम् शब्दों की बहुलता है। यथा—

अहे निष्ठुर परिवर्तन !
तुम्हारा ही तांडव नर्तन
विश्व का करुण विवर्तन !
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन,
निखिल उत्थान पतन !
अहे वासुकि सहस्र फन ।
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरन्तर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षःस्थल पर ।
शत शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत कंचुक कल्पांतर
अखिल विश्व ही विवर

वक्र कुण्डल
दिङ्मंडल !

(तारापथ—नौ)

प्रकृति के विनाशकारी परिवर्तन को देखकर कवि का हृदय किस प्रकार से अपने विषय के अनुकूल परिवर्तित हो गया। आवेगपूर्ण स्थिति में कवि बोल रहा है। यहाँ प्रत्येक शब्द आवेगपूर्ण अर्थात् कठोर लग रहा है।

कवि 'तारापथ' की भावी पत्नी के प्रति जब अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है तब ऐसा लगता है कि कवि का हृदय बड़ा कोमल है। वह आवेश में कभी नहीं आ सकता और न उसके हृदय से कठोर शब्द ही निकल सकते हैं। कितनी कोमल भावना प्रकट हो रही है या यों कहें कि कोई स्त्री बोल रही है—

प्रिय प्राणों की प्राण।
न जाने किस गृह में अनजान
छिपी हो तुम स्वर्गीय विधान। (तारापथ—बारह)

नौका-विहार की मृदु मन्द, मन्द, मंथर, मंथर, लघु तरणि हिंसनी सी सुन्दर तिर रही खोल पालों के पर में, कितनी सुन्दर शब्दावली का चयन हुआ है। प्रत्येक शब्द से ध्वनि फूट रही है। यहाँ पूर्ण कलात्मकता का रूप देखा जा सकता है। किन्तु जहाँ आध्यात्मिकता का भाव कवि हृदय में आ पड़ा है ;वहाँ संस्कृत की तत्सम् दार्शनिक शब्दावली का प्रयोग हुआ है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

ज्यों ज्यों लगती है नाव पार
उर में आलोकित शत विचार !
इस धारा सा ही जग का क्रम-शाश्वत इस जीवन का उद्गम
शाश्वत है गति शाश्वत संगम !
शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजत हास
शाश्वत लघु लहरों का विकास !
हे जग-जीवन के कर्णधार। चिर जन्म मरण के आर पार
शाश्वत जीवन नौका-विहार।
मैं भूल गया अस्तित्व-ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण
करता मुझको अमरत्व दान। (तारापथ—सोलह)

युगवाणी की पुष्प प्रसू कविता में भाषा का बिल्कुल बदला हुआ रूप मिलता है। छोटे-छोटे शब्द बिहारी के दोहों की भाँति हैं किन्तु अपना अर्थ अपनी ध्वनि से ही प्रकट कर देते हैं। यथा—

कोमल
चंचल
शाद्वल
अंचल
कल कल
छल छल
चल जल निर्मल

(तारापथ—बाईस)

'झंझा में नीम' कविता का कितना सुन्दर रूप मिलता है।

सर् सर् मर् मर्
रेशम के-से स्वर भर
घने नीम दल
लंबे पुतले चंचल
श्वसन स्पर्श से
रोम हर्ष से
हिल हिल उठते प्रतिपल।

(तारापथ—तेईस)

सावन कविता का उदाहरण भी संगीतात्मकता से युक्त है। यथा—

झम झम झम झम मेघ बरसते हैं सावन के,
छम छम छम गिरतीं बूंदें तरुओं से छन के।
चम चम बिजली चमक रही छिप उर में घन के
थम थम दिन के तम में सपने जगते मन के।

(तारापथ—पैंतीस)

यहाँ कवि की पूर्ण कलात्मकता झलक उठी है। प्रत्येक पंक्ति में प्रारम्भ से ही ध्वनि फूटने लगती है जो समस्त पद को लावण्यमय बनाने में सफल है। कवि के ऐसे ही चित्रणों के द्वारा सफल संगीतकार कहा जाता है।

बापू के प्रति कविता में पंकज और सरोज दोनों शब्दों की सन्दर्भगत व्याख्या प्रस्तुत की है—

जड़ता, हिंसा, स्पर्धा में भर
चेतना, अहिंसा, नम्र ओज,
पशुता का पंकज बना दिया
तुमने मानवता का सरोज!

(तारापथ—इक्कीस)

श्री ओमप्रकाश सिंहल ने कुछ प्रयुक्त शब्दों की ओर इशारा किया है खोंस, दीठ, फलक, तमाशा मजलिस आदि शब्दों का प्रयोग कितने ही स्थानों पर मिल जाता है। कई स्थल तो ऐसे हैं जहाँ कवि ने अंग्रेजी शब्दों का अनुवाद किया है यथा—अजान नयन Innocent-Eye का भावानुवाद सा प्रतीत होता है। लेकिन इतना होते हुए भी कवि ने व्याकरण का साथ नहीं किया है। ईकारान्त आदि का उनके यहाँ कोई अर्थ नहीं है। जो शब्द पुरुष और महान् है वह उसके लिए पुल्लिग है। जिन शब्दों में कोमल तथा लघुत्व है वह स्त्री लिङ्ग है। उनका कथन भी है कि मुझे शब्दों के अनुसार ही स्त्रीलिङ्ग, पुल्लिङ्ग मानना अधिक उपयुक्त है।

कहीं-कहीं भाषा में दुरूहता आ गई है जिसके कारण समूचे पद का भाव ही चरमरा गया है। पन्तकाव्य में काफी शब्द ऐसे प्रयुक्त हुए हैं जिनका कोई अर्थ ही नहीं है। केवल डिक्शनरी से उतार दिये गए हैं जो पद को निरर्थक सिद्ध करने में सहायक हो गए हैं। अनिलातप, वाष्पाच्छादित, तिमिरांकित, गंधोद्दाम, फेनस्फार, समुच्छ्वसित, चीखासा, महदाकांक्षा, प्रतिच्छवित, फेनोच्छवसित, स्थविरता ये शब्द पन्त को डिक्शनरी का कवि घोषित करते हैं। यही नहीं इस प्रकार के तमाम शब्द प्रयुक्त हुए है जो भावों की सरिता को रोककर उसके वास्तविक प्रवाह को समाप्त कर देते हैं। इन शब्दों के प्रयोग से तो समस्त पद ही निरर्थक सिद्ध हो गए हैं।

भारतीय साहित्य के विद्वानों ने तीन गुण माने हैं—ओज प्रसाद और माधुर्य। माधुर्य गुण की छटा पन्त की मौन निमन्त्रण कविता में खिल उठी है—

न जाने, अलस पलक दल कौन
खोल देता तब मेरे मौन!
तुमुल तम में जब एकाकार
ऊँघता एक साथ संसार
भीरू झींगुर कुल की झनकार
कँपा देती तंद्रा के तार
न जाने खद्योत से कौन
मुझे पथ दिखलाता तब मौन!
कनक छाया में जब कि सकाल
खोलती कलिका उर के द्वार
सुरभि पीड़ित मधुपों के बाल
तड़प बन जाते हैं गुञ्जार

न जाने, ढुलक ओस में कौन
खींच लेता मेरे दृग मौन !

(तारापथ--पाँच)

प्रसाद गुण का प्रयोग पन्तकाव्य में नहीं के बराबर प्राप्त होता है। युगवाणी और ग्राम्या की रचनाओं में इसका रूप देखा जा सकता है। यथा—

लोरी गाओ, लोरी गाओ
फूल डोल में उसे झुलाओ
निन्दिया की चल परिया आओ
मुन्ना का मुख चूम सुलाओ।'

ओजगुण में जो कानों को बुरा लगे वही शब्द आते हैं। ऐसे शब्दों का पन्त काव्य में अभाव नहीं है। पन्तजी 'परिवर्तन' नामक कविता में तो ऐसे शब्दों की भरमार है। कहीं-कहीं प्रत्येक कविताओं में ऐसे शब्द मिल जाते हैं जिन्हें सुनते ही कानों में पीड़ा होने लगती है। फेनस्फार, वाष्पाच्छादित, तिमिरांकित, गंधोद्दाम आदि शब्द हैं। जैसे सनलाईट सोप का हिन्दी अनुवाद सूर्य-प्रकाश वस्त्र स्वच्छक, या सिगनल का हिन्दी अनुवाद 'लौहपथगमिनी आवागमन प्रतिसूचक' कानों को पीड़ा पहुँचाता है ठीक वैसे ही ऊपर उल्लेख किए गए शब्द हैं।

काव्य में स्थान-स्थान पर मानवीकरण विशेषण विपर्यय आदि अलङ्कार पाये जाते हैं। ये अलङ्कार पाश्चात्य भाषा काव्य-भाषा के भारतीय अलङ्कारों का भी कहीं-कहीं प्रयोग हुआ है किन्तु मानवीकरण का अधिक अलङ्कारों के सम्बन्ध में पन्तजी का विचार रहा है—

तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार
वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलङ्कार।

इससे स्पष्ट है कि पन्त की धारणा अलङ्कारों के प्रति रीतिकालीन कवियों की भाँति नहीं है। वास्तव में अलङ्कार की परम्परा एक रूढ़ि परम्परा थी। इस रूढ़ि परम्परा को अपनी सामर्थ्यशालिनी कवित्व शक्ति से कवि ने तोड़ी है। कुछ पाश्चात्य अलङ्कारों के उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं--

मानवीकरण—फिर परियों के बच्चों से हम
सुभग सीप के पंख पसार।
समुद पैरते शुचि ज्योत्स्ना में
पकड़ इन्दु के कर सुकुमार।।

(पल्लव)

विशेषण-विपर्यय—जब विमूर्च्छित नींद से था जगा
(कौन जाने किस तरह ?) पीयूष-सा
एक कोमल समव्यथित निःश्वास था
पुनर्जीवन-सा मुझे तब दे रहा।

(पल्लविनी)

ध्वन्यर्थव्यञ्जना—बाँसों का झुटमुट
सध्या का झुटपुट
है चहक रही चिड़ियाँ
टी वी टी टुट् टुट्

(पल्लविनी)

इसके अतिरिक्त भारतीय अलङ्कार भी प्रयुक्त हुए हैं जैसे उपमा, अनुप्रास, क्रम, सन्देह, लोकोक्ति, उल्लेख आदि।

उपमा—कौन, कौन तुम परिहृत वसना
म्लान-मना भू पतिता सी,
वात हता विच्छिन्न लता सी
रति श्रांता व्रज वनिता सी ?

(तारापथ—छः)

\+ + +

विरोधाभास—तुम मांस हीन तुम रक्तहीन
हे अस्थिशेष ! तुम अस्थिहीन
तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल
हे चिर पुराण हे, चिर नवीन

(बापू के प्रति—तारापथ—इक्कीस)

रूपक—हे जग जीवन के कर्णधार ! चिर जन्म मरण के आर पार
शाश्वत जीवन-नौका विहार !

(तारापथ—सोलह)

सन्देह—निद्रा के उस अलसित बन में वह क्या भावी की छाया ?
दृग पलकों में विचर रही या वन्य देवियों की माया ?

उल्लेख—बिन्दु में थी मधुर मिलन से यह जीवन हो परि पूर्ण
फिर घन में ओझल हो शशि फिर से ओझल हो कर

इसके अतिरिक्त पन्त की प्रथम रश्मि, मोह, उच्छ्वास, मौन निमन्त्रण, बालापन, बादल, नौका विहार आदि कविताओं में अनुप्रास, उपमा, रूपक, मानवीकरण आदि अलङ्कारों की घनी छटा देखी जा सकती है। इस प्रकार हम देख चुके हैं कि पन्त काव्य में भारतीय एवं पाश्चात्य अलङ्कार बड़ी सुन्दरता के साथ प्रयुक्त हुए हैं। ये अलङ्कार स्वाभाविक जान पड़ते हैं।

छन्दों का स्थान प्राचीन काव्य में अधिक था। इनकी एक परम्परा थी। कवि नियमों का पालन करते हुए विभिन्न छन्दों की रचना करते थे, आचार्य कवि केशव को तो छन्दशास्त्र का ज्ञाता कहा जाता है। वस्तुतः यह बात सत्य भी है क्योंकि जितने छन्द आचार्य कवि केशव ने अपने काव्य में प्रयुक्त किए हैं उतने किसी भी आचार्य या कवि ने नहीं।

आधुनिक युग में इन नियमों का पालन नहीं किया गया। पन्तजी का इस दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है। पन्तजी ने लिखा है—कविता तथा छन्द के बीच बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृद्कंपन। कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान हो जाता है। जिस प्रकार नदी के तट अपने बन्धन से धारा की गति को सुरक्षित रखते हैं जिनके द्वारा वह अपनी बन्धनहीनता में प्रवाह खो बैठती है उसी प्रकार छन्द भी अपने नियन्त्रण से राग को स्पन्दन, कंपन तथा वेग प्रदान कर निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल सहज कलरव भर उन्हें सजीव बना देते हैं।

यों तो पन्तकाव्य में रोला, रूपमाला सखी आदि छन्दों के प्रयोग पाये जाते है। कहीं-कहीं ऐसे छन्दों की रचना कवि ने कर दी है जो किसी नियम के साँचे में आ ही नहीं सकते। छन्दों के कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं।

सिसकते अस्थिर मानस से
बाल, बादल सा उठकर आज
सरल अस्फुट उच्छ्वास।

(तारापथ—तीन)

\+ \+ \+

छपी सी पी सी मृदु मुस्कान
छिपी सी, खिची सखो सी साथ,
उसो की उपमा सी बन, मान
गिरा का धरती थी, धर हाथ!

(तारापथ—तीन)

सकल रोम्रों से हाथ पसार
लूटता इधर लोभ गृह द्वार,
उधर जगती का विस्तार !
टिड्डियों सा छा अत्याचार
चाट जाता संसार !

(तारापथ—नौ)

\+ + +

बाँसों का झुरमुट—
सन्ध्या का झुटपुट—
है चहक रहीं चिड़ियाँ
टी-वी-टी- टुट्-टुट् !

(तारापथ—अठारह)

\+ + +

देखो भू को
जोव प्रसू को।
हरित भरित
पल्लवित मर्मरित
कूजित गुञ्जित
कुसुमित
भू को !

(तारापथ—बाईस)

प्रथम तथा द्वितीय उदाहरण में एक ही छन्द है तारापथ की परिवर्तन कविता का तीसरा उदाहरण है जो छन्द की गति एवं शब्दों की कर्कशता के लिए प्रसिद्ध है। चौथे उदाहरण में छन्द की ध्वनि देखी जा सकती है। इसी प्रकार से पाँचवें उदाहरण में भी, पुण्य प्रसू, धरती का वर्णन है। जो कलात्मकता के साथ नूतन छन्द में व्यक्त हुम्रा है।

उक्त उदाहरणों एवं विवेचनों से स्पष्ट हो जाता है कि पन्त की काव्य-कला कहाँ तक किन-किन दिशाम्रों में मुखरित हुई है। यों तो काव्य-कला की दृष्टि से पन्त जी का छायावादी कवियों में विशिष्ट स्थान है। केवल निराला के सम्मुख कलात्मकता एवं भावों की दृष्टि से नहीं ठहर सके हैं।

———

अध्याय | ११

परिवर्तन पर एक दृष्टि

'तारापथ' काव्य-संकलन की सबसे बड़ी कविता 'परिवर्तन' है। 'परिवर्तन' में कवि का रूप युग निर्देशक के रूप में दिखलाई पड़ता है। वास्तव में प्रकृति के विशाल परिवर्तन में वह संसार का परिवर्तन देखता है। परिवर्तन के उतार-चढ़ाव में उसे सुख-दुःख की अनुभूति होती है। वह नूतनता के साथ सत्य की खोज करना चाहता है। अतः कवि की चेतना प्रस्तुत कविता में सचेष्ट हो गई है। जिसके कारण प्रकृति के माध्यम से समाज के विभिन्न अवयवों को परिवर्तित देखता है। इसका कारण यह भी है कि कवि को यहाँ तक पहुँचने में जो समय लगा था, उसका सच्चे कवि की भाँति सदुपयोग किया था। उसे देश, काल, परिस्थिति एवं जीवन का समग्र अनुभव हो गया। इसी कविता से नई चेतना, नये ज्ञान, नये मार्ग की दिशा दिखाता है। इस विभिन्न प्रकार के संघर्षों में जीवन का वास्तविक स्वरूप देखता है जहाँ उसे पद-दलित जन-समूह भी दिखलाई पड़ता है। अपनी वाणी की शक्ति से उसे उठाना चाहता है। इसीलिए नवजागरण, नई कल्पना का मंत्र फूंकता है। कवि ने जगत् के प्रति नश्वरता, निष्ठुरता, नृशंसता आदि के शब्द व्यक्त किए। प्रकृति का परिवर्तन अनिवार्य मानता है। यथा—

अहे निष्ठुर परिवर्तन !
तुम्हारा ही ताण्डव नर्तन
विश्व का करुण विवर्तन !
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन
निखिल उत्थान-पतन !
अहे वासुकि सहस्र फन !
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरन्तर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षस्थल पर
शत-शत फेनोच्छ्वसित स्फीत-फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पान्तर
अखिल विश्व ही विवर
वक्र कुण्डल
दिङ्मण्डल !

श्री दूधनाथ सिंह ने उक्त कथन का विश्लेषण समग्र रूप में किया है—परिवर्तन के इस तथ्य-कथन से अत्यन्त शांत या वेदनायुक्त निर्वेद भाव से कविता शुरू होती है। लेकिन भय, विनाश और विकरालता का चित्रण आते ही छन्द में मात्राओं का प्रसार हो जाता है। फिर तथ्य-कथन पर आते-आते एक हताशसे परिणाम पर पहुँच कर छन्द संकुचित होकर केवल एक शब्द में सिमट आता है। इस तरह पंतजी की इस काल की कविता शिल्प-तंत्र, भाषा शब्द, लय और कथा की एकान्विति में सम्पूर्णतः गूँथी हुई है और उनमें से कोई एक अलग से लाया गया अथवा आरोपित नहीं लगता। कविता की यह सफलता अप्रतिम है और कालिदास के 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ' को सार्थक करती है। काव्य रचना की इसी सफल नियोजना पर ही पंत की कविता का अगला विकास और परिवर्तन सम्भव हो सका है। कवि का विचार भी है कि सृष्टि का समस्त उत्थान-पतन परिवर्तन के आदेश पर ही आधारित है। वह दुर्जेय विश्वजित् भी है। सैकड़ों सुरपति और देवपति उसके सम्मुख अपना सिर (मस्तक) झुकाते हैं—

अहे दुर्जेय विश्वजित् !
नवाते शत सुरवर, नरनाथ
तुम्हारे इन्द्रासन तल माथ;
घूमते शत-शत भाग्य अनाथ,
सतत रथ के चक्रों के साथ;
तुम नृशंस नृप से जगती पर चढ़ अनियंत्रित
करते हो संसृति को उत्पीड़ित, पद मर्दित;
नग्न नगर कर, भग्न भवन, प्रतिमाएँ खंडित,
हर लेते हो विभव, कला, कौशल चिरसंचित !
आधि, ब्याधि, बहु वृष्टि , वात उत्पात, अमंगल,
वह्नि, बाढ़, भूकंप,—तुम्हारे विपुल सैन्य दल;
अहे निरंकुश ! पदाघात से जिनके विह्वल
हिल हिल उठता है टल मल
पद दलित धरातल !

परिवर्तन दयाहीन है। काल भी दयाहीन है। संसार का दया पूर्ण इतिहास मानव के लिए कष्टदायक है, जिसे परिवर्तन ने लिख रखा है। बड़े-बड़े भवन, ऊँची-ऊँची पर्वत श्रेणियाँ परिवर्तन के संकेत मात्र से ही ध्वस्त हो जाती हैं। यहीं समस्त साम्राज्य भी नष्ट हो जाते हैं। परिवर्तन ही समस्त पृथ्वी, एवं समुद्र को कँपा देता है। परिवर्तन महान् प्रलयंकारी है। यहाँ इस कथन का उदाहरण द्रष्टव्य है—

काल का अकरुण भृकुटि विलास
तुम्हारा ही परिहास;

विश्व का अश्रु पूर्ण इतिहास
तुम्हारा ही इतिहास !
एक कठोर कटाक्ष तुम्हारा अखिल प्रलयंकर
समर छेड़ देता निसर्ग संसृति में निर्भर;
भूमि चूम जाते अभ्र ध्वज सौध, शृङ्गवर,
नष्ट भ्रष्ट साम्राज्य–भूति के मेघाडंबर !
अये, एक रोमांच तुम्हारा दिग्भू कंपन,
गिर-गिरपड़ते भीत पक्षि पोतों-से उडुगन;
आलोड़ित अंबुधि फेनोन्नत कर शत शत फन,
मुग्ध भुजङ्गम सा, इंगित पर करता नर्तन !
दिक् पिंजर में बद्ध, गजाधिप सा विनतानन,
वाताहत हो गगन
आर्त करता गुरु गर्जन !

जीवन-मृत्यु तक परिवर्तन का ही साम्राज्य छाया हुआ है । परिवर्तन महासागर है जिसमें सैकड़ों संसार रूपी लहरें उठती और विलीन हो जाती हैं। परिवर्तन में ही सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, तारे आदि जलते-बुझते रहते हैं । जगत् की सम्पूर्ण वस्तुएँ और मन, वचन और कर्म आदि नाशवान् हैं। परिवर्तन ही पुरातन का विनाश करके नूतन सृष्टि करता है। यथा—

तुम्हारा ही अशेष व्यापार,
हमारा भ्रम मिथ्याहंकार;
तुम्हीं में निराकार साकार,
मृत्यु जीवन सब एकाकार !
अहे महांबुधि ! लहरों से शत लोक, चराचर
क्रीड़ा करते सतत तुम्हारे स्फीत वक्ष पर,
तुंग तरङ्गों से शत युग, शत शत कल्पांतर
उगल, महोदर में विलीन करते तुम सत्वर,
शत सहस्र रवि शशि, असंख्य ग्रह, उपग्रह, उडुगण,
जलते-बुझते हैं स्फुलिंग से तुममें तत्क्षण;
अचिर विश्व में अखिल, दिशावधि, कर्म, वचन, मन,
तुम्हीं चिरंतन
अहे विवर्तन हीन विवर्तन !

वस्तुतः 'परिवर्तन' उच्च कोटि की रचना है। कवि का युग द्रष्टा रूप परिवर्तन में ही विकसित हुआ है। महाप्राण निराला ने भी प्रस्तुत कविता की बड़ी प्रशंसा की है।

———

अध्याय | १२

छाया पर एक दृष्टि

'तारापथ' काव्य-संकलन की बड़ी व सुन्दर, कोमल भावनाओं से युक्त 'छाया' नामक कविता है। जहाँ कवि अपनी गूढ़तम कोमल भावनाओं को सखि, कहकर व्यक्त करता है। प्रस्तुत कविता की सबसे बड़ी विशेषता है—सरलता। इसमें कवि के शब्द हृदय से निकले हुए हैं, कृत्रिम नहीं हैं। संस्कृत के तत्सम शब्द ठूस-ठूस कर नहीं भरे गए हैं, जिसके कारण कविता में प्रवाह है।

कवि 'छाया' को अपनी कल्पना शक्ति से संसार के विभिन्न रूपों में देखता है। कहीं-कहीं कवि ने भारतीय पौराणिक कहानियों का भी आश्रय ग्रहण किया। इससे कवि का भारतीय कहानियों के प्रति प्रेम भी देखा जाता है। यथा—

कहो, कौन हो दमयंती-सी
तुम तरु के नीचे सोई ?
हाय ! तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि ! नल-सा निष्ठुर कोई !

\+ + +

गूढ़ कल्पना-सी कवियों की
अज्ञाता के विस्मय-सी,
ऋषियों के गंभीर हृदय-सी,
बच्चों के तुतले भय-सी;
भू पलकों पर स्वप्न जाल सी,
स्थल सी, पर, चंचल जल सी,
मौन अश्रुओं के अंचल सी,
गहन गर्त में समतल सी ?

'छाया' को संसार के कण-कण में कवि देखता है। कहीं वृक्ष की छाया रूप में तो कहीं उपमा, भावुकता, भावाकुल भाषा और नयी कविता के रूप में उसे देखता है। कहीं मदिरा की मादकता, वृद्धावस्था की स्मृति, दर्शन की जटिल ग्रंथि, त्रिभुवन के नयन, आदि रूपों में उसे पाता है। कवि कह उठता है—

किस रहस्यमय अभिनय की तुम
सजनि ! यवनिका हो सुकुमार,
इस अभेद्य पट के भीतर है
किस विचित्रता का संसार ?
निर्जनता के मानस पट पर
बार-बार भर ठंडी साँस
क्या तुम छिपकर क्रूर काल का
लिखती हो अकरुण इतिहास ?

इसके पश्चात् जब कवि कल्पना के प्रवाह में आगे बढ़ता है तब उसे, उसी छाया में भारति, अदृश्य अप्सरसि, प्रेयसी आदि का रूप सहज भाव से दिखलाई पड़ता है। यहीं कवि यात्रियों को सुख देने वाली छाया कहता है। और स्वयं उसके पावन अंचल में क्षण भर सुख से सोने की माँग करता है। तथा साथ ही पर पीड़ा से पीड़ित होने की शिक्षा भी प्राप्त करना चाहता है। इसके पश्चात् पुनः भाव-विभोर हो कहता है—

गाओ, गाओ विहगबालिके,
तरुवर से मृदु मंगल गान,
मैं छाया में बैठ तुम्हारे
कोमल स्वर में कर लूँ स्नान !
हाँ सखि ! आओ, बाँह खोल हम
लग कर गले, जुड़ा लें प्राण,
फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में
हो जावें द्रुत अंतर्धान !

किस सहजता के साथ कवि अंतर्धान हो जाने की बात करता है। कथन में कितनी कोमलता, कितनी सुन्दरता और कितनी कलात्मकता है। वास्तव में 'परिवर्तन' कविता में जहाँ कवि ने संसार की प्रत्येक वस्तु को परिवर्तनशील, क्षण भंगुर देखा था—वहाँ भावानुसार भाषा और छंद की गति भी परिवर्तित हुई थी, किन्तु वहीं कवि की वाणी छाया कविता में आकर, कितनी कोमलता-सुकुमारता और सहजता में परिवर्तित हो गयी—यह पन्त की विशेषता है। परिवर्तन में आक्रोश था तो छाया में सुकुमारता। इस प्रकार छाया कविता प्रकृति-प्रेम प्रकृति सौन्दर्य, गूढ़ भावना और तीव्र कवित्व शक्ति की परिचायक है, जो कवि के कोमल विचारों को व्यक्त करने में सक्षम है।

—※—

द्वितीय भाग
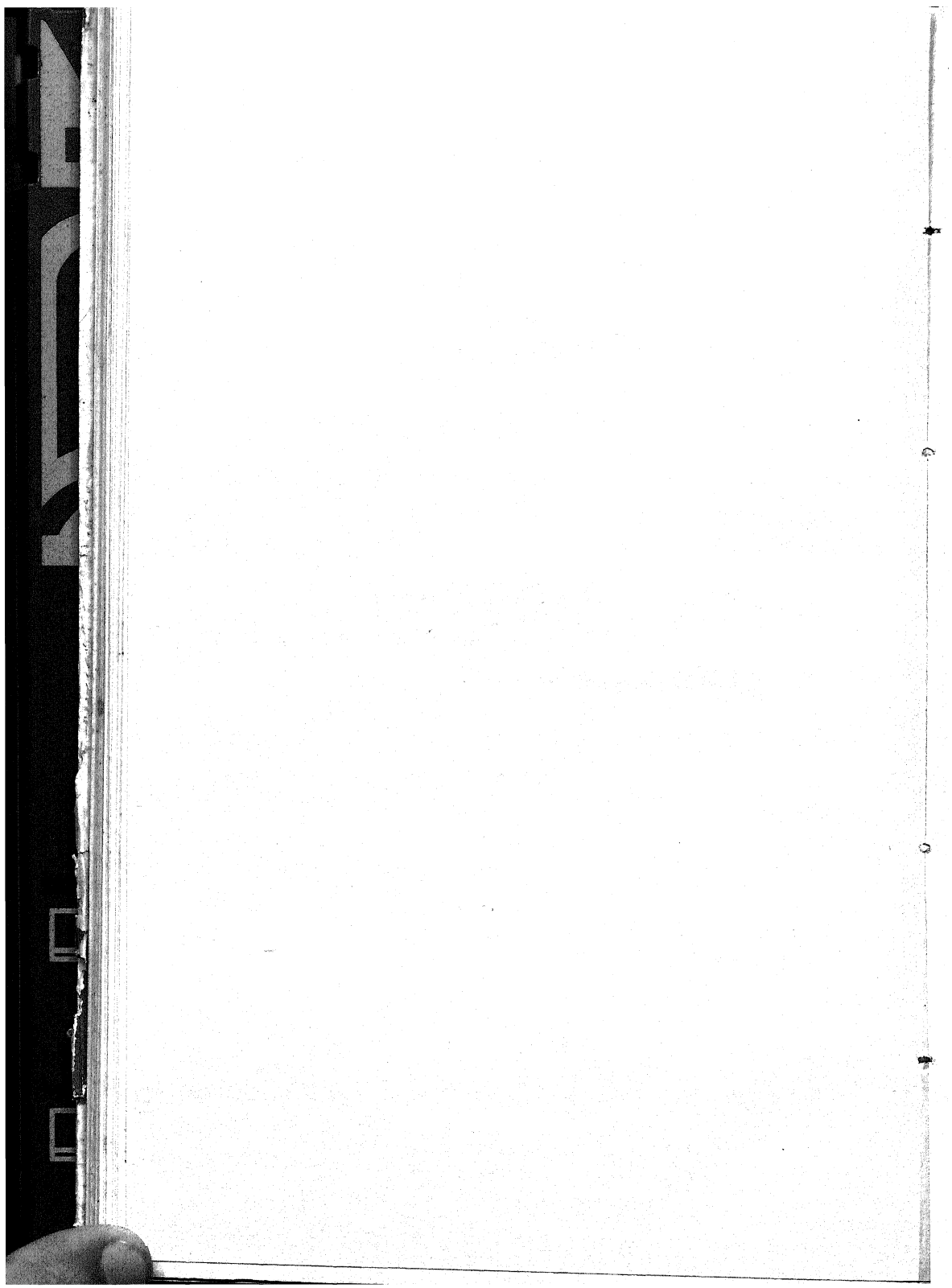
प्रथम रश्मि

संकेत—'तारापथ' की प्रथम कविता 'प्रथम रश्मि' है। यह कविता 'वीणा की सबसे सुन्दर कविताओं में से एक है। इसकी कलात्मकता प्रशंसनीय है। प्रस्तुत कविता में कवि ने विहंग बालिका को संबोधित करते हुए जगत की रहस्यात्मकता के विषय में प्रश्न पूछे हैं। कवि के सौन्दर्यवादी होने के कारण ही 'विहंगिनी', (स्त्रीलिंग) शब्द का प्रयोग हुआ है। 'प्रथम रश्मि' से तात्पर्य प्रकाश की प्रथम किरण से है; अतः कवि ने कविता का शीर्षक प्रथम रश्मि दिया है। यहाँ प्रकाश की प्रथम रश्मि के आगमन के पूर्व ही पक्षियों को, कवि कलरव करते हुए पाता है जिसके कारण कवि हृदय में कौतूहलता होती है कि यह जानकारी पक्षियों को कैसे हो गई। यहाँ इसी का वर्णन किया गया है।

प्रथम रश्मि········ ······बतलाया उसका आना ? (पृ० ५५)

शब्दार्थ—रंगिणि–रंगोंवाली। बालविहंगिनि–विहंग बालिका। नीड़–घोंसला। कामरूप–इच्छानुसार जो रूप धारण करे। नभचर–आकाश में विचरण करने वाले। अवनि–पृथ्वी। सहसा–अचानक। तरुवासिनि–वृक्ष पर निवास करने वाली। अंतर्यामिनि-भीतर का भेद जानने वाली।

भावार्थ—हे विभिन्न रंगोंवाली बालविहंगिनी! तुझे प्रातःकाल के प्रथम सूर्य किरण के आगमन की सूचना कैसे प्राप्त हुई और प्रथम सूर्य किरण के स्वागत के लिए तू जाग्रत-गीत कैसे गा उठी तूने यह स्वर्गिक गीत कहाँ से सीखा है? कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि इतना सुमधुर कंठ-स्वर तुझे कहाँ मिला, वह प्रकृति का कौन सा रहस्मय कलाकार है जिससे तुमने इस अलौकिक संगीत को सीख लिया है।

हे बाल विहंगिनि! तू पंखों में मुख छिपाकर, स्वप्न नीड़ में सुख पूर्वक सोई हुई थो अर्थात् रात्रि के स्तब्ध वातावरण में चितारहित सुख पूर्वक सोई थी। और उस स्वप्न नीड़ के द्वार पर अनेक जुगनू प्रहरी के समान ऊँघते हुए पहरा दे रहे थे। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रातःकाल वायु जो मंद-मंद प्रवाहित हो रही थी उसी के स्पर्श से रात्रि के थके हुए प्रहरी नींद के आलस्य में झपकियाँ लेते हुए पहरा दे रहे थे। कारण स्पष्ट हैं, सूर्य आगमन के कारण स्वाभाविक गति से जुगनू कांतिहीन हो गए थे। ऐसे हो वातावरण में चन्द्र किरणें फैल रहीं थी और आकाश में विचरण करने वाली

वायु पृथ्वी पर उतर-उतर कर नवीन कलिकाओं के कोमल मुख का चुम्बन लेती हुई उन्हें विकसित कर रही थी। तारक रूपी दीपक तेल से रहित हो गए थे। वृक्षों के पत्तों का हिलना बन्द हो गया था और पृथ्वी के समस्त जीवधारी प्राणी स्वप्न में डूबे हुए थे तथा अंधकार ने अपना मंडप धरती पर फैला रखा था। कहने का तात्पर्य यह है कि समस्त जड़ चेतत में स्तब्धता का साम्राज्य फैला हुआ था।

नीरव वातावरण में वृक्ष पर निवास करने वाली कोकिला अचानक कूक उठी और प्रथम रश्मि के स्वागतार्थ गान करने लगी। हे रहस्य को जानने वाली विहंगिनि! तुझे प्रथम रश्मि के आगमन की सूचना किसने दी? यह कवि के लिए बड़ी कौतूहलता का विषय है।

विशेष—'काम रूप' का तात्पर्य प्रेमी की तीव्र कामुकता से है। इच्छानुसार अपने रूप को बदलने की शक्ति विद्यमान है, अतः कामदेव यानी काम रूप शब्द का प्रयोग कवि ने किया है। 'स्नेहहीन' का प्रथम आशय यह है—दीपक तेल विहीन होकर कुछ पल तक मंद-मंद प्रकाश देता रहता है। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि जिस दीपक में तेल नहीं रहता वह क्षीण प्रकाश देता है। द्वितीय आशय यह है कि जब संसार सुषुप्तावस्था में है तो दीपकों के तेल का समाप्त हो जाना स्वाभाविक ही है। 'कूक उठी' से कोकिला की आलस्य होनता का परिचय मिलता है।

अंतर्यामिनि सम्बोधन से यह स्पष्ट है—वह मानव की अपेक्षा अधिक चैतन्य है।

अलंकार—श्लेष, मानवीकरण।

निकल सृष्टि...............स्वर्गिक गाना? (पृ० ५६-५७)

शब्दार्थ— अंधगर्भ—अंधकार के बीच। खल—दुष्ट। चक्र—जाल। कुहुक— कपट, छल। टोनामाना—इन्द्रजाल। अलि—भ्रमर। शशि—चन्द्रमा। बाला—कन्या। श्रम—परिश्रम। कोक—चक्रवाक। स्तब्ध—नीरव, शांत। उर—हृदय। बहुदर्शिनि—अत्यधिक दूरदर्शी। नभचारिणि—आकाश में विचरण करने वाली। निराकार—आकार विहीन, रूपहीन। ज्योतिपुंज—प्रकाश समूह। द्रुत—शीघ्र-जल्दी। द्रुम—पेड़, वृक्ष। मधुबाल—भ्रमर।

भावार्थ—कवि का कहना है कि सृष्टि के अंधकार के बीच से छाया सदृश् शरीर वाले और बहुत से छायाविहीन शरीर वाले, दुष्ट और राक्षस निकलकर, छल-पूर्वक अपने इन्द्रजाल को फैला रहे हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि दुष्ट जन और राक्षस रात्रि के अंधकार में ही अपने जाल को फैलाकर दूसरे प्राणियों को कष्ट देते हैं।

शशिरूपी बाला रात्रि के श्रम से कांतिहीन हो जाने पर अपने मुख को ढंक रही थी अर्थात् चन्द्रमा दिन के प्रकाश को जानकर धीरे-धीरे अस्त होता जा रहा था।

कमल के बीच में भौंरे बन्दी हो गये थे तथा चक्रवाक अपनी प्रियतमा के वियोग में अधिक व्याकुल हो गये थे। कहने का तात्पर्य यह है कि कमल की पंखुड़ियों पर बैठा हुआ भ्रमर कमल की पंखुड़ियों के बन्द होने के साथ-साथ स्वयं भी बन्द हो जाता है तथा चक्रवाक का वियोग भी रात्रि में ही होता है, यह कवि प्रसिद्धि है।

निस्तब्ध संसार में समस्त जीव प्राणियों की इन्द्रियाँ निश्चेष्ट हो गईं थीं और समस्त जड़-चेतन, एक रूपमय हो गये थे। शून्यवत् संसार के मध्य केवल श्वास-प्रश्वास का आना-जाना ही चल रहा था। इसका आशय यह है कि जीव-प्राणियों के सो जाने पर इन्द्रियाँ भी सुषुप्तावस्था में हो जाती हैं और समस्त संसार भी उस समय एकाकार दिखलाई पड़ता है, केवल श्वास की गति ही प्रवाहित होती रहती है।

कवि कहता है कि हे बहुदर्शिनि ! जाग्रत का गान सर्व प्रथम तूने ही गाया। हे आकाश में विचरण करने वाली विहंगिनि ! तूने समस्त सृष्टि को शोभा-सुख और सुगन्धि से पूर्ण कर दिया है।

सूर्यागमन होते ही आकार विहीन अँधेरा मानो अचानक प्रकाश-पुंज में आकार युक्त हो गया है अर्थात् अंधकार प्रकाश में परिवर्तित हो गया है। और वह अनेक रूप और नाम धारण करके शीघ्र ही जगत के प्रपंच में भी परिवर्तित हो गया।

प्रभात कालीन वायु के स्पर्श से वृक्षों के सुप्त पत्ते रोमांचित होकर सिहर उठे अर्थात् वायु के प्रवाह के कारण वृक्षों के पल्लव जो शांत थे, वे भी हिलने-डुलने लगे और जो वायु शांत थी वह भी गति पाकर चंचल हो उठी। पुष्प-अधरों पर हास-मधुरिमा झलकने लगी और ओस की बूँदे मोती के कणों के सदृश् झलकने लगीं अर्थात् पुष्पों की पंक्तियों पर जो ओस के कण विद्यमान थे, वे सूर्य-प्रकाश पाकर चमकने लगे।

सुनहली किरणों की कांति फैलने से, समस्त मानव जाग्रतावस्था में हो गये अर्थात् दिन निकल आने पर सभी जाग गये। सुगन्धि चारों ओर फैल गयी, भ्रमर गुंजार करने लगे और समस्त जीवप्राणियों में नवीन चेतना, नई स्फूर्ति आ गई तथा संसार में नव-जीवन छा गया। तात्पर्य यह है कि सूर्य किरणों के प्रकाश के कारण सभी प्राकृतिक पदार्थ लहलहा उठे तथा जीवप्राणियों में नई गति दिखलाई पड़ने लगी।

अंत में कवि पुनः कहता है—हे बाल विहंगिनि ! तुझे प्रथम रश्मि के आगमन की सूचना कैसे मिली और कहाँ-कहाँ तुझे स्वर्गिक गीत प्राप्त हुआ ? छायावादी कवि होने के ही कारण कवि ने पुनः अपनी कौतूहलता को प्रकट किया है।

विशेष—'शशिबाला, अलि और कोक को, कवि ने दुःखी रूप में प्रस्तुत किया है। वातावरण के अनुरूप चित्रण करना कवि पंत की विशेषता है। 'कमल क्रोड़' का तात्पर्य यह है कि सूर्य डूब जाने के पश्चात् कमल की पंखुड़ियां बन्द हो जाती हैं और इस पर विराजमान भौंरा भी उसी में बन्द हो जाता है। 'बहुदर्शिनि' शब्द के प्रयोग से कवि ने यह स्पष्ट किया है कि विहंग बालिका को मानव की अपेक्षा आन्तारिक एवं बाह्य ज्ञान अधिक है।

अलंकार—रूपक, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण, उपमा।

मिले तुम राकापति में आज

संकेत—यह 'तारापथ' काव्य-संकलन की द्वितीय और छोटी कविता है। कवि ने प्रस्तुत कविता में अपने को चकोर पक्षी के रूप में वर्णित किया है। चन्द्रमा से चकोर पक्षी का प्रेम कवि प्रसिद्धि है। यहाँ भी कवि ने चकोर पक्षी के रूप में अपनी निरन्तर -गति से अश्रुधार चन्द्रमा को प्राप्त करने के लिए प्रवाहित करता है। बार-बार प्रार्थना करने पर जब उसे चन्द्रमा नहीं प्राप्त होता तब कहता है—निष्ठुर! यह तुम्हारा कैसा अभिमान है। ठीक इसी क्रम से चकोर पक्षी के रूप में अपनी व्यथित भावनाएँ व्यक्त करता जाता है। अपने को भक्ति कालीन कवियों की भाँति छोटा दिखाता है और चन्द्ररूपी प्राण प्रिय को बड़ा। और अंत में यह कहता है —तुम प्राण प्रिय हो किन्तु विपरीत कार्य करते हो, अतः तुम निष्ठुर हो।

मिले तुम..................निठुर! यह भी कैसा अभिमान? (पृ० ५७)

शब्दार्थ—अविरल—निरन्तर। आलोक—प्रकाश। शूल—काँटा। अश्रु—आँसू।

भावार्थ—कवि कहत है—आज तुम मेरे अश्रुजल के हार को पहनकर राकापति में मिले हो, इस बार मैं चकोर पक्षी बनकर निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित कर रहा हूँ, किन्तु हे चन्द्रमा, इतने पर भी तुम्हें लज्जा नहीं आती है। तात्पर्य यह है कि भक्त रूपी चकोर प्राणप्रिय रूपी चन्द्रमा को प्राप्त करने के लिए व्यग्र है किन्तु प्राण प्रिय रूपी चन्द्रमा भक्त रूपी चकोर की दशा पर कुछ भी ध्यान नहीं देता है, इसीलिए भक्त रूपी चकोर प्राणप्रिय रूपी चन्द्रमा पर कुपित होकर अपनी व्यथित भावनाओं को आवेश के साथ व्यक्त करता है कि मेरी इस दयनीय दशा को भी देखकर तुम्हें लज्जा नहीं आती। तुम निष्ठुर हो! यह तुम्हारा किस प्रकार का अभिमान है?

पुनः कवि प्राकृतिक दृश्य का चित्रण करते हुए कहता है—सन्ध्या के प्रकाश के समय तुम पश्चिम की ओर हँस रहे थे अर्थात् दिखलाई पड़ रहे थे। यह स्वाभाविक है कि चन्द्रमा संध्या के समय पश्चिम की ओर ही दिखलाई पड़ता है। कवि पुनः विनती करता है—मैं पक्षियों की ध्वनि में आपके गुण गान गा रहा था, किन्तु तुम चितचोर बड़े निर्दयी हो, वहाँ उपस्थित भी न रहे; इसका मुझे बड़ा दुःख है। तुम निष्ठुर हो, यह तुम्हारा कैसा अभिमान है? कवि की जिज्ञासा यहा भी प्रकट हुई है। वास्तव में

भक्त से स्वामी को अभिमान नहीं करना चाहिए। यह पुकार भक्ति कालीन कवियों की तरह है।

विशेष—कौतूहलता का चित्रण हुआ है, जो छायावादी कवियों की विशेषता है। उक्त पंक्तियों की भक्ति भावना मध्यकालीन कवियों के सदृश् है। भाषा–शैली एवं भाव का पूर्ण सामंजस्य है।

याद है............निठुर ! यह भी कैसा अभिमान ? (पृ० ५८)

शब्दार्थ—गात–शरीर। करील–काँटा।

भावार्थ—कवि कहता है–प्रातःकाल की बात क्या याद नहीं है ? जब तुम फूल बनकर खिले हुए थे। हे प्राणप्रिय ! मैं भ्रमर बनकर अर्थात् भ्रमर के रूप में आपकी धूल को प्राप्त करने के लिए, आप के समीप आया; किन्तु आपने कपट पूर्वक मेरे शरीर में काँटे चुभा दिए अर्थात् दुःख ही दिया। तुम निष्ठुर हो ! तुम्हारा यह कैसा अभिमान है ? कवि की कौतूहलता बनी हुई है।

कवि अब यहाँ स्वामी को बड़ा तथा अपने को अर्थात् भक्त को छोटा दिखाता है—आप जब वसन्त कहलाते थे तब मैं भी कांटेदार वृक्ष के रूप में उपस्थित था। रात-दिन आपकी ओर ही मेरी दृष्टि लगी रही, मैंने आपको बुलाया किन्तु आप नहीं आए, क्या यही सौजन्यता है ? सजा-सजाया नया साज रखा ही रह गया। तुम निष्ठुर हो ! यह तुम्हारा भक्त के प्रति कैसा अभिमान है ? यहाँ भी कवि की जिज्ञासा है कि भक्त के प्रति स्वामी का कैसा अभिमान है ?

इसके पश्चात् कवि कहता है—अभी मैं गीत की रचना कर रहा हूँ और अपने आंसुओं की एक-एक बूँद से घात लिख रहा हूँ, जो तुम दिन-रात दीपक को बुझाते रहते हो और वायु बनकर प्रवाहित होते हो। तुम प्राण प्रिय होकर भी विपरीत कार्य करते हो अर्थात् भक्त के पक्ष में कार्य नहीं करतेहो। तुम निष्ठुर हो ! तुम्हारा यह अभिमान कैसा है ? अर्थात् भक्त के प्रति इस प्रकार का अभिमान रखना शोभा नहीं देता।

विशेष—कवि की कौतूहलता सर्वत्र विद्यमान है।

उच्छ्वास

संकेत—'तारापथ' काव्य-संकलन की तृतीय कविता है। इसमें प्रकृति प्रेम और प्रकृति सौन्दर्य का निरूपण किया गया है। यहाँ कवि बालिका को कल्पनाओं को कल्पलता के रूप में स्वीकार करता है। वास्तव में सुन्दर बालिका के रूप एवं सहज-स्वभाववृत्ति ने ही कवि मानस को अपनी ओर आकर्षित कर लिया है जिसके कारण कवि ने उच्छ्वास के रूप में अपनी आन्तरिक व्यथा को व्यक्त किया है। व्यथा ही प्रेम की गहनता को प्रकट करती है। कवि उस व्यथा को सामाजिक स्तर पर नहीं व्यक्त कर सका है, अतः अश्रुधारा प्रवाहित होती है। कवि प्रकृति सौन्दर्यवादी है, इसीलिए इस चित्र को कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है।

सिसकते, अस्थिर........कर ले सारा आकाश। (पृ० ५६)

शब्दार्थ—मानस—हृदय, सागर। घोष—आवाज, ध्वनि।

आच्छादित—ढक लेना।

भावार्थ—श्रावण मास के बादलों की बूँदों से समस्त धरती जलमग्न है, ऐसे ही प्रकृति के वातावरण में कवि अपनी वियोगावस्था का वर्णन करता है—मेरा सागर रूपी हृदय चंचल हो रहा है और उस स्थिति में, मेरा हृदय भी सिसकियाँ भर रहा है। ऐसी दशा में आज मेरे सरल, अस्फुट, उच्छ्वास बाल बादल की भाँति उठकर छाए हुए हैं। बाह्य बादलों की छाया के पंखों में मेरी आंसूरूपी बूँदें उस नीरव घोष से पूर्ण, शंख में समाहित हो गई हैं। इसका तात्पर्य यह है कि शंखों के स्वरों में तीव्र नाद नहीं है। मेरे उच्छ्वास गम्भीर बादल की भाँति फैले हुए हैं, जो समस्त आकाश को ढँके हुए हैं।

विशेष—कवि ने अपनी वियोगावस्था के उच्छ्वास की तुलना गम्भीर बादलों से की है। यह कवि की कलात्मकता है।

अलंकार—श्लेष, उपमा, रूपक।

यह अमूल्य.........क्षण भर में। (पृ० ५६)

शब्दार्थ—विद्युत-बिजली। सर-सरोवर।

भावार्थ—कवि के नेत्रों में आंसुओं के बादल छा गए हैं। इसका तात्पर्य यह है कि नेत्र आँसुओं से पूर्ण रूप से भर गए हैं ऐसी ही दुःखित दशा का वर्णन कवि करता हैं—मेरे नेत्रों में जो अश्रुओं के बादल छाए हुए हैं, वे अमूल्य मोती के सदृश हैं और

वह अपने सुनहले पंखों से ढँके हुए हैं और अपनी स्वाभाविक पवित्र बूँदों से हृदय रूपी सरोवर को भर देते हैं। वे अपनी दिव्य दृष्टि से इस अपार्थिव जगत को पूर्ण कर देते है जिससे अलौकिक प्रकाश दिखलाई पड़ने लगता है और मेरे नेत्रों का बादल भी मंद विद्युत के समान हँस देता है। और मेरे बज्र के समान हृदय में वह प्रवेश कर जाता है। इस प्रकार अलौकिक गान बनकर और गम्भीर स्वरों में गरज कर समस्त जन के हृदयों एवं अधरों में अपना निराला सन्देश भर देता है। कवि कहता है धरती, सरिता, पहाड़, तालाब और सागर में बरसता हुआ क्षण भर में संसार के पापों को एवं मेरे दुःखों को हर ले अर्थात् जन-जन के दुखों को समूल मिटा दे।

विशेष—कवि की रहस्यात्मक भावना प्रकट हुई है।

अलंकार—उपमा, मानवीकरण, रूपक।

हृदय के सुरभित.........था उपमान (पृ० ५९-६०)

शब्दार्थ—अजान—विशाल। लचका गान—मधुर संगीत।

विकच—अर्धविकसित।

भावार्थ—कवि के मानस में जो अभिलाषा विद्यमान है उसी को अपने आँसुओं के माध्यम से प्रकट करता है। मेरे नेत्रों का बादल हृदय के सुरभित दुःखी श्वासों का स्वागत करता है। उस बालिका का सुखद-यौवन-स्वरूप, विलास, उपवन रमणीयता, सरलता और कमनीयता से युक्त स्नेह शैशव कवि-हृदय को कुरेदता रहा है। कवि कह उठता है कि उसका स्वरूप तो बालिका ही जैसा था। उस बालिका का मन भोला और कपट-विहीन लगता था, जैसे सरलता ने स्वयं मन का रूप धारण किया हो। प्रकृति ने उसे सौन्दर्य युक्त पुत्तलिका बनाया था जिसके कारण नश्वर शरीर के लिए उसे आभूषण की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। उसके सौन्दर्य का नैसर्गिक निरालापन ही कवि मानस को अपनी ओर आकृष्ट करने में पूर्ण सक्षम था। उस बालिका का शरीर स्वयं अभिराम था। उसके नेत्र विशाल थे जो कान तक फैले हुए थे। उसके स्वर-सौष्ठव का तो कहना ही क्या ? जिस समय लचीले और ढीले अधरों से लहरदार संगीत की तान छेड़ती थी, मन चंचल हो उठता था और लचीला एवं अस्फुट गान उसके ओठों का उपमान बन जाता था। तात्पर्य यह है कि जैसे सुनहले सरल एवं प्रकाशयुक्त उस मनोरम बालिका के होठ थे वैसे ही अलौकिक संगीत भी उसके कन्ठ से स्वाभाविक गति से प्रवाहित होता था। जिस प्रकार से उसके होठ युवकों के होठों को ललचा देते थे उसी प्रकार उसके संगीत की ध्वनि युवकों के मन को बन्दी बनाने में पूर्ण समर्थ थी। अतःकवि कहता है कि दोनों में कौन अधिक सुन्दर था यह नहीं कहा जा सकता।

विशेष—कवि ने मनोरम बालिका का वर्णन स्वाभाविक गति से प्रवाहित होने

वाली भाषा में किया है। एक एक शब्द बालिका के चित्र खींचते हुए मानो स्वयं बोल रहे हों। 'अधूरा लचका गान' से चित्र अधिक मनोरम हो गया है। यह भी सत्य है कि बालिका या बालक किसी स्वर को दूर तक नहीं खींच पाते, यह प्रयोग सटीक है। लचका अधिक माधुर्यमय लगता है।

छपी सी......असीम अवसित (पृ० ६०)

शब्दार्थ—गिरा–वाणी। प्रमुदित–प्रसन्न। असीम–अपार, सीमा हीन।

भावार्थ—कवि कहता है कि उस बालिका के अधरों पर प्रत्येक क्षण मुसकान खेलती रहती थी। देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वह मुसकान होठों पर छाप दी गई हो तथा यह भी प्रतीत होता था कि उसके अधरों में उसका प्रियतम छिपा हो। जैसे सखियाँ साथ रहती हैं ठीक वैसे ही मुसकान भी सदैव उसके साथ रहती है। वह मुसकान बड़ी ही सुन्दर थी। बालिका की वाणी मानो मुसकान के साथ मान करती थी और रूठ भी जाती थी। कवि के कहने का आशय यह है कि वह बालिका थी, बालिका होने के कारण मुसकान और वाणी स्पष्ट नहीं हो पाई थी। बालिका का पूर्ण विकास न होने के कारण उसकी भावनाएँ भी अस्पष्ट ही थीं किन्तु उसके अविकसित भाव इतने सुन्दर मालूम पड़ते थे जितने ओस की बूँदों से अधखिले कुसुम। कवि की ऐसी मनोरम बालिका तो शैशव के फूलों से खेला करती थी जिस प्रकार तरंग कभी इस तट से और कभी उस तट से टकराती है। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि कभी बाल्यावस्था के किनारे से टकराती थी तो कभी यौवन के तट से। उसके इतने ही व्यापार थे। कवि को इसी में असीम आनन्द प्राप्त होता था।

विशेष—कवि के शब्द-चयन अतीव सुन्दर बन पड़े हैं। यह सत्य है कि बीच-बीच में पंक्तियों के अर्थ स्पष्ट नहीं हैं, किन्तु संगीतात्मकता इतनी भरी हुई है कि अस्पष्टता नहीं झलकती।

अलंकार—उपमा।

मधुरिमा के मधुमास———अजान वह छोर। (पृ० ६०-६१)

शब्दार्थ—मधुमास—वसन्त। जटिल–कठिन।

भावार्थ—कवि मधुमय वसन्त का वर्णन करता है। उसका कोमल मन कठोर परिश्रम से भ्रमर-सदृश जीवन है अर्थात् उस कवि का जीवन सुगन्धित कलियों के बीच में उसी प्रकार व्यतीत होता है जिस प्रकार भ्रमर का और उसका यह अविरल परिश्रम संसार रूपी विस्तृत उपवन में खिला हुआ है अर्थात् उसका परिश्रम संसार में समाहित है अथवा समक्ष है।

भावाकुल होकर कवि धरती के प्रति अपनी स्नेहिल भावना व्यक्त करता है साथ ही साथ अपने गौरव को लक्ष्य करके कहता है, यही मेरा तन, मन, और प्राण है मैं उस पर अपना गौरव प्रकट करता हुँ। और पुनः कहता है कि इसी धूल की ढेरी में मेरे अनजान मधुमय गीत छिपे हुए हैं।

उसी धरती पर कवि कुटिल काँटे वाला मार्ग पाता है और इस धरती पर ही अपने जीवन में आने वाली परेशानियां भी देखता है जिसमें उसे असफलता भी दिखलाई पड़ती है। कहीं-कहीं तो वह अपने को भयंकर परिस्थितियों के चक्र में घिरा हुआ पाता है, कहीं तो कठिन वृक्ष के जालों में और कहीं रात्रि और प्रातः पुष्पों की कलियों के चयन में। और उसी में वह अपने जीवन के अज्ञात तट को भी खोजता है। इसका तात्पर्य यह है कि वह अपने को संसार में एक पथिक की भांति ही समझता है न कि दार्शनिक की भाँति।

विशेष—भ्रमर की भाँति इस संसार में कवि भी अपने जीवन को निराश पाता हैं। यहां कवि का संकेत रहस्यात्मक भावना की ओर है।

अलंकार—उपमा, रूपक।

नवल कलिका........प्रतिदिन समीप खिच आया (पृ० ६१)

शब्दार्थ—सुरभि–सुगन्ध।

भावार्थ—कवि कहता है कि यह मनोरम बालिका नवीन कली के सदृश है। उसके सरलपन या भोलेपन से कवि ने अपने हृदय को सजा रखा था अर्थात् उसकी सरलता या भोलापन ही कवि हृदय में प्रवेश करके शृङ्गार बन गया था। नित्यप्रति वह उसके हृदय को अपने मधुर गीतों से उत्तेजित करता है। कवि कहता है कि मैंने उस अबोध मनोरम बालिका को कल्पनाओं की कल्पलता मानकर ही अपनाया है। उस भोली बालिका के हृदय में बहुत सी नवीन भावनाएँ पराग रूप में थीं, जिसे मैंने प्राप्त कर लिया। इस प्रकार मैं मन्द मुसकान के सदृश उस मनोरम बालिका के कोमल अधरों पर नाचता रहा और उसकी सुन्दर सुखदेने वाली धूलि से प्रतिदिन उसके समीप खिंचता ही गया। कहने का आशय यह है कि बालिका इतनी भोली-भाली सुन्दर थी कि उसकी सुन्दरता ने कवि को अपनी ओर आकृष्ट कर मोह-पाश में फँसा लिया।

विशेष—कवि की गहन कल्पना उक्त पंक्तियों में उभरी है।

अलंकार—उपमा।

पावस ऋतु———फैला है विशाल। (पृ० ६२)

भावार्थ—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि प्रकृति की सुन्दरता का चित्रण करता है। वहाँ पावस ऋतु विद्यमान थी और पर्वत प्रदेश की समस्त प्रकृति क्षण-क्षण में अपने

वेश को परिवर्तित कर रही थी। उस प्रकृति के सौन्दर्य में विशाल पर्वत की मेखलाकार अर्थात् करधनी वाला स्वरूप चारों ओर फैला हुआ था और उसी वन्य स्थली पर सहस्त्रों दृग के समान पुष्प खिले हुए थे ऐसा प्रतीत होता था कि मानों आँख फाड़ कर बार-बार नीचे के जल एवं अपने उस विशाल रूप को देख रहे हों। जिसके चरणों में ताल-पल्लवित हुआ वह दर्पण के समान शुभ्र एवं विशाल रूप में फैला हुआ है। इसका आशय यह है कि उस सरोवर में विशालकाय पर्वत का प्रतिबिम्ब पड़ता है उस प्रतिबिम्ब को देखकर, कवि को ऐसा लगा कि मानों पर्वत अपना रूप जल में देख रहा हो।

विशेष—पर्वतीय प्रकृति की सौन्दर्य छटा का सुन्दर वर्णन कवि ने किया है।

अलंकार—मानवीकरण, उपमा।

गिरि का गौरव......................मनोरम मित्र थी। (पृ० ६२)

शब्दार्थ—नीरव—शांत। भूधर—पहाड़। वारिद—बादल अंबर—आकाश जलद—बादल।

भावार्थ—उस मेखलाकार पर्वत के शिखरों से मोती के सदृश लड़ियाँ शुभ्र झाग से पूर्ण मंथर गति से नीचे की ओर प्रवाहित हो रही है तथा 'झर झर' की ध्वनि से ऐसा लगता है मानो पर्वत का गौरव गान गा कर उन पर्वतों के रोम-रोम में मादकता भर रही हों।

हिमालय के हृदय से उठ उठकर उच्च आकांक्षाओं से युक्त वृक्ष खड़े हुए हैं। उनकी दशा ऐसी है कि मानो एक टक अटल होकर किसी चिन्ताकी मुद्रा में शांत आकाश की ओर देख रहे हों।

कवि पर्वत की चोटी पर फैले हुए बादलों को विशाल परों के रूप में चित्रित करता है। उनके गर्जन से ऐसा लगता है कि वे आकाश में उड़े जा रहे हैं पर्वत पर अचानक छा गए हैं, और अब वे अपने परों के सहारे आकाश की ओर जा रहे है। झरने का शब्द ही शेष रह गया है। पर्वत एवं आकाश दोनों बादलों से घिर जाने के कारण ऐसे लग रहे मानो पृथ्वी पर आकाश टूट कर गिर पड़ा हो। हिमालय पर स्थित शाल के वृक्ष मानो भय के कारण पृथ्वी में धँस गए हों, उस ताल के ऊपर बादल धुएँ के सदृश उठ रहे हैं। यह दृश्य ऐसा लगता है कि मानो बड़वाग्नि हो। इस प्रकार जल्द यान पर चढ़कर इन्द्र मानो पृथ्वी और आकाश पर जादू का खेला खेलकर दिखा रहा हों।

कवि कहता है कि वह सरल मनोरम बालिका उस पर्वत की चोटियों को बादल का घर कहती है। इसका कारण यह है कि पर्वत चोटियाँ बादलों से निरन्तर घिरी रहती हैं। इस प्रकार से चित्रकार का हृदय वाह्य प्रकृति से बना हुआ है वही चित्र कवि हृदय को चमत्कृत करने लगा है। सरल शैशवावस्था की सुखद स्मृति से वह मनोरम बालिका मेरी सुन्दर मित्र थी अर्थात् कवि मन को हरने वाली थी।

विशेष—कवि ने प्रकृति के रमणीक वातावरण का चित्र वड़ी सजीवता के साथ खींचा है। झर झर में संगीतात्मकता है। वारिद के पर के प्रयोग से कवि की कविता में नवीनता है।

अलंकार—अनुप्रास, उपमा, रूपक।

मोह

संकेत—प्रस्तुत कविता तारापथ काव्य-संकलन की सबसे छोटी कविता है। कवि की कोमल एवं सुकुमार भावना प्रस्तुत कविता में चित्रित हुई है। कवि प्रकृति प्रेम में रम गया है और अब उसे प्रेमिका के रूप में ही चित्रित करता है। इसी प्रेम की भावना में कवि की रहस्य भावना भी समाहित है जो कवि को आगे बढ़ाने का संकेत करती है। प्रेम से युक्त रहस्य भावना के कारण ही कवि प्रकृति के विभिन्न रूपों का चित्रण वातावरण के अनुकूल ही करता जाता है। सुकुमार भावना की दृष्टि से कवि की सर्वोत्तम कविता कहीं जा सकती है।

छोड़ द्रुमों...............इस जग को (पृ० ६३)

शब्दार्थ—द्रुमों—वृक्षों, पेड़ों। भ्रू—भौंहें। अनमोल—अमूल्य।

भावार्थ—कवि कहता है—वृक्षों की कोमल छाया छोड़ दे और प्रकृति की माया से भी सम्बन्ध विच्छेद कर दे अर्थात् इनमें आशक्त न हो, क्योंकि इनका स्थायित्व नहीं है।

हे बाले! तेरे बाल जाल में अपने नेत्रों को कैसे उलझा दूँ? कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि मेरा प्रेम अब तुम्हारे प्रति गहन रूप में हो गया है इसलिए यह चाहता हूँ कि मेरे नेत्र सदैव तुम्हारी छवि पर ही गड़े रहें। और इस पार्थिव जगत को अभी से ही भूल जा, क्योंकि इस संसार में कोई वस्तु स्थायी नहीं है। अतः इसके प्रति आशक्त न हो।

कवि पुनः नवीन प्राकृतिक दृश्य को देखकर कहता है, सप्तरंगी इन्द्र धनुष और तरल-तरंगों को त्याग कर, तेरे भ्रू-भंगों से अपने मृग सदृश मन को किस प्रकार बिंधवा दूँ, क्योंकि यह मन बड़ा ही चंचल है, चारों ओर अपनी इच्छानुसार ही दौड़ता रहता है अर्थात् विचारों का एकीकरण नहीं होता है। इस संसार को अभी से ही भूल जा।

अब कवि कोयल एवं भ्रमर को देखकर कहता है—कोयल की मधुर एवं कोमल वाणी और मधुकर का गुंजार एवं वीणा की अमूल्य झंकार कहाँ? हे सजनि! बता, तब तेरे ही मधुर स्वर से कैसे राग भर लूँ? सुन! अभी से इस संसार को भूल जा। उषाकाल का समय है। उषा मुसकुरा रही है ऐसे ही समय नवीन पत्तियों पर अमृत रश्मि से युक्त जल उतर पड़ा है अर्थात् ओस के कण सुनहली किरणों के साथ नवीन किसलयों पर उषाकाल में विद्यमान हैं। नहीं, अधरामृत की मादकता में अपने जीवन

को कैसे बहला दूँ ? कवि की जिज्ञासा भावना सम्पूर्ण कविता में परिलक्षित होती है। इस संसार को अभी से ही भूल जा।

विशेष––कवि की कौतूहलता इस कविता में सर्वत्र है। यही छायावादी कवियों की विशेषता है। पंत जी की यह कौतूहलता सुकुमार भावना में प्रवाहित हुई है। शब्द-संगीत-भाव की दृष्टि से सम्पूर्ण कविता अति उत्तम है। 'वीणा' की 'प्रथम रश्मि' के समान ही 'पल्लव' की 'मोह' कविता की कलात्मकता देखी जा सकती है। प्रकृति के समस्त दृश्यों का चित्रण कवि ने कलात्मकता पूर्ण किया है।

मौन-निमन्त्रण

संकेत— 'तारापथ' काव्य संकलन की पाँचवी कविता है। आलोचकों ने इस कविता को छायावादी युग की सर्वश्रेष्ठ कविता मानी है। कवि ने प्रस्तुत कविता में प्रकृति के माध्यम से अपनी कौतूहलता प्रकट की है। इसी कौतूहलता में चिरन्तन शक्ति है। यह सत्ता कवि को आमन्त्रण देती है। कवि उस रहस्य को जानने के लिए अपनी उत्सुकता प्रकट करता है।

स्तब्ध ज्योत्स्ना——— मुझको मौन। (पृ० ६४)

शब्दार्थ—स्तब्ध–शांत। अजान–विशाल।

भावार्थ—कवि कहता है, जब संसार नीरव चांदनी रात में अबोध शिशु की भाँति डूबा रहता है और नींद के समय भिन्न-भिन्न प्रकार के सुन्दर एवं अनजान स्वप्न देखने लगता है तब ऐसी दशा में न जाने कौन मुझे नक्षत्रों के माध्यम से आमन्त्रण देता है। कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि समस्त संसार के सो जाने पर भी नक्षत्रों द्वारा चिरन्तन सत्ता का निमंत्रण साधक को मिलता है। क्योंकि यह तो स्पष्ट ही है कि ब्रह्म सदैव जाग्रत ही रहता है, वह सर्वव्यापी भी है।

विशेष––रहस्यात्मक भावना का आधिक्य।

अलंकार—उपमा।

सघन मेघों का............तब मौन !(पृ० ६४)

शब्दार्थ––भीमाकाश––विशाल आकाश। तमसाकार—अंधकार रूप। दीर्घ––बड़ा। प्रखर—तेज।

भावार्थ—कवि कहता है—अंधकाररूप वाले अत्यन्त घने बादलों से घिरे रहने के कारण आकाश भंयकर गर्जन करता है और वायु लम्बी श्वासें लेता है अर्थात् वायु तीव्र गति से प्रवाहित होती है तथा तेज वर्षा होने लगती है तब बादलों के बीच से विद्युत् सदृश् न जाने कौन मुझे अपनी ओर संकेत करता है अर्थात् न जाने कौन सी शक्ति है जो मुझे बुलाती है।

विशेष—साधक रूपी कवि आन्तरिक वेदना के कारण दीर्घ श्वासें ले रहा है।

देख वसुधा....................भेजता मौन ! (पृ०६४)

भावार्थ—कवि कहता है कि वसन्त ऋतु के आ जाने पर चारों तरफ पृथ्वी पर पुष्प ही पुष्प खिल पड़ते हैं और पुष्पों से हरीतिमा-युक्त धरती पर चारों तरफ भौंरे गुंजार करते हैं, तब ऐसा आभासित होता है मानो वसन्त ऋतु स्वयं ही पृथ्वी के यौवन-भार को देखकर मन ही मन गुंजार कर रहा हो। इस प्रकार जब पुष्प उच्छ्वास के साथ खिल पड़ते हैं तब न जाने कौन सुगन्धि के बहाने मुझे अपनी ओर बुलाने का सन्देश भेजता है?

क्षुब्धजल...............बुलाता मौन ! (पृ० ६४-६५)

शब्दार्थ—वात—वायु।

भावार्थ— हवा समुद्र को विक्षुब्ध कर, जल में ऊँची-ऊँची लहरें उठाती हैं और उन लहरों को मथकर फेनाकार बनाती हैं। इसका आशय यह है कि हवा के चलने के कारण सागर कीं लहरें सागर के बीच स्थित चट्टानों से टकराकर फेनाकार हो जाती हैं और उसके बाद बुलबुलों का एक व्याकुल संसार सा बन जाता है जिससे हवा कुछ देर के बाद विनष्ट कर देती है तब ऐसी दशा में लहरों-रूपी अपने हाथों को उठाकर न जाने कौन मुझे बुलाता है?

विशेष—रहस्य भावना कौतूहलता के साथ विद्यमान है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, उपमा।

स्वर्ण सुख—— ——मेरे मौन। (पृ० ६५)

शब्दार्थ—सौरभ-सुगन्ध, विहग-पक्षी।

भावार्थ—प्रातःकाल की सुन्दरता का चित्रण करता हुआ कवि कहता है—भोर का समय सारे संसार को स्वर्ण सुख, श्री तथा सुगन्ध से पूर्ण कर देता है। पक्षियों की कल-कल की ध्वनि आकाश से पृथ्वी तक व्याप्त हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता है

कि वह उन छोरों को परस्पर मिला रही हो तब न जाने कौन मेरी अलसायी पल्कों को शांति पूर्वक खोलते हुए अपनी उपस्थिति की प्रतीति करा देता है ?

विशेष—यहाँ कवि की रहस्य भावना ने उस सत्ता की प्रतीति कर ली है किन्तु फिर भी कौतूहलता बनी हुई है।

तुमुल तम में————तब मौन। (पृ० ६५)

शब्दार्थ—तुमुलतम—गहन अंधकार।

भावार्थ—जब रात्रि में समस्त जगत् घोर अंधकार में उसी के सदृश एकाकार हो जाता है अर्थात् समस्त संसार अंधकारमय हो जाता है, एक साथ निद्रा में ऊँघता रहता है तब झींगुरों की ध्वनि ही उस प्रशांति का हृदय चीरती हुई प्रतीत होती है, इसका तात्पर्य यह है कि झींगुर अंधकार और नीरवता से भयभीत होकर चिल्लाने लगते हैं। ऐसी स्थिति में उस समय न जाने कौन सी शक्ति है, जो जगमगाते हुए जुगुनुओं के आकार में टिम-टिमाकर मुझे पथ दिखलाती है ?

विशेष— कवि को यहाँ आशा और ज्ञान का आलोक प्राप्त हुआ है।

कनक छाया————दृग मौन।

शब्दार्थ—कनक छाया—स्वर्णिम समय। सकाल—उपयुक्त समय

भावार्थ—जब प्रातःकाल की सुनहली छाया में कलियाँ अपनी पंखुड़ियों के द्वार को खोलती हैं तब उनकी सुगन्ध से व्याकुल होकर मधुप-बाल कलिकाओं का रस पान करने के लिए इतना अधिक तड़प उठते हैं कि उनकी तड़पन गुंजार के रूप में व्यक्त होने लगती है। उस समय न जाने कौन नन्हीं-नन्हीं ओस की बूँदों के द्वारा मेरे आँखों को अपनी ओर खींच लेता है !

अलंकार—मानवीकरण।

बिछा कार्यों का———जग में मौन। (पृ० ६५-६६)

शब्दार्थ—आकुल—व्याकुल।

भावार्थ—कवि कहता है कि सम्पूर्ण दिन के विभिन्न कार्यों में तल्लीन होते हुए भी जब धीरे-धीरे दिन को स्वर्णिम रश्मियों का प्रकाश मिलता है और जब वह स्वयं थके तथा व्याकुल प्राणी को अधिक शांति देने के लिए शयन स्थल पर पहुँचकर ऊँघने लगता है तब न जाने कौन मुझे स्वप्न जगत् में घुमाता है ?

न जाने कौन———तुम हो कौन ! (पृ० ६६)

शब्दार्थ—द्युतिमान—कांतिमान। सहचर—मित्र, साथी।

भावार्थ—कवि उस चिरन्तन सत्ता या चिरन्तन शक्ति को, जो उसे मौन

निमंत्रण दे रही है, सम्बोधित करके कहता है कि वह नहीं जानता कि वह अलौकिक सौन्दर्यमयी शक्ति कौन है और वह साधक रूपी कवि यह भी नहीं समझ पाता कि उसे अबोध तथा अज्ञानी समझकर अनजान में वह उसे कौन-सा अपरिचित रास्ता दिखला रहा है। ज्ञान एवं प्रकाश के रास्ते पर लगाने के पूर्व उसके रोएँ-रोएँ में नव-जीवन का संगीत भर देता है।

कवि कहता है कि वह परम सत्ता शक्ति-पूर्ण है और वही सुख-दुःख का साथी है तथा वही उसके जीवन की समरसता, संगीत-तत्व आदि भरा करता है किन्तु वह शक्ति सदा मौन रहती है वह यह नहीं कह सकता कि वह कौन है !

विशेष—कवि ने ब्रह्म को चिरन्तन सत्य माना है तथा इसी सत्ता से समस्त ब्रह्माण्ड अनुप्राणित है।

छाया

सकेत—यह 'तारापथ' काव्य संकलन की छठवीं कविता है। यह 'परि-वर्तन' के बाद सबसे बड़ी है। कवि की कोमल भावनाएँ कलात्मकता के साथ यहाँ प्रकट हुई हैं। यहाँ भी कवि की कौतूहलता बनी हुई है। छाया को कवि विभिन्न रूपों में देखता है। पौराणिक कथाओं का भी कवि ने आश्रय ग्रहण किया है। कवि छाया से मिलकर शीघ्र ही अन्तर्धान हो जाना चाहता है। कवि की रहस्य भावना का परि-चय शुद्ध रूप में यहां मिलता है।

कौन, कौन...............दुख विधुरा-सी (पृ० ६६-६७)

शब्दार्थ—वात—हवा। वनिता—स्त्री। विजन—जन-हीन, निर्जन।

भावार्थ—कवि अपने हृदय की रहस्यात्मकता को कौतूहलता के साथ कहता है—तुम कौन परिहत वसना हो, मलिन धरती पर गिरी हुई सी हो। वायु के द्वारा सताई गयी लता के समान अलग प्रेम से थकी हुई ब्रज वनिता के समान कौन हो ?

भाग्य से वंचित, आश्रय-रहित, जर्जर, पद दलित सी धूल से भरी हुई, बालों से हीन तू किसके चरणों की दासी है ! कवि के कहने का आशय यह है कि हे छाया !

तू ऐसी परिस्थिति में पड़ी हुई है, मैं नहीं समझ पाता कि तू किसके चरणों की सेविका है जो छाया के रूप में यहां विद्यमान है।

अब यहां कवि पौराणिक कथा का सहारा लेकर उपमा के माध्यम से कहता है—तुम वृक्ष के नीचे सोई हुई हो। मुझे दुःख है, क्या तुम्हें कोई त्याग गया है ! हे सखी ! क्या नल के समान ही कोई निर्दयी था ! बताओ तुम दमयन्ती के समान कौन हो ! वस्तुत: कवि विभिन्न रूपों में छाया को देखता है।

पीले-पीले पत्तों की शय्या पर मूर्छितावस्था में त्यागिनी के सदृश निर्जन वन में, विरह मलिन दुःख विधुरा के समान पड़ी हो ! तुम कौन हो ? वास्तविकता तो यह है कि वृक्षों के नीचे जो छाया होती है वह पीले-पीले पत्ते जो उसी पेड़ से गिर कर काफी संख्या में रहते हैं उसी के दिखलाई पड़ते हैं, इसीलिये पीले-पीले पत्तियों की शय्या भी कवि कहता है।

विशेष—कौतूहलता समान रूप से सब जगह विद्यमान है।

अलंकार—उपमा। यह अलंकार चारों पदों में है।

गूढ़ कल्पना...............दिनरात ? (पृ० ६७)

शब्दार्थ—गूढ़—रहस्य। विस्मय—आश्चर्य।

भावार्थ—कवि अब रहस्य की गहन भावना को विभिन्न उदाहरणों के साथ व्यक्त करता है—कवियों की गूढ़ कल्पना के समान जो ज्ञात नहीं है उसके आश्चर्य के सदृश, ऋषियों के गम्भीर हृदय के समान और बच्चों की तुतली बोली के भयके समान, भू-पलकों पर स्वप्न जाल के सदृश स्थल सदृश जल की चंचलता के समान मौन आंसुओं के अंचल के समान गहन अन्धकार में समतल के सदृश, रास्ते पर थकी हुई द्रुपद सुता-सदृश अर्थात् द्रौपदी के समान आंसुओं के कारणों से दिन-रात अपने दुःखद चौदह वर्षों की प्रयास करती है, हे सखि ! तुम अज्ञात हो कौन छिपी हो अर्थात् मुझे इसका ज्ञान नहीं है।

विशेष—'गूढ़ कल्पना एवं ऋषियों के गम्भीर हृदय सी कहकर रहस्य की गहन भावना का परिचय दिया है। इसमें भावुकता की केवल उड़ान मात्र नहीं है। ऋषियों को ब्रह्म ज्ञान होने के कारण उनके हृदय में चंचलता नहीं रहती अर्थात् गम्भीरता रहती है। यहाँ उपमा कवि ने वर्णन क्रम के अनुसार ही व्यक्त की है।

अलंकार—उपमा।

तरुवर की...............छिपी अजान ? (पृ० ६७-६८)

शब्दार्थ—अविदित—अज्ञात । नियति—भाग्य ।

भावार्थ—अब कवि उस रहस्य की छाया की कविता की विभिन्न गतियों में देखता है । श्रेष्ठ वृक्षों की छाया अनुवाद के सदृश उपमा सदृश भावुकता के समान अज्ञात भावुकता की भाषा के समान और कटी छटी नवीन कविता केसमान पाश्चाताप के प्रतिबिम्ब के समान तुम धरती पर कौन छाई हो ? इसका तात्पर्य यह है जैसे कोई कवि किसी अज्ञात पदार्थ के प्रति भावाकुल हो जाता है तो उसकी भाषा में भी वही भावुकता दिखलाई पड़ती है जिसमें कौतूहलता भरी रहती है वैसे ही यह छाया दिखलाई पड़ती है । दुर्बल शरीर के समान, अपराधी के समान, भय से मौन होकर अर्थात् जैसे अपराधी भय से कांपता सा रहता हैं अर्थात् भय की छाया बनी रहती है वैसे ही यह छाया है । मदिरा की मादकता के समान वृद्धावस्था की याद के सदृश दर्शन की अत्यधिक जटिल गांठ के समान शैशवावस्था की निद्रित मुसकुराहट के समान, आशाओं के नवीन जादू की तरह हे सखि ! भाग्य के समान अन्तर्धान हो जाने वाली, वृक्ष के नीचे भविष्य की अज्ञात सी छिपी हुई तुम कौन हो ?

विशेष—दर्शन की ग्रंथि कठिनातिकठिन होती है । अधिक गहराई में जाने पर ही वह वस्तु ज्ञात हो पाती है । इसीलिए कवि ने छाया की उपमा दर्शन की जटिल ग्रन्थि से प्रस्तुत की है । भाग्य भी संसार में कार्य तो करता रहता है किन्तु वास्तविक रूप को नहीं प्रकट करता है छायामात्र दृष्टिगत कराकर अन्तर्धान हो जाता है अर्थात् छिप जाता है रहस्य बना ही रहता है इसीलिए कवि ने छाया के सादृश्य के कारण भी व्यक्त किया है ।

अलंकार—उपमा ।

चिर अतीत...........अकरुण इतिहास ? (पृ० ६८-६९)

शब्दार्थ—नीरवता—स्तब्धता । वीचियों—उर्मियों । क्रूर—निर्दय । अकरुण—दयाहीन ।

भावार्थ—प्रस्तुत प्रसंग में भी कवि उस छाया को विभिन्न रूपों में देखता है किन्तु रहस्य की कौतूहलता पहले की तरह ही बनी हुई है । चिरकाल की भूली हुई स्मृति के समान, शांति के झंकार के समान, आंखमिचौनी के खेल की असीमता की तरह निर्जन उद्गार के समान परियों की जलहीन सरसी की तरह जहां वन की देवियाँ विहार करती हैं और लुक-छिप कर छाया के जल में तथा वायु की लहरों में

सुकुमारता प्रकट करती हैं और तुम तो शंकर के नेत्र के चित्र की तरह हो, यहां प्रातः काल कहां से उतरी हो ? संसार की नेपथ्य भूमि के समान, संसार के विदूषक की भांति अज्ञात हो। हे सखि ! तुम किस रहस्यमय अभिनय की सुकुमार यवनिका हो। इसी भेद्य रहित पर्दे के भीतर किस विचित्रता का संसार दिखलाई पड़ रहा है।

शूनसान मानस पट पर बार-बार ठन्ढी सांस के रूप में और क्या तुम लुक-छिप कर निर्दयहीन काल का दयाहीन इतिहास लिखती हो ?

विशेष—चिर अतीत की विस्मृति सी का तात्पर्य यह है कि जैसे प्राचीन काल की किसी वस्तु या आकार के रूप का स्मरण छाया की भांति ही रहता है इसीलिए छाया के सादृश्य होने के कारण कवि ने उपमा व्यक्त की है। 'आंखमिचौनी सी असीम की' में भी छाया का असीम रूप ही विद्यमान है। 'तुम त्रिभुवन के नयन चित्र सी' में शंकर के तीसरे नेत्र का उल्लेख है। शंकर की तीसरी आंख अदृश्य है। छाया के साथ इसका संयोग अच्छा बैठता है। इसीलिए कवि ने इसका उल्लेख किया है। 'जगती की नेपथ्य भूमि सी में संसार की विशालता का रूप समाहित है किन्तु इसमें अदृश्यता है। इसी प्रकार उक्त समस्त पंक्तियों में रहस्यात्मकता ही भरी हुई है।

अलंकार—उपमा।

सखि ! भिखारिणी............लालसाओं से भरा। (पृ० ६९)

शब्दार्थ—प्रमुदित—प्रसन्न। अतीत—पुराना।

भावार्थ—हे सखि ! भिखारिणी के समान मार्ग पर अपने अंचल को फैला कर सूखे पत्ते अर्थात् रूखे-सूखे को पाकर भी प्रत्येक क्षण प्रसन्न रहती हो।

पत्रों के अस्फुट अधरों से अर्थात् जो ध्वनि स्पष्ट नहीं है उससे भी सुख-दुःख के गान इकट्ठा करती हो क्या तुम अपनी समस्त इच्छाओं को सुला चुकी हो अर्थात् कामनाहीन हो गई हो यह तुम्हारी महानता है।

काल की वायु की कुंचित गति से बार-बार काँपती हुई, अपने जीवन के मलिन पृष्ठासन पर विराजमान होकर भी शांत शब्दों में ही निर्भर हो जाती हो।

तुम किस अतीत के कारुण्य दृश्य का चित्रांकन अधिक कोमल रूप में कर रही हो और उसमें भग्न-भावना, जनहीन वेदना तथा असफल लालसाएँ भरी हुई हैं।

विशेष—कवि की रहस्य भावना विभिन्न रूपों में प्रकट हुई है। भाव-भाषा का स्वाभाविक रूप ही दिखलाई पड़ता है।

अलंकार—उपमा।

ऐ अवाक्——स्थिति हीन ?

शब्दार्थ—भारति-वाणी, सरस्वती। आलोक-प्रकाश। संसृति–सृष्टि।

भावार्थ—हे अवाक्! निर्जन की वाणी, काँपते हुए अधरों के कारण अनजान सी लगती हो। रहस्य के मधुर गीत, चिर गाथा, इस जंगल में किस सुर-लय के साथ तुम गाती हो। हे अस्पृश्य, अदृश्य अप्सरसि! यह तुम्हारा छाया का शरीर और छाया का लोक है। हे मायाविनि! अपने हृदय की आँखों के प्रकाश को मुझे भी दे दो। सैकड़ों नेत्र प्रतिदिन खोलती है, विशाल पलकों को खोलकर थके हुए यात्रियों का क्या तुम बारंबार स्वागत करती हो! थके हुए पैरों के निशान अपनी स्तब्धता की उत्सुकता से भर कर दिखा रही हो या पर सेवा का मार्ग संसार में अमर है, इसलिए दिखा रही हो। छाया के बढ़ जाने और छट जाने से कवि कहता है कभी लोभ के कारण लम्बी हो जाती हो, कभी संतोष प्राप्त कर पतली हो जाती हो, क्या सृष्टि की अचिर भूति तुम्हीं हो? हे सजनि! क्या स्थिति हीन होकर समस्त संसार को नाप लेती हो?

श्रमित...कर मदहीन! (पृ० ६०-६१)

शब्दार्थ—पावन-पवित्र। अपार-विशाल, असीमित।

भावार्थ—क्या थके हुए, धूप से संतप्त यात्री को देखकर मलिन या दीन सी रहती हो! हे विटपी की व्याकुल प्रेयसि! संसार की वेदना में तुम तल्लीन रहती हो।

सूर्यकुल से दिव्य जन्म लेकर और बढ़कर नित्य श्रेष्ठ वृक्ष के साथ, मुरझाये हुए अर्थात् कांतिहीन पत्तों की साड़ी के समान यानी प्रकाशहीन वस्त्र के समान अपने कोमल अंगों को ढँक कर, वृक्ष के पुष्पों से सुन्दर उपदेश लेकर हृदय के सुरभित हार को गूंथती हो तुम दूसरों की सेवा में सदैव तल्लीन रहती हो और नित्य ही तुम विशाल या बड़ी थकावट को हर लेती हो।

हे सखि! इस पवित्र अंचल से मेरे मुख को भी ढंक कर अपनी विस्तृत सुख देने वाली गोद में क्षण भर के लिए सो जाने दो।

जैसे अँगड़ाई के द्वारा शिथिलता चूर-चूर हो जाती है अर्थात् खत्म हो जाती है ठीक वैसे ही अँगड़ाई के द्वारा अपनी शिथिलता समाप्त हो जाने दो, अपने में लीन कर लो। मुझे भी मद हीन बनाकर दूसरे की पीड़ा में दुःखी होना सिखा दो।

विशेष—कवि छाया में ही जगत् का वास्तविक सुख पाता है, इसीलिए छाया की भाँति बनने की इच्छा प्रकट करता है।

अलंकार—उपमा।

गाओ——अन्तर्धान ! (पृ० ६१)

शब्दार्थ—विहग-पक्षी। द्रुत-शीघ्र।

भावार्थ—हे विहग बालिके ! श्रेष्ठ वृक्ष से कोमल मंगल गान गाओ। मैं भी तुम्हारी छाया में बैठकर तुम्हारे ही कोमल स्वर में स्नान कर लूँ अर्थात् मेरे रोम-रोम में यही कोमल स्वर गूँज उठे।

हाँ, सखि ! आओ, बाँहे फैलाकर हम दोनों गले से मिलकर अपने-अपने प्राणों की पिपासा को दूर कर लें। पुनः तुम अंधकार में और मैं प्रियतम में शीघ्र ही अंतर्धान हो जाँय।

विशेष—यहाँ कवि की रहस्यात्मक भावना का सच्चा स्वरूप दिखलाई पड़ा है। कवि उस छाया में किस प्रकार से अपने प्राणों की प्यास को सहज भाव से मिटाता है। यह कवि की विशेषता है।

बादल

संकेत—यह 'तारापथ' काव्य संकलन की सातवीं कविता है। कवि ने बड़ी कलात्मकता के साथ बादल को सजीव रूप में चित्रित किया है।

सुरपति के——जाता ऊपर। (पृ० ७२)

शब्दार्थ—सुरपति-मघवा इन्द्र। शिखी-मोर। रोमिल-रोएँदार।

भावार्थ—बादल अपना वर्णन कर रहे हैं–हम इन्द्र के अनुचर और जगत्–प्राण के भी साथी हैं तथा कवि कालिदास ने अपने काव्य 'मेघदूत' में हमको अपनी सजल कल्पना का आधार भी बनाया, इतना ही नहीं हम प्रिय चातक के जीवन प्राण भी हैं अर्थात् उसके प्राणों की रक्षा भी करते हैं।

हमें देखकर मुग्ध हुए मयूर मनोहर नृत्य करने लगते हैं हम ही 'स्वाति' के सुन्दर मुक्ताकर हैं और पक्षि-वर्ग के विधाता तथा कृषक बालिका के लिए हम बादल हैं कहने का तात्पर्य यह है कि कृषि के लिए हम भी जल बरसाते हैं।

जिस प्रकार दिनकर जलाशयों में पंकज दलों को नित्य विकसित करता है उसी प्रकार वह हमें भी प्रकाशित करता है। प्रकाश का प्रतिबिम्ब जलाशयों में पड़ता है।

जिस प्रकार सरोवर पहले तो कमलों को एकत्रित कर साथ खेलता है किन्तु बाद में बिखरा देता है, ठीक उसी प्रकार बालक के समान वायु भी हमें चुनकर शीघ्र ही बिखरा देती है।

जब सागर अपनी छोटी-लहरों के पलने में हमें झुलाती है तब हवा चील पक्षी की भाँति अचानक आकर हमारी बाँहों को पकड़ कर ऊपर आकाश में उड़ा ले जाती है।

विशेष—कवि ने 'बादल' के लिए गौरव युक्त उपमान ही प्रयोग किए हैं।

अलंकार—मानवीकरण।

भूमि गर्भ———नभ में तरते। (पृ० ७२-७३)

शब्दार्थ—नीरवता-स्तब्धता।

भावार्थ—बादल कहते हैं, वे उन पक्षियों के सदृश हैं जो धरती के गर्भ में छिपकर कोमल एवं रोएँदार पंखों को फैलाकर, असंख्य अस्फुट बीजों को सजीव रखते हैं यही कारण है कि बीजों में सजीवता एवं गति शीलता पूर्ण रूप से रहती है जिसके कारण मिट्टी की जड़ता का प्रभाव उन पर नहीं पड़ता है।

जिस प्रकार विपुल कल्पना त्रिभुवन के विभिन्न रूप धारण करती है उसी प्रकार बादल भी विविध-रूपों से आकाश की गोद भरते हैं तथा स्वच्छन्दता पूर्वक आकाश के हृदय पर खेलते रहते हैं।

कवि कहता है कि बादल कह रहे हैं—कभी तो हरिण के समान चौकड़ी भरते हैं, धरती पर चरण भी नहीं रखते, मदमस्त हाथी की तरह कभी झूमते हुए सजग शशक को आकाश में चरते हैं अर्थात् जाग्रत अवस्था वाले चन्द्रमा को बादल ढँक लेते हैं।

कभी तो कीश-से वायु युक्त डालों में स्तब्धता से मुँह भरते हैं और कभी बड़े गृद्ध की तरह विहग छदों को बिखराते हुए आकाश को पार करते हैं।

विशेष—भाषा एवं भाव में सजीवता है।

अलंकार—उपमा।

कभी अचानक———वातुल चोर। (पृ० ७३-७४)

शब्दार्थ—विकट-कठिन। महा-आकार-विशाल रूप। ज्योत्स्ना-चाँदनी। इन्दु-चन्द्रमा। तिमिर-अंधेरा।

भावार्थ—बादलों का कहना है कि कभी वे अचानक भूतों के समान भयंकर विशाल आकार प्रकट कर देते हैं। और जब हम कड़क-कड़क कर गरजते हैं तब सारा संसार भय से काँप उठता है।

कभी-कभी परियों के बच्चों के समान सीप के सुन्दर पंख को फैलाकर पवित्र चाँदनी में चन्द्रमा के सुकुमार किरणों को पकड़ कर, आकाश-सागर में तैरते हैं।

हम आकाश सागर में वायु को विलोड़ित करके चारों ओर प्रलयात्मक नाद से उमड़-उमड़ कर लहराते हुए, घनघोर अंधकार करके, ओलों की वर्षा करते हैं।

बात-बात में अर्थात् क्षण में विशाल रूई के समान आकाश रूपी वृक्ष से भटक करके, झकझोर करके, वह अपने दल बल के साथ वातुल चोर प्रवेश करके, शीघ्र ही हमें उड़ा ले जाता है।

विशेष—शब्दों का प्रयोग अति उत्तम हुआ है। संगीतात्मकता का प्रवाह दिखलाई पड़ता है।

अलंकार—रूपक।

बुद्‌बुद द्युति——वायु विहार। (पृ० ७४)

शब्दार्थ—विद्युद्दाम-बिजली की रस्सी। विशिख-बाण। आसार-वृद्धि। आयुध-औजार।

भावार्थ—बादलों का कहना है कि आकाश में टिमटिमाते हुए तारों के समूह अंधकार रूपी यमुना के श्याम जल में डूब जाते हैं और जबाल-जाल की भाँति हम विशाल रूप में बढ़ते जाते हैं और तारों को अपने में ही ढक लेते हैं अर्थात् छिपा लेते हैं।

केवल इतना ही नहीं, जैसे दमयन्ती के पास पहुँच कर स्वर्ण-हंस ने प्रिय का अर्थात् राजा नल का सन्देश सुनाया वैसे ही बादल भी चाँदनी में कोमल ध्वनि करते हैं अर्थात् ज्योत्स्ना को संदेश सुनाते हैं।

कभी वे बादल पहाड़ों से भयंकर संघर्ष करते हैं और कभी कुपित होकर दोनों भौंहें चढ़ाकर शीघ्र ही इन्द्र धनुष को खींच लेते हैं ऐसी स्थिति में उन बादलों की गर्जन भयंकर पटह (एक बाजा) की ध्वनि के समान लगती है और वे अति वृष्टि द्वारा बाण चलाते हैं।

अति भीमाकार अर्थात् अति विशाल रूप धारण करके वज्रायुध से इन पर्वतों

को चूर-चूर कर देते हैं तथा उसके पश्चात् हम इन्द्र की सेना के समान मदमत्त होकर नित्य स्वच्छंद रूप से हम उस पर विहार करते हैं।

विशेष—पौराणिक कथाओं का उल्लेख करके, कवि ने भारतीय संस्कृति के प्रति अपना प्रेम दिखाया है।

अलंकार—रूपक, उपमा।

वर्ण भृग——————मारुत से वात। (पृ० ७४-७५)

शब्दार्थ—अनिल-हवा।

भावार्थ—बादलों का कहना है कि सुनहले भृंगों से गुंजित तारावलियों से प्रकाशित तथा तरल, रसाल मधुगृह से हम आकाश पटल पर विशाल रूप में तथा असंख्य संख्या में लटके रहते हैं।

जालिक के समान वायु आ गई नीले आकाश रूपी जल में हमारा जाल फैलाया था अचानक उन्हें फिर मीनों के चंचल बाल की तरह फँसा लिया अर्थात् मीन अपनी बाल चंचल के कारण ही जालिक के जाल में फँस गई है।

जब आकाश रूपी विपिन में नवीन पल्लवों से युक्त प्रभात वसन्त के समान शोभा पाता है तब हम वायु के प्रवाह में बहने लगते हैं और तमाल के काले पत्ते अंधकार के समान गिर पड़ते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वसन्त आगमन के कारण पुराने पत्ते गिर पड़ते हैं और नवीन पत्ते निकल पड़ते हैं यह दृश्य ऐसा लगता है मानो तमाल वृक्ष के काले पत्ते अर्थात् मुरझुराये पुराने पत्ते अन्धकार के समान गिर गए हों।

कवि अब प्रातःकाल का चित्र खींचता है—उदयाचल से बाल सूर्य आकाश में तीव्र गति से उड़ता हुआ प्रतीत होता है तब हम भी अपने स्वर्णिम पंखों को फैलाकर शीघ्र ही वायु से बातें करते हैं।

विशेष—कवि ने आलंकारिक वर्णन किया है।

अलंकार—उपमा, रूपक।

सन्ध्या का.......... ...चारों ओर (पृ० ७५-७६)

शब्दार्थ—बाड़व—बडवाग्नि। व्योम—आकाश।

भावार्थ—सन्ध्या का मादक पराग पान कर मलिन्दों के समान आनन्द से झूमते हुए आकाश के नीले कमल में निर्भयता पूर्वक विमुग्ध होकर हम विश्राम करते हैं।

बादल पुनः कहते हैं—बडवाग्नि की अग्नि के समान सान्ध्य सागर में उसकी अविराम गति को सोख लेते हैं और आकाश में उसके रत्न निकाम को तारावलियों के समान बिखरा देते हैं।

कभी तो हम गगन में इस प्रकार शनैः शनैः उठते हैं जिस प्रकार मानव हृदय में संशय धीरे-धीरे आता है और जिस तरह अपकीर्ति शीघ्र ही फैलती है उसी प्रकार आकाश में हम भी एक किनारे से दूसरे किनारे तक फैल जाते हैं। मानव हृदय में जिस प्रकार स्नेह उमड़ा करते हैं वैसे ही हम भी रात्रि एवं प्रातः आकाश में उमड़ा करते हैं। जैसे मानव हृदय में लालसाएँ भरी रहती हैं। वैसे ही मेरे हृदय में भी लालसाएँ भरी रहती हैं।

कभी वे गगन रूपी मानव की इन्द्र धनुष सदृश भृकुटियों पर मूक चिन्ता की भांति छा जाते हैं और कभी तूफान की शंका से घोष करते हुए द्रुतगति से चारों ओर फैल जाते हैं।

विशेष—आलंकारिक सजीव चित्र उपस्थित किया है।

अलंकार—उपमा, रूपक, मानवीकरण।

पर्वत से..........जल डाल! (पृ० ७६)

शब्दार्थ—सहसा—अचानक। विभव—ऐश्वर्य। त्वरित— शीघ्र।

भावार्थ—बादल कह रहे हैं कभी पर्वत कभी धूलि बन जाते हैं कभी धूल से पर्वत, कभी क्षण में साकार। काल-चक्र के कारण उत्थान/पतन होता रहता है कभी हम ऊपर चढ़ते हैं तो कभी नीचे कभी क्षण में जलधर बन जाते हैं तो पुनः क्षण में जलधार।

बादल पुनः कह रहे है कि कभी तो हम हवामें महल बनाया करते हैं और कभी स्वयं महल बन जाते हैं, कभी आकाश में पुल बांधा करते हैं और कभी हम अपाररूप में ऐश्वर्य एवं सम्पत्ति की भाँति अचानक विलीन हो जाते हैं जैसे ऐश्वर्य एवं सम्पत्ति का जीवन अस्थायी अर्थात् क्षणिक होता है वैसे ही मेरा।

बादल कहते हैं कभी नग्न आकाश की शाखाओं में वे मकड़ी के जाल के समान फैल जाते है कभी हम आकाश में पतंग की भाँति सूर्य को भी उसी समय उलझा लेते है।

फिर कभी आकाश के हृदय की करुणा से द्रवीभूत होकर शीघ्र ही आतप से मूर्छित कलियों को हिम जल डाल करके हम सजीव कर देते हैं अर्थात् प्राणवान कर देते हैं।

विशेष—प्रकृति का सजीव चित्र कवि ने खींचा है।

अलंकार—उपमा।

हम सागर............कल्पना महान। (पृ० ७६-७७)

शब्दार्थ—वसन—वस्त्र। अवनि—पृथ्वी। पांशुल—धूल से युक्त

भावार्थ—बादल कहते हैं कि हम ही सागर के निर्मल हास जल के धुएँ गगन के धूल कण, वायु के फेन उषा के पल्लव, जल के वस्त्र और धरती के मूल तत्व के सदश है।

बादल कहते हैं हम ही आकाश में पृथ्वी-पृथ्वी में आकाश हैं अर्थात् हम ही गगन में पृथ्वी का निर्माण करते हैं पृथ्वी पर आकाश ला देते हैं। हम ही जल के भस्म हैं अर्थात् भाप है हम ही वायु के फूल है। हम ही जल में स्थल हैं और स्थल में जल। हम ही दिन में अन्धकार और अग्नि की रुई हैं।

बादल कहते हैं वे आकाश की लता ताराओं की गति, चंचल पर्वत, गगन के संगीत, अपलक तारों की तन्द्रा, ज्योत्स्ना के हिम, चन्द्रमा के रथ हैं।

वायु की धेनु दिनकर के धूल से धूसरित श्रम जल और अग्नि के समन्वित वितान व्योम की पलक जल के पक्षी प्रवाहित स्थल तथा समुद्र की महान् कल्पना भी हैं।

विशेष—लाक्षणिकता एवं अलंकारिकता के प्रयोग नाद सौन्दर्य की छटा तथा बादलों के ध्वनि के चित्र अधिक उभरे हैं।

अलंकार—उपमा, उत्प्रेक्षा, तथा मानवीकरण '

धम धुंआरे.........घनश्याम अमर।

शब्दार्थ—कामरूप—इच्छानुसार रूप बदल।

भावार्थ—बादल कह रहे हैं धुएँ से धूसरित काजल के समान काले हम ही विकराल बादल हैं। हम ही कामदेव के शासनके वीर बहादुर और पावस के उड़ते हुए फणिधर हैं।

बादल कह रहे हैं हम ही चमक झमक से युक्त वशीकरण मन्त्र हैं। हम ही छहर घहरमय विष सीकर हैं। हम ही स्वर्ग के पुल से इन्द्र धनुष को धारण करने वाले हैं और हम ही इच्छानुसार रूप बदलने वाले अमर घनश्याम हैं।

विशेष—बादल के लिए गौरव युक्त उपमानों के प्रयोग कवि द्वारा हुए हैं। इसके कारण ही बादल कविता सौन्दर्ययुक्त हो गई है।

परिवर्तन

संकेत—'तारापथ' काव्य-संकलन की नवीं कविता 'परिवर्तन' है। यह कविता आकार की दृष्टि से 'तारापथ' काव्य-संकलन की समस्त कविताओं में बड़ी है। इसमें कवि का आवेश तथा भावों का प्रवाह देखा जा सकता है।

कहाँ आज.. ....भ्रू-पात। (पृ० ८१-८२)

शब्दार्थ—दिगंत—अधिक व्यापक। अभिसार—मिलन। प्रथमोद्गार—प्रथम विचार। दुरित—पाप।

भावार्थ—कवि का कहना है कि जगत् का वह ऐश्वर्ययुक्त प्राचीनकाल कहाँ चला गया जबकि पृथ्वी अधिक व्यापक वैभव से पूर्ण थी। सब जगह शोभा के जल फैले हुए थे।। इसका तात्पर्य यह है कि जगत् चारों ओर शोभाशाली रूप में दिखलाई पड़ता था। उस समय का वर्णन कवि करता है जब मनुष्य का ज्ञान इतना परिपक्व एवं बढ़ा हुआ था कि इसका प्रकाश धरती के ऊँचे भाल को चूमता था।

जिस प्रकार कोई व्यक्ति युवाकाल में विकास एवं उमंग का अनुभव करता है। उसी प्रकार पृथ्वी भी उत्कर्ष का अनुभव कर रही थी। यह दृश्य ऐसा लगता था मानो स्वर्ग की सौन्दर्य-छटा साभार पूर्वक पृथ्वी पर अभिसार कर रही हो अर्थात् खेल रही हो। पुष्पों का सौन्दर्य भी चिरन्तत था और उसकी सुगन्ध से आकर्षित स्वर्ण-भृंग उन पर मँडराते थे। भ्रमरों की गूँज ही मानो सृष्टि के प्रथम उद्गार थे। उस समय नग्न सुन्दरता भी सुकुमार जान पड़ती थी और लोगों के पास ऋद्धि और सिद्धि असीमित थी अर्थात् समस्त जगत् ऐश्वर्य सम्पन्न था।

कवि कहता है कि वह प्राचीन युग जो इस विश्व के स्वर्ण स्वप्न की तरह सुहावना था और सृष्टि का प्रथम प्रभात था। वेद विख्यात वह सत्य भी न जाने कहाँ चला गया। वैदिक युग में पाप, दुःख और दीनता आदि नहीं थे अर्थात् इनसे उस समय के लोग अपरिचित थे तथा इसके साथ ही वृद्धावस्था मृत्यु और भ्रू-पात आदि से भी अपरिचित थे अर्थात् इसका ज्ञान नहीं था।

विशेष—कवि ने वैदिक युग को स्वर्णयुग के रूप में चित्रित किया है। काव्य-शैली का उत्कृष्ट उदाहरण परिवर्तन कविता में ही है।

हाय ! सब............... हाहाकार ! (पृ० ८२-८३)

शब्दार्थ—मधुमास—वसन्तऋतु । कंकाल—ठूँठा, अस्थिकाय ।

भावार्थ—कवि क्षणभंगुरता पर विचार करता हुआ व्यक्त कर रहा है—अब तो वैदिक युग की सत्यता अर्थात् स्वर्णयुग मिथ्या ज्ञात होती है । इस भौतिक संसार में परिवर्तन ही परिवर्तन दिखलाई पड़ता है। आज वह सुगंधित वसन्तऋतु नहीं रही अब तो शिशिरऋतु सूनी श्वासें भर रही है। वही वसन्त ऋतु जिसकी शाखाएँ यौवन के भार से झुकी हुई थीं अर्थात् पुष्पों से लदी हुई थीं, जिस पर भ्रमर गुंजार करते थे किन्तु वही अब दरिद्रता एवं शून्यता को देखकर स्वयं कांप उठी हैं और उन्हें अपना जीवन भी भार स्वरूप लग रहा है।

पावसऋतु में जो सरिताएँ उमड़-घुमड़ कर अपने उद्‌गार प्रकट करती थीं, उन सबका स्रोत अब सूख गया है; उनमें अब वह तीव्रगति से उठने वाली लहरें नहीं रहीं। इतना ही नहीं प्रातः काल की स्वर्णिम रश्मियों से युक्त संसार को ग्रह्म-काल अपनी ज्वाला में झुलसा देता है।

सम्पूर्ण यौवन का आकर्षण, रंग का उभार सभी कुछ क्षण मात्र में ही केवल अस्थियों के ढांचे मात्र रह जाते हैं। काले सर्पों की भाँति काले एवं चिकने बाल युवावस्था के समाप्त होते ही सर्प की केंचुल, कांस, सिवार आदि में परिवर्तित हो जाते हैं अर्थात् श्वेत, सूखे दिखलाई पड़ते हैं। इस प्रकार युवावस्थाका आनन्द दो ही चार दिन रहता है उसके पश्चात् दुःख ही दुःख छा जाता है।

विशेष—कवि ने नश्वरता का चित्रण किया है। भाषा, भाव में कलात्मकता है।

आज बचपन............काँटों-से हाय ! (पृ० ८३-८४)

शब्दार्थ—विधुर—उल्लासहीन । कल्प—अनन्त ।

भावार्थ—कवि का कथन है कि बचपन का कोमल शरीर अब वृद्धावस्था के पीले पत्ते के समान निर्जीव हो गया है। चार दिन की सुखद चांदनी का आनन्द प्राप्त होता है उसके पश्चात पुनः अंधकार दिखलाई पड़ता है अर्थात् चाँदनी रूपी यौवनावस्था के पश्चात् अंधकाररूपी वृद्धावस्था का आना अनिवार्य है, क्योंकि यह प्रकृति नियम है।

कवि का कहना है कि युवावस्था में ही वियोग के पल आते हैं। इसका फल यह होता है कि सुन्दर एवं कोमल फूलों के सदृश् गाल (कपोल) मुरझा जाते हैं और प्रेमी-प्रेमिका के चंचल अधर जो प्रणय-चुम्बनों से पूर्ण थे वे अब विरह की अवस्था में अलग-अलग हो जाने पर ऐसे लगते हैं कि मानो वे एक दूसरे को भूल ही गये हों।

जहाँ कोमल अधरों पर हँसी झलकती थी, वहाँ अब विरह के कारण वह

उज्जवल हँसी निःश्वासों की उष्णता से उसी प्रकार सूख जाती है, जिस प्रकार प्रभात की चमकती ओस को लू के झोंके सुखा देते हैं। और शरदऋतु के आकाश-मण्डल की तरह स्वच्छ सरल भौंहों के आकाश को विरह के घने बादल अर्थात् बवण्डर घेर लेते हैं तथा उनकी स्वच्छता एवं प्रफुल्लता समाप्त हो जाती है।

कवि का कहना स्वाभाविक है। वियोगावस्था में मानव की प्राकृतिक प्रफुल्लता गंभीरता में परिवर्तित हो जाती है, क्योंकि वियोग तो स्वयं ही विधुर है अर्थात् उल्लास -हीन है इसलिए वह अधरों के मधुर संयोग को देखना ही नहीं चाहता। यही कारण है कि मधुर मिलन का स्वर्णिम समय ही नहीं आने देता।

मिलन के पल तो केवल दो-चार ही होते हैं किन्तु विरह के अपार कल्प। इसका तात्पर्य यह है कि संयोग का समय थोड़े समय ही विद्यमान रहता है और वियोग का अनन्त काल तक। यही कारण है कि वियोग का समय अधिक कष्टदायी होता है।

कवि कह रहा है कि प्रेम के आरम्भ में प्रेमी-प्रेमिका के नेत्र अधिक आकृष्ट थे और रूप माधुरी में पलकें लगती ही नहीं थीं किन्तु वही आज उनके नेत्र अपलक प्रतिक्षण आंसुओं से पूर्ण रहते है; वे ऐसा करने के लिए विवश हैं। संयोगावस्था में परस्पर आलिंगन रोमांचपूर्ण होता था किन्तु आज वही कसक काँटों की चुभन के समान है।

विशेष—कवि ने उक्त प्रसंग में अपनी गहन भावनाएँ प्रकट की हैं जिसमें जगत् का नश्वर स्वरूप वर्णित है। भाषा-शैली एवं भाव की दृष्टि से ये पंक्तियाँ अधिक श्रेष्ठ हैं।

अलंकार—उपमा।

किसी को.........चुपचाप बयार! (पृ० ८४)

शब्दार्थ—तत्काल—उसी समय।

भावार्थ—कवि संसार के अपने अनुभव प्रकट करता है। समस्त संसृति में सुख दुर्लभ है और उसके प्रत्येक-कण में व्यापक दुःख ही समाहित है। इसलिए यदि किसी को सुख, ऐश्वर्य आदि प्राप्त हो जाय तो उसे यह न सोचना चाहिए कि ये सब स्थायी हैं। कवि कहता है, यह सच है कि ये सब मानव को ऋण रूप में ही प्राप्त हुए हैं। कालरूपी महाजन इतना निर्लज्ज एवं निर्दयी है कि वह कुछ समय बाद दुःख के रूप में ब्याज वसूल कर लेता है जो ब्याज मूलधन से अधिक होता है।

संसार का समस्त नश्वर ऐश्वर्य जो विपुल मणि रत्नों के छवि जाल सा फैला हुआ है और जिसकी काँति की छटा इन्द्र धनुष की तरह एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली हुई है। वह ऐश्वर्य विद्युत की ज्वाला की भाँति चमक उठता है और तत्काल ही विलीन भी हो जाता है। जिस प्रकार ओस के कण शाखाओं पर मोतियों के सदृश् सुशोभित होते हैं किन्तु शीघ्र ही वायु के प्रवाह बिखेर देते हैं, इसका तात्पर्य यह हुआ कि संसार के समस्त आकर्षण अस्थायी हैं और मानव जीवन का अस्तित्व भी अस्थायी है अर्थात् इसका भी बिखराव हो जाता है।

विशेष—'जगत् मिथ्या ब्रह्म सत्यम्' का सिद्धान्त यहाँ दृष्टिगोचर होता है।

खोलता इधर············उठते उडुगन ! (पृ० ८४)

शब्दार्थ—उडुगन—तारे।

भावार्थ—कवि जन्म एवं मृत्यु के विषय में अपने विचार प्रकट करता है। मनुष्य-जीवन जन्म एवं मरण के दो किनारों में ही सीमित है। एक तरफ जन्म अपने लोचन खोल रहा है तथा दूसरी तरफ मृत्यु क्षण-क्षण में अपने नेत्र बंद कर रही है, यही गतिशील संसार का नियम है। यह जगत् अधिक विचित्रता से भरा हुआ है क्षणमात्र में दुःख-सुख में परिवर्तित हो जाता है, तभी उत्सव कार्य सम्पन्न होता है, हँसी-खुशी मनायी जाती हैं किन्तु संसार का चक्र ऐसा है कि शीघ्र ही दुःख अश्रु उच्छ्वास में परिणति हो जाता है।

अब जगत् की नश्वरता को देखकर कवि कहता है, आकाश भी संवेदनशील होकर दुःख का उच्छ्वास भरता है और ओस-बूँदों के रूप में नीला आकाश भी आंसू बहाया करता है। कवि कहता है इतना ही नहीं; सागर का मन भी सिसक उठता है और समस्त उडुगन भी रोमांचित हो उठते हैं।

विशेष—कवि ने विश्व की अस्थिरता का सच्चा चित्रण किया है।

अलंकार—मानवीकरण।

अहे निष्ठुर ········दिङ्मंडल ! (पृ० ८५)

शब्दार्थ—विवर्तन—घूमना। विक्षत—घायल। विवर—विल।

भावार्थ—कवि 'परिवर्तन' को 'निष्ठुर' कहकर सम्बोधित करता है। वास्तविकता तो यह है कि परिवर्तन लाभ-प्रद भी होता है और हानिप्रद भी। किन्तु परिवर्तन के द्वारा जो दुर्दशा उपस्थित हो जाती है उसी दृश्य को देखकर कवि हृदय-चित्कार उठा है। वह कहता है—वह अत्यधिक कठोर निष्ठुर एवं असीम है उसकी कठोरता

एवं निष्ठुरता का रूप सृष्टि के परिवर्तन में दिखलाई पड़ता है और उसके भयंकर ताण्डव नृत्य अर्थात् प्रलयात्मक नृत्य के कारण समस्त सृष्टि का विनाश हो रहा है। वास्तव में, संसार में जो उत्थान-पतन दिखलाई पड़ता है अर्थात् कहीं दया का चक्र और कहीं निर्दयता का चक्र, वह तुम्हारे नेत्रों का खुलना और बन्द होना ही है।

अब कवि 'परिवर्तन' का चित्रण नागराज वासुकि के रूप में प्रस्तुत करता है—हे परिवर्तन! तुम सहस्त्रों फन वाले नागराज वासुकि हो। तुम्हारे लाखों पैर हैं, किन्तु वे सांसारिक नेत्रों से नहीं दिखाई पड़ते हैं। तुम उन चरणों से जगत् का वक्षस्थल घायल करते जा रहे हो किन्तु तुम्हारे चरण-चिह्न निरन्तर अलक्षित ही हैं। इस प्रकार सारी धरती लोहूलुहान हो उठी है। तुम्हारी फूत्कार भयंकर है। उसमें विषैला झाग भरा हुआ है जो मुख से शत-शत उच्छ्वास फेन के रूप में निकल रही हैं। इन्हीं विषैले फूत्कारों के कारण जगती का अम्बर घूमता रहता है। हे परिवर्तन! मृत्यु मानो तुम्हारा विषैला दाँत है। वह संसार के समस्त पदार्थों को डस लेता है, तथा सृष्टि परिवर्तन है और इसके अतिरिक्त कुछ नहीं, केवल उसका केंचुल बदलना है। सर्प के रहने के लिए बिल चाहिए किन्तु तुम्हारे लिए तो समस्त ब्रह्माण्ड ही है। तुम कहाँ नहीं हो? वासुकि नागराज तो कुण्डली मार कर बैठता है। दिशाओं का गोलाकार ही तुम्हारी मानो कुण्डली है।

विशेष—भाषा-शैली एवं भाव में एक रूपता है। पंतजी सुकुमार भावों के कवि कहे जाते हैं किन्तु यहाँ अपवाद है। अलक्षित चरण चिन्ह का तात्पर्य यह है कि सर्प के चलने का निशान नहीं दिखलाई पड़ता है। परिवर्तन का सजीव चित्रण कवि के द्वारा हुआ है।

अलंकार—मानवीयकरण।

अहे दुर्जेय..................धरातल! (पृ० ८५-८६)

शब्दार्थ—संसृति-सृष्टि। आधि—मानसिक पीड़ा। वात—वायु, हवा। विह्वल—व्याकुल।

भावार्थ—हे परिवर्तन! तुम दुर्जेय और विश्वजित हो। तुम्हारी सत्ता और महत्ता को संसार की समस्त शक्तियाँ स्वीकार करती हैं। देवपति अर्थात् इन्द्र और नरपति तुम्हें सैकड़ों बार प्रणाम करते हैं। तुम्हारे इन्द्रासन के नीचे सभी अपने मस्तक को झुकाते हैं। हे परिवर्तन! तुम्हारे निरन्तर रथ के चक्रों के लपेट में सैकड़ों -सैकड़ों भाग्यअनाथ घूमते रहते हैं। हे परिवर्तन! तुम एक क्रूर एवं निरंकुश राजा

की तरह संसार पर स्वच्छन्द रूप से आक्रमण कर, समस्त संसृति को उत्पीड़ित, पददलित एवं नष्ट-भ्रष्ट कर देते हो।

हे परिवर्तन ! तुम ऐश्वर्य पूर्ण सुन्दर नगरों को ध्वस्त कर अर्थात् नष्ट कर खण्डहरों के रूप में परिवर्तित कर देते हो। सौन्दर्य की प्रतिमाओं को खंडित कर, चिर संचित ऐश्वर्य, कला-कौशल को नष्ट-भ्रष्ट कर देते हो। इसका तात्पर्य यह है कि ये प्रतिमाएँ जगत् की चिरसंचित कला की प्रतीक थीं, भावी जगत् को कला की प्रेरणा देती थीं किन्तु तूने नष्ट कर दिया। हे परिवर्तन ! तुम अकेले ही नहीं बल्कि अपनी विशाल सेना अर्थात् आधि, व्याधि, अतिवृष्टि, वात, (वायु) उत्पात, अमंगल, वह्नि बाढ़, भूकंप के साथ आक्रमण करते हो। हे निरंकुश परिवर्तन ! तुम्हारे चरणों के आघात से समस्त संसार काँप उठता है। इतना ही नहीं विश्व का प्रत्येक कण रोमांचित हो उठता है और सम्पूर्ण धरातल भी भय से काँपने लगता है।

विशेष—कवि ने परिवर्तन को निरंकुश शासक के रूप में चित्रित किया है।

अलंकार—उपमा, रूपक।

जगत का……… ………समाधि स्थल। (पृ० ८६)

शब्दार्थ—अविरत—निरन्तर। निखिल—सम्पूर्ण। विकच—अर्धविकसित। कृमि—कीड़ा। नैश—रात्रि।

भावार्थ—कवि का कहना है, जो सृष्टि के मानस में निरन्तर हृत्कंपन होती है, वह यह सूचना देता है कि समस्त संसार परिवर्तन की विनाशकारी गति से भयभीत है।

कवि का कहना है कि तुम्हारे आमंत्रण की सूचना सम्पूर्ण सृष्टि को प्रतिपल नीचे गिरती हुई मौन पलकों से प्राप्त होती है।

इतना ही नहीं, संसार के प्रत्येक प्राणियों में विपुल वासना है। संसार के अर्धविकसित मानस रूपी शतदल को तुम कुटिल कालरूपी कीड़े के रूप में मध्य अवस्था में ही नष्ट कर देते हो और उस शतदल को पंखुड़ियों में एकमय रूप में हो जाते हो कि बाद में निकालना अर्थात् अलग करना कठिनातिकठिन है। यानी अलग किया जा सकना संभव नहीं।

कवि कहता है कि इस सृष्टि-कृषि को जो स्वर्णिम आभा से युक्त पत्तियों से शोभायमान है तथा संसार ने जिसे अपने पसीने से सींचा है, उन सबको यह परिवर्तन वर्षोपिल बन करके नष्ट कर देता है, लेकिन वांछित कृषि-फल नहीं देता है। निरन्तर

ध्वनि से पूर्ण संसार के स्पन्दन से स्पन्दित, रात्रि रूपी आकाश की भाँति समस्त संसार का दिङ्मण्डल ही समाधि स्थल है अर्थात् हे परिवर्तन तुम्हारी वह ही समाधि स्थल है।

विशेष—परिवर्तन को क्रूर रूप में चित्रित किया है।

अलंकार—उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा।

काल का..................गुरु गर्जन ! (पृ० ८६-८७)

शब्दार्थ—निसर्ग—प्रकृति। सौध—भवन, महल।

भावार्थ—हे परिवर्तन ! महाकाल के निर्दय कुटिल भौंहों के विलास में तुम्हारा ही परिहास भरा हुआ है। संसार का दुःख पूर्ण इतिहास तुम्हारा ही इतिहास है। तुम्हारी एक ही कठोर दृष्टि सम्पूर्ण संसार में प्रलय मचा देती है अर्थात् प्रलय कर देती है और निर्भर होकर अर्थात् निर्भय होकर सम्पूर्ण प्रकृति में युद्ध छेड़ देती है तथा विशाल गगनचुम्बी ध्वजा युक्त महल, श्रेष्ठ पर्वतों के शिखर धराशायी हो जाते हैं और कृत्रिम बादल की भाँति ऐश्वर्य युक्त साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं।

हे परिवर्तन ! तुम्हारे एक रोमांच मात्र से पृथ्वी और दिशाएँ काँप उठती हैं। और भयभीत होकर पक्षी तथा पोतों के समान तारे पृथ्वी पर गिर-गिर पड़ते हैं। इतना ही नहीं, सागर भी अपने आलोड़न अर्थात् लहरों के सैकड़ों-सैकड़ों फन बनाकर मुग्ध सर्प की भांति परिवर्तन के संकेत पर नर्तन करता रहता है। उसके आज्ञानुसार ही दिशारूपी पिंजड़े में बद्ध आकाश भी गजाधिप की भांति वायु से प्रताड़ित होकर यानी वाताहत होकर आर्तस्वर में गुरु गर्जन करता है।

विशेष—परिवर्तन की क्रूरता का चित्रण।

अलंकार—उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा।

जगत की...............सुख शांति (पृ० ८७)

शब्दार्थ—कातर—दुःखपूर्ण।

भावार्थ—इस संसार की सैकड़ों दुःखपूर्ण चीत्कारें, तुम्हारे बहरे कान को बेधती रहती हैं। अश्रु स्रोतों की अगणित धाराएँ परिवर्तन के हृदय रूपी पाषाण को सींचती रहती हैं किन्तु इतने पर भी उसका पाषाण हृदय नहीं पिघलता है।

यह जगत् क्षण-क्षण में सैकड़ों निःश्वासें लेता है अर्थात् सदैव चीत्कार करता रहता है, पृथ्वी पर परिवर्तन का क्रूर आकाश छाया रहता है, चारों दिशाओं में

आक्रांति अर्थात् विपदाएँ (आपत्तियाँ) दिखलाई पड़ती हैं तथा परिवर्तन के ही कारण समस्त पृथ्वी के सुख शांति नष्ट हो जाते हैं।

हायरी.........मायाजाल (पृ० ८७-८८)

शब्दार्थ—संग्राम—युद्ध।

भावार्थ—कवि कहता है कि इस संसार में सुख और शांति खोजना एक दुर्बल भ्रान्ति है क्योंकि समस्त संसृति अशांति से ही पूर्ण है अर्थात् इस लौकिक जगत् में शांति कहां? इसीलिए कवि कहता है कि सृष्टि का तात्पर्य ही अशांति है अर्थात् सृष्टि अशांति पर ही आधारित है। संसार निरन्तर जीवन संग्राम है अर्थात् जगत एक युद्ध स्थल है जहां निरन्तर जीवन संघर्ष चलता रहता है। यहां विश्राम पर विचार करना तो स्वप्न ही है, इसका तात्पर्य यह है कि इस धरती पर विश्राम नहीं है। हम देखते हैं जहां पर सौ वर्ष तक नगर और उपवन थे, वहीं सौ वर्ष तक निर्जनता व्याप्त है। यही तो सारहीन अर्थात् नश्वर संसार है। सृजन, सिंचन और संहार तो सृष्टि के नियम हैं। आज जो अपार सुन्दर महल गर्व से सिर ऊँचा किए खड़े हैं तथा जहां रत्न दीपावलि प्रकाश फैलाते हैं और मंत्रोच्चार हुआ करता है, वहीं भग्न विहार अर्थात् खण्डहर दिखलाई पड़ते हैं, और उसी में उल्लू बोलते हैं तथा झिल्लियों की झन्कार सुनाई देती है। इस प्रकार दिन और रात में बँधे इस विशाल संसार का यही क्रम है और यह जगत् बादल एवं वायु के मायाजाल के समान है इसका तात्पर्य यह है कि जैसे वायु के कारण बादल अपने विभिन्न रूप में बदलते हैं वैसे ही यह सृष्टि अर्थात् सतत परिवर्तन होता रहता है।

अरे देखो...............पड़ी है छिन्नाधार !! (पृ० ८८)

शब्दार्थ—करतार—ब्रह्मा।

भावार्थ—हमें उस ओर भी दृष्टि डालनी चाहिए जहां दिशाओं से ढक कर भी गगन् शून्यवत् लगता है और उसकी इस शून्यता से संसार भी सहम रहा है अर्थात् भय से काँप रहा है। हाय! संसार की रचना करने वाले ब्रह्मा तुम्हारी लीला अत्यंत विचित्र है उसे कोई समझ नहीं सकता। जिस नारी को प्रातः काल सन्तान उत्पन्न हुआ था और उसे माता की उपाधि मिली थी, जिसके उदार उरोजों ने पयोधर नाम धारण किया था, जिसके हृदय की मधुर अज्ञात इच्छा प्रथम ही नवजात शिशु के रूप में मिली थी उस नवजात गोद के शिशु को बिना किसी प्रकार के कष्ट किये हुए हाय! ईश्वर ने हर लिया अर्थात् छीन लिया।

जिस नवयुवती का कल ही पाणिग्रहण संस्कार हुआ था, जिसके भाल पर अभी मुकुट ही बँधा था, जो अभी लज्जा नहीं त्याग पाई थी अर्थात् पति से बातें नहीं कर पायी थी, जिसके खिले हुए कपोलों का पति ने चुम्बन भी नहीं लिया था, वही नवविवाहिता अब विधवा हो गई और उसका पति स्वर्ग चला गया उसके सुख का संसार यहीं रुक गया और सिन्दूर ने भी अंगार का रूप धारण कर लिया अर्थात् जो नवविवाहिता मांग में सिन्दूर भर कर प्रसन्नता का अनुभव करती थी वही पति के अभाव में सिन्दूर को अंगार समझने लगी क्योंकि सिन्दूर कष्टदायी प्रतीत होने लगा। अब वह सुकुमार नवविवाहिता अनाथ हो गई। जैसे तीव्र वायु के कारण लता आश्रय हीन हो जाती है ठीक वैसे ही वह नारी भी आश्रयहीन हो गई।

विशेष—कवि ने परिवर्तन की निष्ठुरता का चित्रण किया है।

अलंकार—रूपक।

काँपता उधर··················हों में नीर। (पृ० ८९)

शब्दार्थ—रज्जु--रस्सी।

भावार्थ—कवि का कहना है कि इस संसार में ऐसे असहाय दैन्य जन हैं जो वस्त्रहीन हैं और ठंडक में काँपते रहते हैं और ठंडक के ही कारण उनका दुर्बल शरीर रस्सी की भाँति ऐंठता जा रहा है तथा उनके शरीर में छिद्र पड़ते जा रहे हैं। दयनीय स्थिति के कारण उन्हें तनिक भी भोजन नहीं मिलता है तथा उन पर किसी उत्तरदायित्व का भार नहीं हैं, अगर भार है तो केवल उदर में पड़े हुए दानों का है।

उनके वस्त्रहीन शरीर को देखकर शिशिर ऋतु रूपी कुत्ता भूक कर उनके अचीर शरीर को चीरने लगता है किन्तु न उनके अधरों में कोई स्वर है न तन में प्राण हैं और न नयनों में नीर ही है। इसका तात्पर्य यह है कि वे अपने कष्टों को व्यक्त करने में असमर्थ हैं।

सकल रोओं··················जाता सन्सार। (पृ० ८९)

भावार्थ—कवि का कहना है कि एक तरफ उनकी दशा अति शोचनीय है और दूसरी तरफ लोभी शोषकों का समाज भी है जिनके समस्त रोएं लोगों के घर द्वार को लूटने में तल्लीन हैं। इसका आशय यह है कि पूंजीपति अधिक लूट मचा रहे हैं।

अब कवि लोभी पूंजीपतियों की तुलना वामन से करते हुए कहता है—जिस प्रकार वामन ने दो डगों में ही समस्त पृथ्वी को नाप लिया उसी प्रकार पूंजीपति

जनों ने संसार की समस्त सम्पत्ति छल पूर्वक इकट्ठी कर ली। जिस प्रकार टिड्डियों का दल हरीतिमा युक्त कृषि को चाट जाता है उसी प्रकार अत्याचारी शोषक समस्त जगत का शोषण कर रहे हैं।

विशेष—प्रगतिवादी कवि के रूप में पन्त जी ने उक्त चित्रण किया है। इस दृष्टि से उक्त चित्रण काफी सफल है।

अलंकार—रूपक।

बजा लोहे··················निज बाल ! (पृ० ८९-९०)

शब्दार्थ—दुकाल—अकाल।

भावार्थ—जिस प्रकार अंधरोष सर्प भृकुटि को वक्रता के साथ मरोड़कर फन खोलकर फूत्कार करता है उसी प्रकार हिंसक व्यक्ति अपने लोहे के कठोर दाँतों को बजाते हुए अपनी हिंसक एवं लोल जिह्वा को नचाते हैं।

जिस प्रकार लालची गीध दिन रात जीव प्राणियों के शरीर का माँस नोच नोचकर खाते हैं उसी प्रकार विविध रोग और शोक लोगों का तन मन नित्य ही नोच रहे हैं। अस्थि पंजर रूपी राक्षस अकाल में ही मनुष्यों को निगल जाता है।

विशेष—दंत कठोर का तात्पर्य अस्त्र-शस्त्र से है।

अलंकार—उपमा, श्लेष।

बहा नर···············आँसुओं के शृंगार ! (पृ० ९०)

भावार्थ—कवि कह रहा है कि समस्त संसार में भयानक संग्राम मचा हुआ है। मनुष्यों का रक्त मूसलाधार वर्षा के समान बह रहा है और रुंड मुन्डों की बौछार दिखाई पड़ रही है। प्रलय काल के विशाल बादल की भाँति भयंकर नर संहार की ध्वनि सुनाई पड़ रही है। समस्त जगत् तीक्ष्ण शस्त्रों की ध्वनि से झंकृत है, जो ऐसा लगता है कि मानो महाभारत का युद्ध हो। हाथियों के समान बलवान जिन राजाओं ने विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी वह भी काल-कवलित हो गया इन राजाओं ने असंख्य मानवों का संहार कर के अपने राज्य की नींव को सुदृढ़ किया था और विजित देश के निवासियों की लाशों पर भीषण सिंहासन स्थापित कर करोड़ों मनुष्यों के मणियों जैसे नेत्र सदा के लिए बन्द कर दिए किन्तु समय का चक्र ऐसा आता है, राजाओं को भी परिवर्तन के आघात को सहना पड़ता है। इस प्रकार जिनके गले पर तारों के भांति चमकते हुए सुन्दर मोतियों के हार रहते हैं वे आँसुओं से ही शृंगार कर रहे हैं।

विशेष—भीषण रक्त-पात का चित्रण।

अलंकार—उपमा।

रुधिर के हैं...........उस पार (पृ० ९०)

शब्दार्थ—कंकाल—हड्डियों का ढाँचा।

भावार्थ—प्रातःकाल की लालिमा जगत के रक्त-पात से पूर्ण है और सायंकाल की लालिमा चितानल अर्थात् चिन्ता की ज्वाला की भाँति है। शून्य निःश्वासों का आकाश आँसुओं का विशाल सागर है।

इस पृथ्वी पर सुख की मात्रा सरसों की भाँति है, शोक का विस्तार सुमेरु पर्वत की भाँति है। यह संसार जिसे हम सुन्दर समझते हैं वह कंकाल मात्र है अर्थात् हड्डियों का ढाँचा है। इस धरती पर सुख और शांति नहीं है। यहाँ रोना जंगल में रोने के समान है। अतः यहाँ रोना व्यर्थ है यहां सुख-शांति नहीं प्राप्त हो सकती है। ये सुख-शांति इस सीमा से परे हैं।

विशेष—संसार की नश्वरता का चित्र खींचा गया है।

आह भीषण...........देती अज्ञात (पृ० ९१)

शब्दार्थ—विवर्तन—भ्रम। व्यावर्तन—भ्रम का समाप्त होना। सैकत—बालू। अतिवात—तूफान।

भावार्थ—विनाश लीला का क्रम तो नित्य का है। समस्त जगत् में परिवर्तन नाश और हाहाकार की गूंज फैली हुई हैं। परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। संसार विभिन्न स्वरूपों में बदलता रहता है किन्तु स्वयं नष्ट नहीं होता। इस प्रकार अचिर में चिर की खोज क्रम बद्ध रूप में बनी रहती है, यही संसार का तत्वपूर्ण दर्शन है।

जिस प्रकार नदी अपने किनारों पर बालू के कगारों को बनाती है और हवा के झोंके में वे अज्ञात अर्थात् समाप्त हो जाते हैं उसी प्रकार जगत् की स्थिति है। जैसे सृष्टि की तरल तरंगे उठती हैं सौ सौ बुलबुले उठते है और समाप्त हो जाते हैं ठीक वैसे ही संसार भी है।

विशेष—अद्वैत दर्शन का चित्रण।

अलंकार—रूपक।

एक छवि......आदान प्रदान ! (पृ० ६१-६२)

शब्दार्थ—विभात—प्रभात ।

भावार्थ—कवि कह रहा है कि एक अलौकिक छवि के असंख्य तारे हैं तथा उसी अलौकिक शक्ति से सम्पूर्ण संसार स्पन्दित है अर्थात् उसी शक्ति से सबका स्पन्दन होता है। एक ही छवि प्रभात में लीन है और एक ही ब्रह्म के निरन्तर सब अधीन हैं। सुख दुख और रात्रि दिन एक ही लोल लहर के दो किनारे हैं। यह संसार त्रिगुणात्मक है इसी में सृजन एवं संहार समाया हुआ है। मृत्यु के बाद ही प्रभात रूपी नवजीवन मिलता है अर्थात् पुनर्जन्म होता है। शिशिर ऋतु की सर्व विनाशक वायु अज्ञात बीज बोती है अर्थात् मधुमास का आगमन निश्चित कर देती है। मलिन पुष्प कोमल मुस्कान पा जाते हैं अर्थात् झर कर नवजीवन पाते हैं। मलिन फल गिर कर नये फलों में पुनः बदल जाते हैं। आत्मबलिदान तो महान् है, संसार तो केवल आदान-प्रदान मात्र है।

विशेष—अद्वैतवादी दर्शन का वर्णन।

अलंकार—उपमा।

एक ही तो.........मधुर झंकार ! (पृ० ६२)

शब्दार्थ—जलनिधि—सागर।

भावार्थ—एक ही असीम चेतन शक्ति से सारा जगत विभिन्न रूपों में आभास पाता है। वही चंचल सागर में हरे रूप में दिखलाई पड़ता है। वही शांत गगन में नीले रूप में भी विद्यमान है। वही प्राणियों के हृदय में प्रेमोच्छ्वास, काव्य में रस, फूलों में वास, स्थायी रहने वाले तारों की पलकों में हास और चंचल लहरों में लास्य के रूप में दिखलाई पड़ता है। इस प्रकार संसार के समस्त पदार्थों में विविध प्रकार से एक ही मर्म मधुर झंकार है।

विशेष—समस्त जीव-प्राणियों में एक ही तेज विद्यमान है।

अलंकार—अनुप्रास।

वही प्रज्ञा......भावना मय संसार ! (पृ० ६२)

शब्दार्थ—अनूप—अनुपम, अद्वितीय। अविकार—विकार रहित। प्रणय—प्रेम।

भावार्थ—वही ब्रह्म विवेक का सत्य स्वरूप हैं, वही हृदय में अपार प्रेम है, वही लोचनों में अनुपम सुन्दरता है, वही लोक सेवा में विकार रहित कल्याण है। वहीं स्वरों में मधुर ध्वनि, वही प्रेम के कोमल उद्गारों में सत्य रूप, वही दिव्य सौन्दर्य, वही साकार स्नेह और संसार में वही भावनामय है।

विशेष—ज्ञाता एवं ज्ञेय के स्वरूप का वर्णन ।

अलंकार—श्लेष ।

स्वीय............बेड़ी का भार ! (पृ० ९३)

शब्दार्थ—स्वीय-अपना ।

भावार्थ—कवि कह रहा है । कि मनुष्य अपने कर्मों के ही अनुसार फल प्राप्त करता हैं । एक ही गुण विभिन्न प्रकार से फल देता है । कहीं राखी के समान सुकोमल रहते हैं और कहीं बेड़ी का भार बन जाते हैं ।

कामनाओं............जीवन का मोल (पृ० ९३)

शब्दार्थ—पुलिन—किनारा । याम-पहर । अपार—असीमित ।

भावार्थ—कवि कह रहा है कि इस संसार में कामना का पूर्ण साम्राज्य छाया हुआ है । मनुष्य विभिन्न प्रकार की कल्पनाएँ करता है, वह कभी सफल और कभी असफल होता है । ये कामनाएँ जगती के उर के तारों को छेड़ कर जीवन को जाग्रत करती हैं और उन तारों की झंकारें स्फूर्ति का संचार करती हैं ।

सुख-दुःख के असीमित तटों को चूमकर ज्ञानामृत की धारा प्रवाहित करती हैं । इस प्रकार होठों का हिलता हुआ हास पिघल कर दृगों को जीवन दान देता है । इसका तात्पर्य यह है कि जब दुःख होता है तब हँसी विलीन हो जाती है और इसके बाद गंभीर होने पर अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है । वेदना की अग्नि में तपकर खरा स्वर्ण बनकर बाहर आता है अर्थात् दिखलाई पड़ता है । इसका तात्पर्य यह है कि दुःख ही मानव-प्राणी के जीवन में निखार लाता है । हम अभाव के कारण आठों याम तरसते रहते हैं और जब वे दूर हो जाते हैं तब हम अलौकिक सुख प्राप्त करते हैं । रात-दिन जीवन का संग्राम झेलते हुए भी विजय आनन्द देती है । इष्ट वस्तु अर्थात् वांछित वस्तु तो अलभ्य अर्थात् अप्राप्त है, इसीलिए वह अमूल्य है । मानव-जीवन का मूल्य साधना अर्थात् मानव को सदैव कार्यरत रहना चाहिए ।

विशेष—मानव-जीवन के क्रमिक विकास पर कवि ने प्रकाश डाला है ।

अलंकार— श्लेष ।

बिना दुख के........औ प्यार ! (पृ० ९३-९४)

शब्दार्थ—निस्सार-सारहीन ।

भावार्थ—कवि कह रहा है कि बिना दुःख के समस्त सुख सार रहित है, बिना

आंसू के जीवन भार-स्वरूप लगता है। इस संसार में दीनता और दुर्बलता है तथा इसी में दया, क्षमा और स्नेह भी समाया हुआ है।

आज का......क्रम का ह्रास ! (पृ० ६४)

शब्दार्थ—विषाद— दुःख । आह्लाद—सुख ।

भावार्थ—कवि कह रहा है कि आज जो दुख दिखलाई पड़ रहा है या हम जो दुःख झेल रहे हैं कल सुख में परिवर्तित हो जाएगा और कल का सुख आज के दुःख में बदल जाएगा। यह सृष्टि का नियम है। संसार रहस्यमय एवं स्वप्न की भाँति है और वह एक ऐसी समस्या भी है जिसकी पूर्ति जगत के उस पार है। इस प्रकार जगत और जीवन का अर्थ विकास ही है, जन्म एवं मरण अनिवार्य हैं तथा उन्हीं से जीवन गति-क्रम का ह्रास भी।

हमारे काम.........स्वीय स्वरूप ! (पृ० ६४)

शब्दार्थ— स्वीय-अपना ।

भावार्थ—कवि का कहना है कि हमारे काम भी ईश्वर प्रेरक ही हैं उन कामों को करने की प्रेरणा कोई और देता है, हम तो निमित्तमात्र हैं, कर्त्ता तो कोई और है। हमको कार्य करने का मिथ्या अभिमान होता है किन्तु हम अपनी अज्ञानता में छिपे रहते हैं, हमारा कोई उपनाम और रूप नहीं है। यहाँ इस रूप को खो देने के लिए ही आए हैं किन्तु खो देने पर स्वीय स्वरूप अर्थात् सत्य स्वरूप प्राप्त कर लेते हैं।

जगत की.........जग का आह्लाद ! (पृ० ६४)

शब्दार्थ—आह्लाद-सुख ।

भावार्थ—कवि कह रहा है कि सुन्दरता ही जगत का धर्म है, इसी सुन्दरता के पीछे समस्त अवगुण चन्द्रमा के कलंक की भाँति छिपे रहते हैं जगत् की वास्तविक सुन्दरता नवीन परिवर्तन में है, वह परिवर्तन दिन-रात सुशोभित होता है। नूतनता ही संसार का आनन्द है।

स्वर्ण शैशव............नूतन जीवन ! (पृ० ६४-६५)

शब्दार्थ— नव्य-नया । प्रणय- प्रेम । रसाल-आम ।

भावार्थ—कवि का कहना है कि शैशवावस्था उषा काल के सदृश है और उसमें शिशु स्वर्णिम स्वप्नों का जाल बुनता है। यौवन बौर लगे हुए सरस रसाल के समान है। प्रौढ़ता छाया वाले सुन्दर एवं विशाल उस वृक्ष के समान है जो दूसरों को आनन्द देती है तथा वृद्धावस्था सायंकाल की स्तब्धता के सदृश है अर्थात् जीवन का

उल्लास समान हो जाता है। जीव शिशु रूप में जन्म लेता है और वह जगत की प्रत्येक वस्तु कौतूहलता के साथ देखता है किन्तु जगत के विषय में वह अबोध रहता है। उसके पश्चात् वही शिशु यौवन में आकर सौन्दर्य की ओर आकर्षित हो जाता है और भौंरे की तरह सुन्दरता के लिए चक्कर काटता है तथा प्रेम के बाण से विधकर मधुर जीवन का सार चुन-चुन कर भौंरे की तरह पान करता है तथा अपने जीवन को संसार में मधुमय बनाता है और उसी में अपने शरीर, मन एवं प्राण को डुबा देता है। मानव बचपन में शिशु के समान अनजान रहता है और वह एक अबोध बालक की तरह सोता-जागता रात-दिन जीवन का दाँव खेलता हुआ वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाता है और उसके बाद वह वृद्धावस्था भी जीर्ण शरीर को त्याग कर नव जीवन प्राप्त करता है। इस प्रकार कवि कहता है कि वह फिर बालक के रूप में पृथ्वी पर जन्म लेता है और उसके जीवन का एक नया प्रभात ही है। वह पृथ्वी पर नूतन अज्ञात स्वप्न देखता है कि पुरातनता रूपी मृत्यु चली जाती है और नूतनता रूपी जीवन विकसित हो जाता है।

विशेष—परिवर्तन संसृति का शाश्वत नियम है। यहाँ गीता का 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय श्लोक का भाव भी समाहित है।

अलंकार—रूपक।

विश्वमय.........अटका निर्भर (पृ० ९५-९६)

शब्दार्थ—अकूल—सीमाहीन। विपुलाकार—विशाल आकार। अविकार—विकार रहित। भीम—विशाल।

भावार्थ—हे परिवर्तन तुम समस्त संसार में व्याप्त हो। और न जाने कहाँ से विशाल बादल के समान विशाल रूप में उमड़ पड़ते हो। तुम समस्त दिशाओं में पलभर में विभिन्न रूप धारण करके व्याप्त हो जाते हो। हे परिवर्तन तुम अनिर्वचनीय हो। तुम सुन्दर एवं भयंकर रूप धारण करते हो और तुम्हीं इन्द्रजाल के समान आकाश में सुन्दर रचना करते हो। तुम्हीं मेघों के समान गर्जन करते हो, विद्युत के समान चमक कर हँसते हो, आकाश पर चढ़कर जल भी बरसते हो, बज्रपात भी करते हो तथा समस्त पृथ्वी को उपजाऊ भी बना देते हो। सम्पूर्ण संसार की समस्त आशाओं का इन्द्र धनुष तुम्हारी विशाल भृकुटि पर निर्भर है।

विशेष—परिवर्तन का वास्तविक चित्रण।

अलंकार—उपमा।

एक औ·········व्याप्त सूत्रधर ! (पृ० ६६)

शब्दार्थ—अखिल—सम्पूर्ण ।

भावार्थ—कवि कहता है कि परिवर्तन विभिन्न रूप वाले जगत् के मध्य नित्य चक्र के समान घूमता रहता है । इसीलिए संसार में महान् ज्ञान और धरती पर गहन चिह्न छोड़ जाता है । हे परिवर्तन ! तुम माया का रूप धारण करके विश्व मंच पर अभिनय करते हो तथा अगणित नवीन दृश्यों को निरन्तर परिवर्तित करते हो ; कभी अधरों पर हँसी तथा कभी आँखों में करुणापूर्ण आँसू । सुख-दुःख के अभिनय से तुम बिना प्रकट किए हुए, संकेतों के माध्यम से शिक्षा प्रदान करते हो । यह विश्व मंच शिक्षा का स्थल है और तुम उसके श्रेष्ठ नट के समान नायक हो । प्रकृति सुन्दर नर्तकी है और तुम सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त सूत्रधर हो अर्थात् संचालन करने वाले हो ।

विशेष—कवि ने परिवर्तन का बड़ा सुन्दर चित्र रूपक के माध्यम से प्रस्तुत किया है ।

अलंकार—रूपक, उपमा ।

हमारे निज सुख······नित करते पालन ! (पृ० ६६)

शब्दार्थ—अविरत—निरन्तर ।

भावार्थ—हे परिवर्तन ! हमारे निज सुख-दुःख व निःश्वास तुम्हारे लिए केवल परिहास हैं । कवि की दृष्टि में परिवर्तन निर्लिप्त भाव से अपने कार्य में रत रहता है और सांसारिक प्राणियों के प्रति सहानुभूति नहीं रखता है । अतः हम सब उसके विधि-विधान पर विश्वास रखते हैं और यह आशा करते हैं कि हमारे जीवन में परिवर्तन अवश्य आएगा । हे परिवर्तन ! तुम आकाश के हृदय को कँपा देने वाले हो, तुम्हारा निरन्तर स्पन्दन बना हुआ है, तुम्हारा स्पन्दन ही सृष्टि शिराओं में जीवन का संचार करता है । हे परिवर्तन ! तुम संसार के सौ-सौ नक्षत्रों के समान नेत्र खोलकर, संसार के अंधकार को क्षण-क्षण नष्ट करते रहते हो । तुम्हारा राजदण्ड सत्य है, तुम्हारे सम्मुख समस्त त्रिभुवन नतमस्तक है ! राजा और अकिंचन तुम्हारे अटल शासन का नित्य पालन करते हैं अर्थात् राजा हो या रंक सभी को तुम्हारी आज्ञाओं का पालन करना होता है ।

विशेष—यहाँ भावाभिव्यंजना अतीव सुन्दर बन पड़ी है ।

अलंकार—उपमा, रूपक ।

तुम्हारा ही········हीन विवर्तन ! (पृ० ९७)

शब्दार्थ—स्फीत—विस्तृत, असीमित । विवर्तन—परिवर्तन । तुंग—ऊँची ।

भावार्थ—हे परिवर्तन ! तुम्हारा अशेष व्यापार ही हमारे भ्रम, मिथ्या एवं अहंकार का कारण है । तुम्हीं में निराकार एवं साकार समाया हुआ है और तुम्हीं मृत्यु एवं जीवन को एकाकार करते हो ।

हे परिवर्तन ! तुम महासागर के समान हो । जैसे महासागर के विस्तृत वक्ष-स्थल पर अगणित लहरें नित्य क्रीड़ा करती रहती हैं, वैसे ही तुम्हारे असीमित वक्ष-स्थल पर लोक और चराचर वस्तुएँ निरंतर क्रीड़ा करती रहती हैं । जैसे महासागर में उठने वाली ऊँचीं लहरें उसके विशाल उदर में विलीन हो जाती हैं वैसे ही शत-युग, शत-शत कल्पांतर शीघ्र ही तुममें विलीन हो जाते हैं । शत सहस्र रवि शशि, असंख्य ग्रह, उपग्रह तारे तुम्हारी शक्ति से चमकते हैं और बुझते हैं और तुम्ही में उसी क्षण विलीन भी हो जाते हैं । परिवर्तन ही विश्व की सीमा है और तुम्हारे द्वारा ही जगत बनता व बिगड़ता है । तुम्हीं कर्म, वाणी और मन हो और तुम्ही शाश्वत भी हो और वास्तविकता तो यह है कि तुम परिवर्तन होकर भी परिवर्तन विहीन हो ।

विशेष—कवि ने परिवर्तन के विराट् स्वरूप का वर्णन अति कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है ।

अलंकार—उपमा, रूपक और विरोधाभास ।

मैं नहीं चाहता चिर सुख

संकेत—यह 'तारापथ' काव्य-संकलन की ग्यारहवीं कविता है । प्रस्तुत कविता में समन्वयवाद की सुन्दर झाँकी चित्रित की गई है । कवि की दृष्टि में स्थायीरूप से न सुख अच्छा होता है और न दुःख । इसीलिए मानवीय जीवन में सुख और दुःख दोनों के मिले रूप को चाहता है ।

मैं नहीं······ओझल हो घन ! (पृ० ९९-१००)

शब्दार्थ—घन—बादल ।

भावार्थ—कवि कहता है कि मैं स्थायीरूप से न सुख ही चाहता हूँ और न दुःख । ही इसका कहने का तात्पर्य यह है कि ये दोनों ही स्थायीरूप में रहने पर दुःख-

दायी होते हैं। यदि साथ-साथ विद्यमान रहें तो इनका रूप अच्छा रहता है। कवि का कहना है कि सुख-दुःख रूपी आँख-मिचौनी का खेल ही जीवन को विकसित करता है। अतः कवि कहता है कि यह मानव-जीवन सुख-दुःख के मधुर मिलन से परिपूर्ण हो जाय ; और फिर बादल में चन्द्रमा ओझल हो जाय तथा फिर शशि में बादल ओझल हो जाय.। इसका तात्पर्य यह है कि सुख-दुःख एकमय हो जाय जिससे जीवन में समरसत्ता प्राप्त हो।

विशेष—कवि ने सुख-दुःख के समन्वय का अत्यन्त सुन्दर चित्र चित्रित किया है। भाव, भाषा-शैली में समता है।

अलंकार—उपमा।

जग पीड़ित·········मानव-जीवन का ! (पृ० १००)

शब्दार्थ—अविरत—निरन्तर।

भावार्थ—कवि कहता है कि यह संसार अधिक दुःख से पीड़ित है और यही संसार अधिक सुख से भी पीड़ित है अतः कवि मानववाद की स्थापना की दृष्टि से अपनी भावनाएँ व्यक्त करता है। संसार के समस्त प्राणियों में दुःख-सुख और सुख-दुःख समान रूप से बँट जाँय अर्थात् कोई किसी प्रकार से न अधिक दुःखी और न अधिक सुखी रहे।

कवि कहता है—निरन्तर दुःख भी उत्पीड़न है और निरन्तर सुख भी उत्पीड़न है। दुःख-सुख के रात-दिन में समस्त संसार के जीवप्राणी सोते एवं जागते रहते हैं।

यह सायं एवं प्रातःका आँगन है, यहाँ विरह-मिलन का आलिंगन भी होता है और ये ही मानव-जीवन के मुख पर चिर हँसी एवं आंसू भी हैं अर्थात् दिखलाई पड़ते हैं।

विशेष—कवि ने मानववाद का सजीव चित्रण किया है।

एक तारा

संकेत—यह तारापथ काव्य-संकलन की चौदहवीं कविता है। यह कविता श्रेष्ठतम कविताओं में से एक है। सन्ध्या के सुन्दर वातावरण के साथ कवि की दार्शनिक विचारधारा भी इसमें विद्यमान है।

नीरव सन्ध्या·········आर-पार ! (पृ० १०६)

शब्दार्थ—प्रखर—तेज।

भावार्थ—कवि कह रहा है कि सम्पूर्ण 'ग्राम प्रांत' उस नीरव संध्या के

अंधकार में डूब रहा है तथा चारों ओर शांति छायी हुई है। जैसे वीणा के तारों में स्वर खोया हुआ रहता है वैसे ही वृक्ष के आनत अधरों पर सम्पूर्ण वन का मर्मर संगीत सो गया है। खग-कूजन भी शांत हो चला है, गोपथ भी धूलिहीन एवं निर्जन हो गया है तथा वन का मार्ग धूलि धूसरित सर्प की भाँति क्षीण लग रहा है। केवल झींगुर के प्रखर स्वर बाण की भाँति सन्ध्या की स्तब्धता को चीर रहे हैं यह दृश्य सन्ध्या का स्तब्धता को और गम्भीर बना रहा है। कवि कहता है कि चिर आकांक्षा की तीक्ष्ण धार मानो इस महाशांति के उदार हृदय को आर-पार बेध रही हो।

अलकार—उपमा।

अब हुआ······ तम श्यामल। (पृ० १०६)

शब्दार्थ—स्वर्णिम—सुनहली कान्ति। सुभग—सुन्दर। रक्तोत्पल—लाल कमल।

भावार्थ—सन्ध्या की सुनहरी कांति विलीन हो गई अर्थात् अंधकार छा गया। समस्त संसार वर्ण-वस्तुओं से हीन हो गया अर्थात् अब वर्ण-वस्तुएँ नहीं दिखलाई पड़ती हैं।

गंगा के प्रवाहित निर्मल जल में, सूर्य की किरणों के पड़ने के कारण लाल कमल की कोमल पंखुड़ियाँ बंद हो गई हैं अर्थात् लाल कमल मुरझा गए हैं। गंगा की लहरों पर की सुनहली किरणें उसी प्रकार नीली पड़ गई हैं जिस प्रकार शिशिर की तीव्रता के भय से अधरों की अरुणाई नीली हो जाती है। वह स्वर्ण पक्षी अपने सुन्दर पंखों को फैलाकर, तरुशिखरों से उड़कर न जाने किस रास्ते से किस गुफा रूपी नीड़ में चला गया। चारों ओर आँचल में कोमल-कोमल स्वप्नों को छिपाये हुए वृक्ष और वन में अँधेरा छा गया।

विशेष – प्रकृति का संगीतात्मक चित्रण।

अलंकार—रूपक, उत्प्रेक्षा।

पश्चिम·········इच्छा से निर्धन! (पृ० १०६-१०७)

शब्दार्थ—अमंद—मन्द रहित। अकलुष—कलुषहीन। अनिन्द्य—सराहनीय, प्रशंसनीय। निखिल—सम्पूर्ण।

भावार्थ—कवि कहता है कि वह पश्चिमी आकाश में एक उज्ज्वल, अमंद नक्षत्र देख रहा है जो कलुषहीन और सराहनीय है तथा वह ऐसा लग रहा है मानो मानस रूपी आकाश में विवेक ही साकार हो उठा हो। इसका तात्पर्य यह है कि विवेक ही उर में एक अमर टेक भरे हुए प्रकाश पूर्ण हो रहा है।

कवि पूछता है कि सान्ध्य नक्षत्र अपने आलोक द्वारा अपने मन की कौन सी-

आकांक्षा को प्रकट कर रहा है और उसने किस सुनहले कामना का दीपक जला रखा है। कवि पुनः मन में विचार करने लगता है कि सांध्य नक्षत्र की कामना का केन्द्र क्या है और वह रजत सीपी में मुक्तालोक की भाँति किसके समीप अपनी सुनहली इच्छाओं का प्रदीप किए हुए है ?

कवि का कहना है कि यदि उसकी आत्मा का चिराधन तथा उसके स्थिर अपलक नयनों का चिंतन अपनापन खोल रहे हैं तो उनकी चेष्टा व्यर्थ है। इसका कारण यह है कि अपनापन स्वयं में दुलर्भ है, इसका पता लगाना अति दुष्कर है। यह सम्पूर्ण संसार निर्जन लगता है। अतः एकाकी तारा अपनी निष्फल इच्छा से निर्धन हो रहा है।

विशेष—निष्फल कामना का चित्रण।

आकांक्षा.........रे न पार ! (पृ० १०७)

शब्दार्थ—वेग—तेजी। अहरह—प्रतिदिन। दुस्तर—कठिन। विकल—व्याकुल।

भावार्थ—कवि कहता है कि आकांक्षा का उच्छ्वसित वेग विवेक के बन्धन को नहीं मानता है। इस महासागर के उर में शाश्वत आकांक्षाएँ भरी हुई हैं जिसके कारण वह चंचल तथा उद्वेलित है और लहरों पर लहरें नाचती हैं। इतना ही नहीं, रवि, चन्द्र नक्षत्र सभी सतत गति से अपनी आकांक्षाओं के कारण ही नित्य नर्तन करते हैं। इस प्रकार निश्चित है कि आकांक्षा के बन्धन बहुत कठिन होते हैं। क्या उसके-प्राण भी अतृप्त आकांक्षाओं की अग्नि से जलने के कारण व्याकुल हो उठे हैं और क्या यही कारण है कि वह मौन है ? तथा उसके स्तब्ध नेत्र सजल हैं ? एकाकी जीवन व्यर्थ और विफल है। एकाकीपन के अंधकार का भार दुस्सह और भयानक हैं। इस एकाकी जीवन में विषाद का कोई पार नहीं है।

विशेष—एकाकी जीवन का चित्रण।

अलंकार—मानवीकरण।

चिर अविचल.........यह जग दर्शन ! (पृ० १०७-१०८)

शब्दार्थ—अलि—भ्रमर।

भावार्थ—सांध्य तारा चिर अविचल होने पर भी प्रकाश पूर्ण है, वह छन्द-बंध नहीं जानता है। वह आकाश का मुक्त आत्मा है; अपने एकाकीपन के सुख में ही विलीन है और अपने स्थित निज स्वरूप में चिर नवीन भी है। यह सांध्य तारा निष्कंप दीप शिखा की भाँति जगत-जीवन के अंधकार को भेदता रहता है, वह शुद्ध, प्रबुद्ध और शुक्र के समान है। अपार निर्जनता में वह भौंरे की भाँति गुंजार करने लगता है। उसके स्वर से घना अंधकार भी मधुमय लगने लगता है जिसके कारण

एकाकी जीवन का व्यथा भार हल्का हो जाता है। कुंद कलियों के समान लघु नक्षत्रों से आकाश जगमगा उठा है। वह सांध्य तारा मानो ब्रह्म है और नक्षत्र समूह जग-दर्शन की भाँति है।

विशेष—सांध्य आकाश एवं सांध्य तारे का कलात्मक चित्रण दार्शनिक भावों के साथ हुआ है।

अलंकार—उपमा, उत्प्रेक्षा।

नौका-विहार

संकेत—यह 'तारापथ' काव्य-संकलन की सोलहवीं कविता है। इसमें कवि ने राजा कालाकांकर के भवन के नीचे बहती हुई गंगा में चाँदनी रात में नौका-विहार का रमणीक वर्णन किया है। कवि के वर्णन में आध्यात्मिकता है।

शांत········मृदुल लहर ! (पृ० ११४-११५)

शब्दार्थ—ज्योत्स्ना-चाँदनी। अपलक-विस्तृत। नीरव-शांत। विरल-पतली। तन्वंगी-कृशांगी। तार-तरल—तारों के समान चंचल। कुंतल-केश।

भावार्थ—कवि का कहना है कि शांत, स्निग्ध और उज्ज्वल चाँदनी चारों ओर फैली हुई है तथा सम्पूर्ण पृथ्वी एवं सुविस्तृत आकाश में नीरवता दिखलाई पड़ती है। तापस कन्या की भाँति निर्मल गंगा कठिन ग्रीष्म ऋतु में सैकत-शैय्या पर दुग्ध-धवल की भाँति कृशांगी एवं निश्चेष्ट-सी लेटी हैं। गंगाजी अपनी कोमल हथेली पर अपना शशि मुख रखे हुए हैं और हृदय पर लहर रूपी कोमल कुंतल लहरा रहे हैं। गोरे अङ्गों पर नीला आकाश तारों के समान चंचल, सुन्दर, सिहर-सिहर कर, चंचल आँचल की भाँति लहरा रहा है। जल की कोमल लहरें जो ऊँची-नीची होकर एक दूसरे से मिली हुई हैं शशि के रेशमी कांति से पूर्ण होकर चमकती हैं, ऐसा लगता है मानो यह लहरें उसकी साड़ी की सिकुड़न हों।

विशेष—कवि ने गंगा को तापस-बाला के रूप में चित्रित कर अपनी नवीन कल्पना का परिचय दिया है।

अलंकार—उपमा, रूपक।

चाँदनी रात······ वैभव-स्वप्न सघन। (पृ० ११५)

शब्दार्थ—शीघ्र ही चाँदनी रात के प्रथम प्रहर में हम लोग नौका लेकर चल पड़े। उस समय बालू की मुसकुराती हुई सीपी पर मोती की ज्योत्स्ना फैल रही थी। नौका का लंगर उठा लिया गया और पालें फैला दी गई तब छोटी नौका हंसिनी के

समान सुन्दर पाल रूपी परों से कोमल तथा मंद-मंद, मंथर गति से चल पड़ी। जब पवित्र शांत जल में दर्पण की भाँति तारों का प्रतिबिम्ब पड़ता था तब निर्भर होकर रजत तट क्षण भर में दुहरे ऊँचे लगते थे। और कालाकांकर का राजभवन निश्चल जल में प्रसन्न, सोया हुआ अपने पलकों पर सघन वैभव के स्वप्न देख रहा था।

विशेष—वर्णन में चित्रात्मकता है।

अलंकार—उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, मानवीकरण।

नौका से उठती·········सा रुक रुक ! (पृ० ११५-११६)

शब्दार्थ—झलमल-शुभ्र चंचल।

भावार्थ—नौका के चलने से जल में जो हिलोरें उठती थीं वे ऐसी प्रतीत होती थीं मानो नभ के ओर-छोर हिल रहे हों और चंचल तारक-दल ऐसा लगता था मानो वह आँखें फाड़कर, आकाश के अन्तस्तल को प्रकाशित करते हुए, निश्चल नयनों से कुछ खोज रहा हो। इन तारक चंचल लघु दीपों को अपने आँचल की ओट या आड़ में छिपाये हुए लहरें निरन्तर क्षण-क्षण पर लुक-छिपकर फिर रही थीं और सामने शुक्र तारे की कांति झलमला रही थी। यह दृश्य ऐसा लगता था मानो परी जल में कल-कल करती हुई तैर रही हो और वह अपने रुपहले अर्थात् सुन्दर केशों में ओझल हो जाती थी। इतना ही नहीं लहरोंरूपी घूँघट के बीच से दशमी का चन्द्रमा अपना तिरछा मुख मुग्धा (नायिका) की भाँति रुक-रुक कर दिखा रहा था।

विशेष—कवि ने दृश्य का चित्रांकन किया है।

अलंकार—रूपक, उत्प्रेक्षा।

अब पहुँची·········कोकी को विलोक। (पृ० ११६)

शब्दार्थ—अराल - टेढ़ा। प्रतीप—उल्टा।

भावार्थ—अब नौका गंगा की धारा के बीच पहुँच गई और चाँदनी का कगार छिप गया तथा अभी तक दो बाहों से खेये जाने के कारण जो किनारा दूर हो गया था उसका आलिंगन करने के लिए धारा का क्षीण एवं कोमल शरीर व्याकुल हो उठा अत्यधिक दूर, पृथ्वी पर वृक्षों की कतारें भ्रू रेखा के समान टेढ़ी लगती थीं, यह दृश्य ऐसा प्रतीत होता था मानो आकाश अपने विशाल नील नयनों को खोलकर देख रहा हो और गंगा की धारा में दिखाई पड़ने वाला एक छोटा-साँ द्वीप मां के वक्षःस्थल पर सोए हुए किसी शिशु की भांति जान पड़ता हो। द्वीप से टकराने पर गंगा की धारा का प्रवाह विपरीत हो जाता है। कवि पूछता है, वह कौन पक्षी है ? क्या व्याकुल चक्रवाक अपनी छाया रूपी प्रेमसी को देखकर अपने विरह शोक को हरने के लिए उड़ चला हो।

विशेष—दृश्य का सुन्दर चित्रण।

अलंकार—उपमा।

पतवार घुमा·········सहोत्साह ! (पृ० ११६)

शब्दार्थ—प्रतनु—हल्का। फेन-स्फार—बुदबुदों का समूह। रलमल—दौड़ते हुए चलना। लतिका—डाल।

भावार्थ—अब नौका का भार हल्का हो गया, पतवार घूमने के कारण नौका विपरीत धारा की ओर चलने लगी और लोग हथेली फैलाकर पतवार चलाने लगे तथा फेनयुक्त मोतियों की जल राशि को जल में पड़ने वाले ताराओं के प्रतिबिम्ब रूपी तारक हार को बिखेरने लगे। नौका के चलने के पीछे चंचल लहरें अत्यधिक क्षीण रेखाओं के सदृश लग रही हैं जिन पर ज्योत्स्ना फैली हुई हैं। वह दृश्य ऐसा लगता है मानो चाँदी के साँप दौड़ते हुए चल रहे हों तथा जल में किरणें भी नाचती हुई दिखाई पड़ती हैं। लहर रूपी लतिकाओं में सैकड़ों चन्द्रमा खिल उठे और सैकड़ों तारे झिलमिलाने लगे तथा फेनिल जल में फूल फैल गए। कवि कहता है नौका अब नदी के उथले जल में आ गयी बांस से सरलतापूर्वक थाह ले-लेकर हम लोग घाट की ओर उत्साहपूर्वक बढ़े।

अलंकार—रूपक।

ज्यों-ज्यों·········अमरत्व ! (पृ० ११७)

शब्दार्थ—शाश्वत—चिरन्तन।

भावार्थ—कवि कह रहा है कि जैसे-जैसे जीवन रूपी नौका पार होती है वैसे ही वैसे हृदय में शत विचार प्रकाशित होते हैं तथा इस धारा के सदृश ही संसार का क्रम है, इस जीवन का जन्म शाश्वत है गति शाश्वत है एवं संगम भी शाश्वत है। इसका तात्पर्य यह है कि जीवन-क्रम जन्म में शांत, मध्य में गतिशील तथा अन्त में पुनः शांत है। जैसे गंगा समुद्र से शाश्वतरूप से मिली हुई है वैसे ही आत्माएँ असीम ब्रह्म से मिली हैं। आकाश का नीला सौन्दर्य एवं चन्द्रमा की ज्योत्स्ना की हंसी की तरह ब्रह्म और आत्माएँ शाश्वत हैं तथा छोटी लहरों का विलास भी शाश्वत है।

हे जग जीवन के कर्णाधार जन्म मृत्यु की सीमाओं के रहते हुए भी जीवनरूपी नौका शाश्वत है। प्रकृति के शाश्वत दृश्य को देखकर कवि कहता है, ऐसी दशा में वह अपने अस्तित्व ज्ञान को अर्थात् जीवन सत्ता को भूल गया। कवि पुनः कहता है कि यह नौका विहार केवल लौकिक नहीं है बल्कि ब्रह्म सत्ता भी है यही जीवन का शाश्वत प्रमाण है और उसी के संगम ने मुझे अमरत्व दान दे दिया अर्थात् अमर बना दिया।

विशेष—जीवन की विभिन्न गतियों का सुन्दर चित्र कवि ने खींचा है।

अलंकार—उपमा, रूपक।

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र

संकेत—यह 'तारापथ' काव्य संकलन की सत्रहवीं कविता है। प्रस्तुत कविता में प्राचीनता के प्रति विद्रोह की भावना है। कवि ने पतझर के माध्यम से अपनी भावनाओं को आक्रोश के साथ व्यक्त किया है जिसमें भाव भाषा शैली का पूर्ण सामंजस्य है।

द्रुत झरो.........हो विलीन ! (पृ० ११७)

शब्दार्थ—द्रुत—शीघ्र। वीतराग—उदासीन। मधुवात—वसन्ती वायु।

भावार्थ—हे संसार के जीर्ण ध्वस्त, शुष्क शीर्ण पत्ते तुम शीघ्र झड़ जाओ। क्योंकि तुम हिम ताप से पीले पड़ गए हो तथा वसन्ती बयार के झोंकों से भयभीत हो अर्थात् वसन्ती वायु के झोंकों को सहने की तुममें अब शक्ति नहीं है। तुम उदासीन जड़ और प्राचीन हो, अतः शीघ्र चले जाओ।

प्राणरहित युग चला गया। ये जीर्ण पत्ते मृतक पक्षी की भांति हैं, संसार रूपी नीड़ शब्द और श्वासहीन हो गया है अब इनका कोई सम्बन्ध नहीं है अर्थात् अलग हो गए हैं। तुम्हारे पंख भी अस्त-व्यस्त हो चुके हैं, अतः झर झर कर आकाश में विलीन हो जाओ अर्थात् संसार से चले जाओ।

कंकाल जाल.........युग की प्यांली ! (पृ० ११८)

शब्दार्थ— कंकाल जाल—हड्डियों का ढाँचा।

भावार्थ—कवि कहता है कि पीले पत्तों के झड़ जाने के पश्चात् वृक्षों का समूह हड्डियों के ढाँचे की तरह दिखाई पड़ रहा है, उस पर पुनः नवीन रक्त की भाँति लाल-लाल मृदु पत्ते विकसित हो उठेंगे जिसके परिणामस्वरूप जीवन की माँसल हरियाली रूपी हरी पत्तियाँ प्राणों की मर्मर ध्वनि से मुखरित हो उठेंगी।

हे जग कोकिला ! जब तक सारा संसार यौवन रूपी मंजरी से मंजरित हो रहा है, तब तक अपने अमर प्रणय गान को सुनाकर जग को जाग्रत कर और उस स्वर की मतवाली मदिरा से पुनः नवयुग की प्याली को भर दे।

विशेष—काव्यमय चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

अलंकार—उपमा, रूपक।

बाँसों का झुरमुट

संकेत—यह 'तारापथ' काव्य-संकलन की अठारहवीं कविता है। प्रकृति का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। ध्वनि का प्रवाह है। भाषा, भाव एवं शैली की दृष्टि से कविता उत्तम है।

बांसों का············भारी पग ! (पृ०११८)

शब्दार्थ—मधुर-सुन्दर।

भावार्थ—बाँसों के झुरमुट में संध्या दिखाई पड़ती थी, जिसमें चिड़ियाँ टी-वी-टी-टुट्ट-टुट्ट की ध्वनि गुंजित कर रही थीं। वे पक्षीगण अपने हृदयों पर ढाल कर सुन्दर स्वप्न वर्षा रहे थे। उस समय श्रम जर्जर एवं विधुर चराचर जगत पर गीत गाती थीं, जिसमें प्रेम की वेदना समाहित थी अर्थात् गीत के माध्यम से अपनी प्रेम की सहानुभूति प्रकट कर रही थीं।

ये पक्षी अपने घर के लिए रास्ता नाप रहे थे किन्तु कुछ श्रम जीवी पृथ्वी पर डगमग-डगमग पैर रखकर यह व्यक्त करते थे, जीवन भारी है और ये पग भी भारी हैं।

विशेष—ध्वनि का सुन्दर चित्रण।

अलंकार—ध्वन्यर्थ व्यंजना।

आ, गा गा·········साथ पला ! (पृ० ११९)

शब्दार्थ—रग-रग=नस-नस में।

भावार्थ—कवि पक्षियों को गाने के लिए आवह्वान करता हुआ कहता है—हे पक्षी! आ और अपने सुन्दर सैकड़ों हृदयों से गान.गा, संध्या अपने सुन्दर सुनहले रूप को फैला रही है, वायु गंध फैलाकर मंद-मंद प्रवाहित हो रही है और नव-जीवन का इनमें संचार कर रही है, जिनकी नसें ढीली हो चुकी हैं।

यह लौकिक एवं प्राकृतिक कला है इसीलिए सृष्टि के साथ .पोषित यह अलौकिक कला सदा से चली आ रही है।

विशेष—पक्षियों की चहचहाहट एवं प्रकृति-दृश्य का सुन्दर चित्रण।

गा सके·········आवे रवि ! (पृ०११९)

भावार्थ—अब कवि कहता है कि संसार की श्री रहित संध्या की कांति में मेरा कवि-जीवन पक्षियों के समान गा सके। कवि पुनः कहता है, मेरा कवि-जीवन पक्षियों के समान गान प्रस्तुत करे, पुनः सूर्य का उदय हो और पुनः प्रभात का आगमन।

विशेष—भाव का दृश्य के साथ सुन्दर चित्रण।

बापू के प्रति

संकेत—यह 'तारापथ' काव्य-संकलन की इक्कीसवीं कविता है। कवि ने महात्मागाँधी को युग-प्रवर्तक के रूप में चित्रित किया है। साथ ही उनके अहिंसावाद, आदर्शवाद, यथार्थवाद, त्याग, भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम भावना आदि की प्रशंसा की है।

तुम माँसहीन·········मानवपन ! (पृ० १२२)

शब्दार्थ–निःस्वनिःस्वार्थ। भावी-भविष्य।

भावार्थ—कवि कह रहा है कि हे बापू ! मांसहीन, रक्तहीन, अस्थिहीन होकर भी अस्थिशेष हो। इतना ही नहीं तुम शुद्ध, बुद्ध आत्मा के प्रतीक भी हो। तुम्हारी भावना चिर प्राचीन है और चिर नवीन भी है अर्थात् दोनों के प्रति अपार प्रेम है। दोनों के रूपों को विकसित करना चाहते हो। तुम्हारा जीवन एक पूर्ण इकाई है जिसमें असार संसार शून्य हो गया है अर्थात् लौकिक जगत् विलीन हो गया है। हे बापू ! जिस पर भविष्य की संस्कृति स्थिर होगी, वह आपका आधार अमर है।

बापू ! तुम्हारे मांस, रक्त एवं अस्थि से ही नये युग का शरीर निर्मित हुआ है। तुम धन्य हो ! तुम्हारा निःस्वार्थ त्याग, संसार के भोग का श्रेष्ठ साधन बने।

हे बापू ! तुम्हारे इच्छारहित शरीर की धूल से संसार पूर्ण इच्छावाला हो जाएगा और संसार नया जीवन प्राप्त करेगा। तुम्हारे सत्य, अहिंसा के ताने-बानों से ही मानवता का जन्म होगा।

विशेष—युग-प्रवर्तक रूप में गाँधी को कवि ने देखने का सफल प्रयास किया है।

अलंकार—उपमा, उत्पेक्षा।

सदियों का·········मानवता का सरोज ! पृ० (१२२-१२३)

शब्दार्थ—विकृतविकारग्रस्त। भूत-प्राणी,जीव।

मनोज—कामदेव, मन से उत्पन्न। सरोज=कमल।

भावार्थ—हे बापू ! सदियों से चली आती हुई घोर दीनता को रूई के समान धुनकर तुमने प्रकाश का सूत काता है। इसका आशय यह है कि अपने ज्ञान के बल से घोर दरिद्रता में पड़े हुए जन-मानस को ज्ञान का प्रकाश दिया। हे नग्न रहने वाले बापू ! अर्थात् स्वयं नंगे रहकर तुमने मनुष्यता की नवीन संस्कृति से नग्न पशुता ढँक दी अर्थात उन्हें पशुता से मानवता में परिवर्तित कर दिया।

संसार अधिकांशतः छुआछूतपन से पीड़ित था; किन्तु तुमने अपने अमृत स्पर्श से उन्हें पवित्र कर दिया तथा जिनकी संस्कृति विभिन्न प्रकार की रूढ़ि-परम्पराओं से ग्रस्त होने के कारण मर चुकी थी अर्थात् प्रकाशहीन हो चुकी थी, ऐसे विकार ग्रस्त प्राणियों को मुक्त किया।

हे बापू इस संसार में समस्त प्राणी सुख भोग को खोजने के लिए आते हैं किन्तु तुम सत्य की खोज करने आए थे। इस संसार के लोग तो मिट्टी के पुतले के समान हैं अर्थात् नाशवान् हैं किन्तु तुम आत्मा और मन के मनोज अर्थात् कामदेव के प्रतीक हो। इसका आशय यह है कि तुम अमर हो। संसार की जड़ता की चेतना में हिंसा को अहिंसा में और स्पर्धा को नम्र ओज से पूर्ण करके, पशुता के पंकज को मानवता के कमल में परिवर्तित कर दिया। अर्थात् वास्तविक मानव बना दिया।

विशेष—पशुता का पंकज एवं मानवता का सरोज में कलात्मकता है। ये उक्त प्रयोग सफल हैं इ। नमें भाव का पूर्ण संतुलन है।

अलंकार—उपमा, रूपक।

पशुबल की·········को अंधकार (पृ० १२३-२४)

शब्दार्थ—अनाशवत=त्यागी।

भावार्थ—हे बापू संसार के प्राणी जो पशुता के कारागार में बन्दी थे उन्हें तुमने आत्म-मुक्ति का मार्ग दिखलाया और सांसारिक विद्वेष एवं घृणा से लड़ने के लिए उन्हें दुर्जय प्रेम की शिक्षा दी। इसके कहने का तात्पर्य यह है कि जो मानव संसार की ईर्ष्या द्वेष एवं घृणा में फँसे थे उनसे मुक्ति के लिए बापू ने प्रेम का उन्हें अस्त्र प्रदान किया। तुमने अपने पूर्ण विचारों के माध्यम से श्रेष्ठ श्रम को जन्म देकर उन सब को कृतार्थ किया। हे अनासक्त बापू! जगतप्रेमियों से प्रेम करने वाले हो किन्तु तुमने अपना सर्वस्व त्याग कर ही मुक्ति का साधन बनाया।

शासन के विशाल कठोर भार को कम करने के लिए शासित जनता को सहयोग की भावना की शिक्षा दी ताकि शासन का भार सरलतापूर्वक चल सके। अस्थिहीन होकर भी अपने सत्य के आग्रह के बल पर मिथ्या की शक्ति द्वारा होने वाले प्रहारों को रोक दिया। इतना ही नहीं तुमने विभिन्न भेदों उपभेदों में पड़ी हुई जीर्ण जनता को विनष्टता से बचा लिया। हे बापू! तुमने प्रकाश को प्रकाश कहकर अर्थात् ज्ञान को ज्ञान कहकर और अंधकार को अंधकार कहकर अर्थात् अज्ञान को अज्ञान कहकर ही मार्ग दिखाया इसका तात्पर्य यह है कि बापू ने सत्य साधन को ही शिक्षा विभिन्न प्रकार की कुरीतियों से छुटकारा दिलाने के लिए दी।

विशेष—भाव, भाषा-शैली में पूर्ण सामंजस्य।

अलंकार—उपमा, रूपक उल्लेख।

उर के चरखे में.........अमर प्राण ! (पृ० १२४)

शब्दार्थ—विषाद = दुःख ।

भावार्थ——युग-युग के विषय-जनित दुःख को हृदय रूपी चरखे से सूक्ष्म सूत कात कर तुमने उन्हें सुख के धागे में परिवर्तित कर दिया अर्थात् एक सूत में पिरो दिया । तुमने आत्म ध्वनि भर कर संसार के आकाश को गुंजित कर दिया । तुमने खद्दर के धागे में नव जीवन, आशा, स्पृहा एवं आनन्द को भर कर यान्त्रिक कुशलता के प्रभाव को समाप्त कर दिया और मानवी कला का विकास सूत्रधार बन करके किया । इसका तात्पर्य यह है कि बापू ने हस्तकला को विशेष मान्यता दी । तुम महान् आत्मा के रूप में जड़वाद और जर्जरित संसार में मशीन से पराजित युग में मानव के जीवन की रक्षा के लिए उत्पन्न हुए हो । तुमने विभिन्न छाया के बिम्बों में खोए हुए मानव के व्यक्तित्व को प्रकाशित करने का सफल प्रयास किया है । पुनः रक्त-माँस की मूर्तियों में अर्थात् मानवों में अपने सत्य-सिद्धान्त के आधार पर अमरत्व प्राण का संचार किया ।

विशेष——बापू के सत्य-सिद्धान्त का प्रतिपादन ।

अलंकार——रूपक, उत्प्रेक्षा ।

संसार छोड़.........शासित किए लोक !(पृ० १२४-२५)

शब्दार्थ——उद्दाम काम——तीव्र वासना

भावार्थ—संसार त्याग कर अर्थात् संसार के विभिन्न भोगों को छोड़कर बापू ने मानव जीवन के परमार्थ तत्व को अपनाया किन्तु सत्य नियमों के आधार पर मानवता का प्रचार किया इसीलिए सांसारिकता में फँस कर इसके अपवाद भी बने ।

हे अजेय बापू ! सार्वजनिकता की विजय के लिए तुमने अपने व्यक्तित्व को समर्पित कर दिया । हे उदार बापू ! संसार की लौकिकता को जीवित रखने के लिए स्वयं अलौकिक बन गए । आश्चर्ययुक्त ब्रह्माण्ड की सीमा को देखकर मानव मंगल एवं शान्ति की खोज में तल्लीन था किन्तु ऐसे वैज्ञानिक युग में जो राग शोक से व्याप्त था, तुम केन्द्र अर्थात् सत्य खोजने के लिए उपस्थित हुए । पशु पक्षी और पुष्पों से प्रेरित तीव्र वासना एवं जनक्रांति को रोक कर जीवन की इच्छाओं को आत्मा के वशीभूत रख कर संसार को शासित किया अर्थात् संसार को शाँति का पाठ पढ़ाया ।

विशेष——सत्य सिद्धान्त का पूर्ण प्रतिपादन ।

अलंकार——उपमा-रूपक-उत्प्रेक्षा ।

था व्याप्त.........भव भीति-भार ! (पृ० १२५-२६)

शब्दार्थ—भव भीति-सांसारिक भय ।

एकोऽहं बहु स्याम—एक हूँ बहुत हो जाऊँ ।

भावार्थ—कवि कह रहा है कि जिस समय बापू का आगमन हुआ उस समय समस्त दिशाओं में घोर भ्रान्तियाँ भरी हुई थीं, विश्व इतिहास इसके जन्म का प्रमाण है अर्थात् साक्षी है। उस समय बहुतर्कवितर्क, बुद्धि, जड़वाद और वस्तुवाद आदि मानव संस्कृति के प्राण बने हुए थे। ऐसे वातावरण में जो सभ्य राष्ट्र थे वे अर्थवाद जनवाद, साम्यवाद, और कूटिनीति आदि को शिष्ट मानते थे, ऐसी स्थिति को देखकर ऐसा लगता था कि वे विभिन्न प्रकार की रूढ़ियों, रीतियों और प्रेतों के समान पृथ्वी पर निवास करते थे, वे मनुष्य नहीं थे क्योंकि उनमें मनुष्यता नहीं थी।

हे बापू जग जीवन के सूत्रधार के रूप में संसार के मंच पर प्रकाशित हुए और मानव के मन रूपी पर्दे को हटाकर नर चरित्र का नव उद्धार किया।

आत्मा को विषय का आधार बनाकर पलभर में दिशाओं के दृश्यों को संयोजित कर 'एक हूँ बहुत हो जाऊँ' के सिद्धान्त का गुण गान करके, संसार के भय रूपी भार को भेदकर हर लिया अर्थात् मानवों को सुखी बना दिया।

विशेष—सत्य-अहिंसा सिद्धान्त की सफलता का चित्रण ।

अलंकार—उपमा, रूपक ।

एकता का·········विधान ? (पृ० १२६)

शब्दार्थ—विरत=दूर, अलग होना । राग=मोह ।

भावार्थ—जब संसार समता की खोज में तल्लीन था, उस समय बापू ने एकता की ओर लक्ष्य किया। इन दोनों के शासन में इतना ही अन्तर था, एक राम राज्य का स्वप्न देखता था तो दूसरा संसार का बाह्य पक्ष जो आत्मा को नष्ट करने वाला था। उस समय गाँधी के विचार थे कि लोग मोह को त्याग कर अपने कार्यों में रत हो जाँय तथा रति-विरति का विरोध करके भ्रम की ममता को भी छोड़ दें ; तथा जो सत्य सिद्ध साधन के अवयव हैं उन्हें कुशलतापूर्वक अपनायें। ये राज्य जो प्रजातंत्र एवं साम्यवाद के शासन से संचालित हैं उन्हें छोड़ दें और उसके स्थान पर, मानववाद मनोविज्ञान, विकास शास्त्र आदि का सापेक्ष तुलनात्मक ज्ञान करें।

भौतिक विज्ञान के जन्म से जीवन उपकरण चयन प्रधान बन गया है। अतः महात्मा जी कहते हैं, सूक्ष्म और स्थूल संसार को मथ करके मानव को सुख देने वाले मानवतावाद के सिद्धान्त को पुष्ट करें।

विशेष—मानववाद की प्रतिष्ठा का चित्रण ।

अलंकार—उपमा ।

साम्राज्यवाद था·········तुमको प्रणाम ! (पृ० १२६-१२७)

शब्दार्थ—बलाऽक्रांत=बल से दबाया गया ।

भावार्थ—कवि पौराणिक कथाओं का उदाहरण देता हुआ कहता है कि जगत में साम्राज्यवाद का शासन कंस के शासन की भाँति था। जिस प्रकार कंस के राज्य में मानवता बन्दिनी थी और वह मानवता-पशुता की तरह शक्ति से दबायी गयी थी उसी प्रकार से साम्राज्यवाद के राज्य में। जैसे कंस के राज्य में दासता की शृंखला लगी हुई थी वैसे ही निरकुंश साम्राज्यवाद में। जैसे कंस के राज्य में बहुत से ममता रहित प्रहरी शासन के विभिन्न पदों पर शक्ति के भ्रम से आसीन थे, वैसे ही साम्राज्यवाद के शासन में। कवि कृष्ण के अलौकिक जन्म की कथा को लेकर कहता है कि कारागार में वसुदेव और देवकी बन्दी थे। चारों ओर कठोर प्रहरी लगे हुए थे। ऐसी दशा में अलौकिक दृष्टि वाले श्री कृष्ण मानव-आत्मा को मुक्त करने के लिए पैदा हुए (अवतरित हुए)। उस समय जन-शोषण रूपी यमुना बढ़ रही थी किन्तु तुमने नतमस्तक होकर विनयपूर्वक इस बढ़ती हुई जन-शोषण रूपी यमुना को शांत कर दिया। उसी प्रकार हे बापू! जब तुमने जन्म लिया, तब विगत संस्कृति कारागार थी, विभिन्न धर्म, जाति, रूप और नाम उसकी दीवाल थे, जग-जीवन बन्दी था, पृथ्वी बँटी हुई थी विज्ञान मूर्ख था और लोगों की इच्छा ही प्रकृति थी अर्थात् उन सब के सम्मुख कोई सच्चा मार्ग नहीं था जिसपर चलकर आत्म-मुक्त होते। हे बापू! मुक्त पुरुष के रूप में तुम्हारा आगमन हुआ। तुमने संसार को मिथ्या जड़ बंधन कहा तथा राम को सत्य बताया। मिथ्या की विजय नहीं होती; सत्य की विजय होती है इससे मत डरो। कवि कहता है कि ज्ञान के प्रकाश की जय हो। हे बापू! तुमको प्रणाम है।

विशेष—बापू को कवि ने युग-पुरुष के रूप में चित्रित किया है। कृष्ण से तुलना कर बापू के महत्व को बढ़ाया। भाव, भाषा, शैली में पूर्ण सामंजस्य है।

अलंकार—उपमा, रूपक।

वह बुड्ढा

संकेत—यह कविता 'तारापथ' काव्य-संकलन की सत्ताईसवीं कविता है। कवि ने इसमें एक दीन वृद्ध भिखारी का चित्रण किया है तथा उस समय की सामाजिक दुर्व्यवस्था के प्रति अपना आक्रोश प्रकट किया है।

खड़ा द्वार·········जवानी होगी दौड़ी। (पृ० १३७)

शब्दार्थ—पंजर=हड्डियों का ढाँचा। काठी=शरीर की बनावट।

भावार्थ—उसका वृद्ध शरीर इतना क्षीण हो गया है कि केवल हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया है और वह अपनी लाठी टेककर अर्थात् सहारा लेकर द्वार पर

खड़ा है। अधिक वृद्ध होने के कारण उसकी हड्डियाँ हिलने लगती हैं तथा उसकी सिकुड़ी हुई खाल उन हड्डियों के ढाँचे से चिपटी हुई है।

तन का मांस सूख जाने के कारण उसकी उभरी या निकली हुई नसें जो उसके सूखे हुए अस्थिकाय से चिपटी हुई हैं वे जाल के समान दिखलायी पड़ती हैं। ऐसा लगता है मानो पतझड़ में किसी कंकाल वृक्ष से सूखी अमरबेल अर्थात् एक प्रकार की लता चिपटी हो।

उस बुड्ढे का तन लम्बा है उर-स्थल चौड़ा है। आज भले ही उसका तन जीर्ण दिखाई पड़ता हो किंतु किसी समय-शक्तिवान और पूर्ण स्वस्थ रहा होगा। इसलिए कवि कहता है कि उसके खण्डहर शरीर में अवश्य ही उन्मत्त जवानी विद्युत की भाँति प्रवाहित हुई होगी।

बैठी छाती·········निकला बाहर ? (पृ० १३७-१३८)

शब्दार्थ—छातीव = वक्षःस्थल।

भावार्थ—वृद्ध होने के कारण उसके वक्षस्थल की हड्डियाँ बैठी हुई हैं और उसकी रोढ़ की हड्डी कमठा की भाँति टेढ़ी हो गयी हैं, उसका पेट भी पिचक गया है कंधों पर गड्ढे हो गये हैं। इतना ही नहीं, पैर की एड़ियाँ भी बिवाई से फट गई हैं।

वह बुड्ढा धरती पर बैठकर माथा टेककर झुककर सलाम करता है। उसकी इस दयनीय स्थिति को देखकर यही इच्छा होती है कि वह क्षण में इस धरती पर से अपना पैर उठा ले, क्योंकि ऐसी दुर्बलता देखी नहीं जाती।

उसकी लंबी टांगे घुटनों से मुड़ी हुई हैं, जाघें भी आपस में सटी अर्थात् मिली हुई हैं, बीच में सिर भी झुक गया है और झुर्रियों से झाँकर मुख बाहर दिखलाई पड़ता है।

हाथ जोड़·········उसमें भर ? (पृ० १३८)

शब्दार्थ—वह वृद्ध हाथ जोड़कर चौड़े पंजे की ऊँगलियों को मिलाकर तथा सामने करके एवं त्रस्त दृष्टि से कातर वाणी में अपनी व्यथा कहता है।

गर्मी के दिनों में वह वृद्ध सिर पर गमछा रखे तथा शरीर को लुँगी से ढँके हुए था। उसका नंगा शरीर बालों से भरा हुआ था जिसके कारण वह बुड्ढा बनमानुस-सा लगता था। भूख से व्याकुल होने के कारण वह पैसे की याचना करता है और पैसे पा जाने पर गुनगुनाता हुआ खड़ा होकर अपने घर चला जाता है। पिछले पैरों के सहारे उठकर चलता है, ऐसा लगता है कि मानो जानवर चल रहा हो।

कवि कहता है कि वह बुड्ढा मेरे हृदय में काली नारकीय छाया छोड़ गया। उसका नंगा शरीर बालों से भरा हुआ था। वह बुड्ढा पिशाच की भाँति था, दुःखी होने

के कारण उसका मनुष्यत्व समाप्त हो चुका था। कदाचित् इसीलिए वह प्रेत-सा अपना जीवन व्यतीत कर रहा था।

विशेष—कवि ने बुड्ढे के शरीर का बड़ा ही सजीव चित्र खींचा है।

लक्ष्य

संकेत—यह 'तारापथ' काव्य-संकालन की उन्चासवीं कविता है। प्रस्तुत कविता में कवि ने सात्विक प्रेम की ओर इंगित किया है। भाव, भाषा-शैली का सुन्दर प्रवाह है।

मैं न अब.........मन के दृगों को! (पृ० १८५-१८६)

शब्दार्थ—सर्जन = रचना। गोपन = गुप्त।

भावार्थ—कवि प्रेम की ओर लक्ष्य करके अपनी भावना को व्यक्त करता है। अब मैं रस गीत नहीं लिख रहा हूँ बल्कि प्यार कर रहा हूँ। इसका तात्पर्य यह है कि रसगीत सर्जन में मैं तल्लीन नहीं हूँ बल्कि प्रेम में तल्लीन हूँ, क्योंकि अब मेरा अभीष्ट यही है। कवि कह रहा है कि मौन ही हृदय में स्थित होकर रचना प्रक्रिया कर रहा है। कहता है, उसे गुप्त ताप कहूँ या गूढ़ हर्ष कहूँ। अर्थात् मेरा लक्ष्य प्रेम की ही ओर है। ये बातें प्रेम में घटित होती हैं। पुनः कवि कह उठता है कि अब मैं पक्षियों का गीत नहीं गा रहा हूँ, केवल प्यार, तुमको प्यार करता हूँ। वास्तव में यह भावना रहस्यात्मक है। कवि ने लक्ष्य को ही प्रेम में समाहित कर लिया है। इसीलिए कवि कहता है कि हृदय में सूक्ष्म चित्त सौन्दर्य प्रकाशित हो रहा है अर्थात् सत्य सौन्दर्य आलोकित हो रहा है। क्योंकि लक्ष्य एकाग्र है, यह स्वाभाविक भी है। इतना ही नहीं प्रेम के प्रकाश में खोया हुआ मुख अर्थात् प्रेम-प्रकाश में लीन मुख स्वर्ण वर्ण होता है। कवि अब विभिन्न प्राकृतिक रंगों का चित्रण करता है फालसई परिवेश से मंडित अर्थात् घिरा हुआ, इन्द्र धनुषों के अस्पर्शित कोमल रंग विभिन्न छाया-स्तरों में बिखर गए हैं जिनके भावों की सुगन्ध मनरूपी नेत्रों को मोहित कर रहे हैं।

विशेष—प्रेम भावना का सूक्ष्म चित्रण कवि द्वारा प्रस्तुत हुआ है। वर्णन में अति कलात्मकता है।

ऊब बाहर...................केवल प्यार करता हूँ? (पृ०१८६-१८७)

शब्दार्थ—पिरोता – गूंथना।

भावार्थ—अब कवि प्रेम की गहनता का चित्रण करता हुआ कहता है, बाह्य जगत से ऊबने के पश्चात् गहन अन्तर भावना में ही हृदय को विश्राम मिलता है अर्थात् वास्तविक आनन्द एवं शाँति मिलती है। कवि पुनः कहता है, जहाँ केवल प्यार है इच्छा रहित प्यार लक्ष्य के निकट मुझे ले जाता है अर्थात् एकाग्र गहन प्रेम ही लक्ष्य तक ले जाने में समर्थ है। कवि अब कहता है वही रास्ता है, वही लक्ष्य भी है, तुम भी वही हो और मैं भी वही हूँ। इसका तात्पर्य यह है कि प्रेम भी अदृश्य वस्तु, जो सत्य है, वही है और उसी में कवि अपने को समाहित बताता है। यही वास्तविक प्रेम का लक्ष्य है। कवि आगे यह भी कहता है, तुम्हीं इसे सचमुच सम्भव बनाती हो। मैं शब्दों को नहीं गूंथता हूँ, प्यार, केवल प्यार करता हूँ अर्थात् मैं सदैव अपने लक्ष्य पर ही रहता हूँ।

विशेष—प्रेम-भावना में कवि ने रहस्यात्मक भावना को सफलता पूर्वक पिरोया है। कवि इस भावना के माध्यम से अपने वास्तविक लक्ष्य तक गुनगुनाता हुआ पहुँचता है। भाव, भाषा, शैली का पूर्ण सामंजस्य है।

चन्द्रकला

संकेत—यह तारापथ काव्य संकलन की बावनवीं कविता है। कवि ने प्रस्तुत कविता में चन्द्रमा की कला को विभिन्न रूपों में देखने का सफल प्रयास किया है। कवि की रहस्यात्मक भावना भी उभरी है। भावलोक में तैरता हुआ अंत में कवि उसपर सबकुछ समर्पित कर देता है।

चन्द्रकला.........कला समाती:(पृ० १६३)

शब्दार्थ—विधि—ब्रह्मा।

भावार्थ—कवि कहता है कि नीले आकाश में चन्द्रमा की कला को प्रकाशित देख मेरे मन में न जाने कैसा लगता है। मुझे तो चन्द्रमा से अधिक चन्द्रमा की कला प्रिय लगती है, इतना ही नहीं, उस कला की सौन्दर्यता के अंकुर में ब्रह्मा की कला समायी हुई है अर्थात् समाहित है।

विशेष—कवि ने कलात्मकता के प्रति सजगता पूर्वक अपने प्रेम प्रकट किए हैं। उक्त भाव में कला का सौन्दर्य रूप प्रकाशित हो उठा है।

वह न भृकुटि·········आनन्द दिगन्तर ! (पृ० १६३-१६४)

शब्दार्थ—अनिन्द्य—अनिन्दनीय।

भावार्थ—चन्द्र कला के विषय में कवि अपने भाव प्रकट करता है, वह टेढ़ी भौंह नहीं है, नाखून नहीं है बल्कि मन की सुन्दर नौका है। इतना ही नहीं, वह तो प्राणों को मोहने वाली है, सागर को पार करने वाली है, अतः मुझे वह अनश्वर लगती है। इसका आशय यह है कि कला सदैव जीवित रहती है अर्थात् मृत्यु का ग्रास नहीं बनती। यह कला निरन्तर संसार में शोभा पहुँचाती है। दिशाओं के भीतर अनिन्दनीय आनन्द से युक्त होकर सम्मुख आँखें खुलती हैं। अर्थात् इसे देखकर आनन्द से आँखें लह लहा उठती हैं।

विशेष—चन्द्र कला का सुन्दर वर्णन है।

ओ रहस्य ········ सहज समर्पित ! (पृ० १६४)

शब्दार्थ—इंगित—संकेत।

भावार्थ—कवि कला के प्रति अपनी रहस्यात्मक भावना व्यक्त करता है। हे रहस्य अंगुलि ! जब तुम्हारा मौन संकेत पाता हूँ तब ऐसा लगता है मानो सीमाहीन का नील तट मुझे बुला रहा हो तथा आकाश के ऊपर पड़ी हुई चेतना लेखा की भाँति अंकित दिखाई पड़ती है। हे कला ! तुम अमृतमयी हो। सरलता पूर्वक तन और मन तुम पर समर्पित करता हूँ।

विशेष—कला के प्रति प्रेम-भावना का आधिक्य है।

सृष्टि कला ········ बिम्बित ! (पृ० १६४)

शब्दार्थ—तूलि-कूची। अगणित—असंख्य।

भावार्थ—कवि कहता है कि हे सृष्टि कला ! तुम स्वप्न की कूची से उसे चित्रित करती हो तथा प्रकाशित इन्द्र धनुष तो सात लोकों की श्रेणी को मोहित करती है अर्थात् सप्त लोक की श्रृंखलाएँ मोहित हैं। तथा असंख्य तारे पद चिह्नों की भाँति उस पर गिर-गिर पड़ते हैं जिससे सूक्ष्म भाव संवेदन के माध्यम से रस बोध कराते हैं।

विशेष—प्रकृति का सुन्दर चित्रण।

खिची शुभ्र ······ तन मन प्राण निछावर ! (पृ० १६४-१६५)

शब्दार्थ—स्मिति—हँसी।

भावार्थ—कवि कहता है कि आकाश में अनुराग की उज्ज्वल रेखा प्रकाशित है। हे चन्द्र कला ! तुम अपनी अलौकिक सुन्दरता से अन्तर को धन्य करती हो अर्थात् आकाश एवं मानव हृदय (कवि हृदय) को धन्य करती हो। तथा प्रेम-पात्र की भाँति प्रकाशित होकर हृदय को पूर्ण रूप से आनन्दित कर देती हो। हे चन्द्र कला ! तुम आकाश पर अपनी हँसी बिखेरती हो, अतः तुम अनन्त स्मिति हो। इसीलिए कवि भी तुम पर अपने तन-मन और प्राण को निछावर करता है।

विशेष—चन्द्र-कला में ही सत्य-सौन्दर्य को देखकर कवि ने तन, मन और प्राण समर्पित किए हैं। भाव, भाषा-शैली का पूर्ण सामंजस्य है। प्रस्तुत कविता में कवि का कला विषयक प्रेम उभर उठा है जिससे भाव कलात्मकता में परिवर्तित हो गया है।

अनामिका के कवि के प्रति

संकेत—यह 'तारापथ' काव्य-संकलन की पच्चीसवीं कविता है। प्रस्तुत कविता में कवि ने अनामिका के कवि के प्रति अपनी भावनाएँ व्यक्त की हैं।

छन्द बन्ध·········हृतन्त्री झन्कृत। (पृ० १३२)

शब्दार्थ—अकलुष—कलुषहीन। कर्दम—कीचड़।

भावार्थ—कवि अनामिका के कवि के प्रति कह रहा है कि छन्द के निश्चित बन्धनों को तोड़कर, पर्वत सदृश बन्धनों को फोड़कर और काव्य की अचल रूढ़ियों को समाप्त करके, हे कवि, तेरी कविता की धारा मुक्त, अबाधित अमंद, रजत निर्झर के समान प्रवाहित हुई जो गलित ललित आलोक राशि, चिर कलुषहीन और अविजित कही गई।

हे कवि ! तूने स्फटिक पत्थरों से सरस्वती के मन्दिर की कला का निर्माण किया और अपने चिर यश को ज्योति-कलश के रूप में धारण किया। हे कवि ! तुम्हारे शब्द-शब्द में उज्ज्वल हिम शिखर जड़े हुए हैं कला, और सौन्दर्य, ज्ञान, आनंद अमर हैं अर्थात् नष्टता को नहीं प्राप्त होंगे। हे कवि ! तुम्हारी प्रतिभा नित्य, नवीन, उज्ज्वल कल्पना की उड़ान भर कर, प्रकाशित स्वर में हंस की भाँति वाणी के रूप में कलरव करती है।

इतना ही नहीं, हे कवि ! तुम्हारा जीवन कर्दम से अमलिन है और हृदय कमल के समान शोभायमान है तथा स्वयं तुझे सरस्वती का आसन वरदान रूप में मिला है। हे कवि ! तू अमृत पुत्र है। तेरे यश रूपी शरीर ने जरा एवं मरण को जीत लिया है। तुम्हारे हृदय की तंत्रियाँ स्वयं सरस्वती से झंकृत हैं।

विशेष—अनामिका के कवि का गौरव गान कवि ने किया है। यह गौरव गान मर्यादित है।

———

वाणी

संकेत—यह 'तारापथ' काव्य-संकलन की बत्तीसवीं कविता है। प्रस्तुत कविता में कवि ने वाणी के लिए अलंकार को उपयुक्त नहीं माना है।

तुम वहन कर·········क्या अलंकार ! (पृ० १४५)

शब्दार्थ—अवलम्बित—आधारित।

भावार्थ—कवि अपनी वाणी के प्रति कहता है,हे वाणी ! यदि तू मेरे विचारों को जन-मानस में ढो सके तो तेरे लिए अलंकार की क्या आवश्यकता है ? अर्थात् नहीं। आज युग की दशाओं से तो संसार के कर्म पीड़ित हैं, संसार का रूपान्तर भी जनता की एकता पर ही आधारित है। तुम रूप और कर्म से मुक्त हो अतः शब्द के पंख मार कर मनुष्य के मन रूपी आकाश में दूर तक विहार करो। इतने पर भी, हे मेरी वाणी ! क्या तुम्हें अलंकार की आवश्यकता है ?

चित् शून्य.........क्या अलंकार ! (पृ० १४५-४६)

शब्दार्थ—निनाद—ध्वनि। स्वराकार—स्वर का रूप।

भावार्थ—कवि कहता है कि आज संसार का शून्य चित् नवीन ध्वनि से गुंजित हो और जड़वत् मन में नयी स्थितियों के गुण जाग्रत हो जायँ। हे वाणी ! तुम संसार की जड़ और चेतन सीमाओं को आर-पार झंकृत करके, भविष्य के स्वर के रूप में सत्य करो। इतने पर भी, हे मेरी वाणी ! क्या तुम्हें अलंकार चाहिए ?

शब्द ही युग कर्म हैं, शब्द ही युग रूप है और शब्द ही युग सत्य है। अतः हे वाणी, आने वाले सहस्रों को शब्दायमान कर और सैकड़ों गूंगों को ध्वनित कर अर्थात् वाणी दे। इतना ही नहीं, जन मानस के जीवन के अंधकार को प्रकाशित कर मानव हृदय के शब्दहीन द्वारों को खोल दे ! हे मेरी वाणी ! क्या तुझे अलंकार चाहिए ?

विशेष—कवि 'वाणी' में अलंकार की आवश्यकता नहीं समझता, इसीलिए वाणी को विभिन्न रूपों में चित्रित किया है।

वंशी

संकेत—यह 'तारापथ' काव्य-संकलन की अड़तालीसवीं कविता है। कवि ने वंशी के विभिन्न स्वरों का कलात्मक वर्णन किया है।

छिद्र भरा·········वंशी मुखरित ! (पृ०१८३-८४)

शब्दार्थ—अगणति—असंख्य ।

भावार्थ---कवि कहता है कि इस धरती पर मुझे छिद्र से पूर्ण नर वंश प्राप्त हुआ है, जिसमें मैंने नवीन आत्मा के स्वर भर दिए हैं। यह सप्त कमल और दल-सरगम से युक्त मेरु वंश की मुरली है। इस मुरली से असंख्य रागों का जन्म होता है किन्तु इस धरती पर युग कवि ही जन-मानस के छिद्रों को विभिन्न रागों से पूर्ण करता है। इस प्रकार मानवता की कांति विभिन्न नूतन स्वरों से पूर्ण हो जाती है।

कवि कहता है कि रीता बाँस मुझको प्राप्त हुआ जिसे, मैंने प्रभु की ओर अर्पित कर दिये और प्रेम की रागिनी को भर करके जन-मानस के कल्याण के लिए पृथ्वी पर फैला दिये, इस प्रकार युगों से कुंठित हृदय-राग को स्वच्छन्दता में प्रवाहित किया, जिससे पूर्ण-प्राण पाकर रस के आवेश में वह मुरली मुखरित हो गई।

विशेष---कवि ने बाँसुरी के विभिन्न रागों को चित्रित किया है तथा साथ ही युग कवि के महत्व को भी प्रतिपादित किया है।

जो लगते·········मनुज-उर को रस-तन्मय ! (पृ०१८४-८५)

शब्दार्थ—मनुज—उर—मानव-हृदय ।

भावार्थ--कवि वंशी की राग में ईश्वर की साकारता का दर्शन करता है और अब वह कहता है कि जो वंशी के छिद्र विभिन्न रागों के स्वरों से पूर्ण थे वे मानो श्रुति-हार हो गए हों। इतना ही नहीं, उस राग को संयोजित कर जीवन रूपी ईश्वर भी मानों साकार हो उठा हो किन्तु सीमित दृष्टि इतने पर भी ईश्वर के प्रेमी मुख को न देख सकी जब कि मानव और ईश्वर दोनों सामने खड़े थे।

कवि उसके आन्तरिक पक्ष का वर्णन करता है कि हृत्तन्त्री वंशी के स्वर में एक ही रस अर्थात् सत्य को प्रवाहित कर रही थी और जन-जन का हृदय श्रुतियों के मार्ग से ही प्रेरित था। आत्मा की हीरक-गति हरे प्राण की वंशी में प्रवाहित हो रही थी जो मानव-हृदय को नये ज्ञान के साथ रस में सराबोर कर रही थी अर्थात् उसी रस में नवीनता के साथ ध्यान चिन्तन कर रही थी।

विशेष—वंशी के आन्तरिक पक्ष का सजीव वर्णन कवि ने किया है।

———

लोकायतन (चौवालीस)

क्यों जीवन·········खोए मन।

शब्दार्थ--कवि यह जानना चाहता है कि मानव संसार से उदासीन क्यों है? अतः इसी दृष्टि कोण से वर्णन करता है। जीवन-विमुख मानव ने संसार रूपी क्षेत्र से क्यों वैराग्य ले लिया? फिर वह प्रश्न करता है, मानव जीवन को छल, स्वर्ग नर्क आदि के भय ने ही तो नहीं वनवास दिलाया है? इसका तात्पर्य यह है, इन्हीं समस्त वस्तुओं के कारण ही मानव ने इस जगत से वैराग्य ले लिया है। इतना ही नहीं विधाता से प्रेरित सामहिक जन-जीवन जो विस्तृत, यथार्थ एवं श्रम-संचित था वह अति वैयक्तिक मूल्यों में सिमट गया है। अतः जीवन जगत से अलग हो गया है जिसके कारण उस जीवन में मन एवं प्राण का संचार नहीं दिखलाई पड़ता है जबकि आत्मा के आधार पर भगवान् का आंशिक अनुभव निश्चित था। इसीलिए संसार-पट मिथ्या बन गया है और माया पृथ्वी के जीवन का वर। इसी कारण इस संसार में कल्पित खाई निरन्तर बढ़ती गई है। संसार का जीवन दुःखमय एवं क्षण भंगुर है, प्रेम, सृष्टि आदि माया के आश्रित हैं और पर-लोक में विचरण करने वाला शून्य कामी मन जनमानस एवं पृथ्वी से प्रवासित हो गया है इतना ही नहीं कवि पौराणिक मिथ्या कर्म काण्डों को भी ढोंग बतलाता है सम्पूर्ण मानव विधि यज्ञ और कर्म काण्डों के क्षीण ढाँचे में जकड़ा हुआ है अर्थात् बंधा हुआ है तथा उसका मन भी अंध विश्वासों एवं थोथी आस्थाओं में खो गया है अर्थात् जिसके कारण उसके जीवन का विकास रुक गया है।

विशेष कवि ने पौराणिक कथाओं कर्म काण्डो एवं यज्ञों को थोंथा बताया है। उसके ज्ञान का जो विकास नहीं होता है उसका प्रबल कारण यह हैं कि मानव इस संसार में थोथी आस्थाओं के प्रति अधिक जागरुक है।

बहु पाप·········अभ्यासो से चालित! (पृ० १७६-७७)

शब्दार्थ—बंजर-सूखा, मरुस्थल।

भावार्थ--कवि कह रहा है कि बहुत से पाप पुण्य, अपवर्ग, स्वर्ग, सुख, दुःख पूर्व जन्म, कर्म फल के बंधन की शृंखला आदि ही कायर मनुष्य को संतप्त किए हुए हैं अर्थात् इन्हीं के बन्धनों में वह जकड़ा है जिसके कारण वह भयभीत रहता है। मानव सैकड़ों जातियों, कतारों और वर्णों में विभाजित है उसका यह विभाजन भेड़ों और कीड़ों के समान है। उसके झुके हुए सिर और टूटी हुई रीढ़ों पर लघु राग द्वेष

आदि के भय खंडित है। उसकी स्मरण शक्ति जीर्ण व्यवस्थाओं के कारागार में बंदिनी है और सामूहिक जीवन की ओर तो वह कुंठित है बंजर तथा विराक्ति के समान है। इतना ही नहीं कवि कहता है कि उसको शक्ति तीखे मुड मतों अर्थात् भिन्न-भिन्न मतों गुटों, धर्मों एवं वादों में क्रूरता के साथ विभाजित हैं और वह संस्कृति के कठपुतलों के समान मृत अभ्यासों से ही चल रही है अर्थात् मृतक की भाँति ही संचालित है।

विशेष—कवि ने प्राचीनता के प्रति विद्रोह की भावना प्रस्तुत की है क्योंक मानव विकास में यही अवरोधक हैं। उसने मुण्डे-मुण्डे (मतिभिन्ना) सिद्धान्त को भी उदाहरण रूप में ग्रहण किया है।

प्रेरणा शक्ति·········भू का तम! (पृ० १७७)

शब्दार्थ—अनुपम-अनोखा। स्पंदन-पुलकित होना।

भावार्थ—कवि का कहना है कि मानव प्रेरणा शक्ति से वंचित था जिसके कारण वह खोजी नहीं बन सका और उसका मन भी वस्तु-दृष्टि हीन था, भावात्मकता भी नहीं थी जिसके कारण आत्म-प्रतारक ही रह गया। अन्तर्मन की शक्ति के सीमित हो जाने पर उसका योगबल भी छिछला हो गया तथा भाव-कर्म की दृष्टि से हीन होने के कारण वह कुशल रचनाकार भी नहीं रहा। फ्रायड के समान नर-नारियों की विभिन्न गतिविधियों को ही काव्य में चित्रित करता है और कुंजों में विहार करके ही अपने काम की ग्रंथियों को खोलता है। अतः कवि कहता है उसका शरीर, भोग, यौवन और व्यक्ति के प्रेम के आश्रित है। ऐसी स्थिति में उसका सामूहिक मानस पुलकित नहीं था और न प्रेम में जागृत ही था। कवि कहता है कि जब बाह्य परिवर्तन जीवन के लिए आवश्यक था तब वह घोंघे के समान खिंच गया जिसके कारण जन संज्ञा ही तिरोहित हो गई। कवि पुनः महान् आत्माओं के विषय में कहता है जब युग-युग में बहुत से महान् पुरुष विचरण करते थे तब वह कम अधिक निराला था, अंधकार का ह्रास छाया हुआ था किन्तु फिर भी जन मानस एवं पृथ्वी का अँधेरा न समाप्त हो सका अर्थात् मानव को ज्ञान का प्रकाश न मिल सका।

विशेष—कवि ने रूढ़िवादी परम्पराओं को मानव विकास में अवरोधक माना है।

—०—